भवभूति का वस्तुविधान-शिल्प

(नाट्यशास्त्रीय एवं रंगमंचीय अध्ययन)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

१९९३

शोधार्थी

कु० श्रद्धा पाण्डेय

निर्देशक

डा० विशनलाल गौड़ 'व्योमशेखर'

एम०ए०, पी-एच०डी०, व्याकरणाचार्य

प्राचार्य

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज, अतर्रा, बांदा (उ० प्र०)
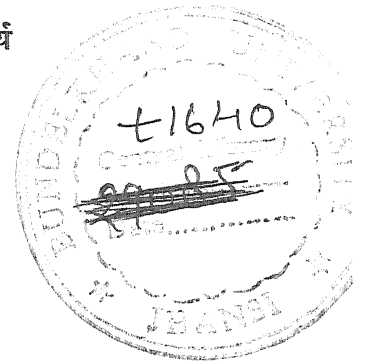
शोध-केन्द्र

संस्कृत विभाग

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज, अतर्रा, बांदा, उ०प्र०

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

प्रमाण पत्र

१. यह प्रमाणित किया जाता है कि 'भवभूति का वस्तुविधान शिल्प' (नाट्यशास्त्रीय एवं रंगमंचीय अध्ययन) शोधार्थी का मौलिक शोध प्रबन्ध है ।

२. यह कि शोधार्थी ने मेरे निर्देशन में नियमित रूप से शोध अध्ययन सम्पन्न किया है ।

३. यह कि शोधार्थी ने शोध-केन्द्र पर अपेक्षित उपस्थितियां देकर अपना शोध कार्य सम्पन्न किया है ।

निर्देशक,

(डा० विशनलाल गौड़ 'व्योमशेखर')

तिथि: 25.12.93

शोध केन्द्र :

संस्कृत विभाग,

अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा

जिला बांदा (उ०प्र०)

नमोवाकं प्रशास्महे

नाटककार भवभूति के शब्द-प्रसूनों से वाग् देवी को नमन करते हुए एक शोधार्थी के नाते मैं कुछ निवेदन कर रही हूं । कुछ मेरे पारिवारिक संस्कार, कुछ मेरे माता-पिता की प्रेरणा और कुछ अतर्रा महाविद्यालय के संस्कृत-विभाग के गुरुजनों का मुझ जैसी छात्राओं के लिये विशेष प्रोत्साहन । इन सभी मिले-जुले कारणों से मुझे संस्कृत एम०ए० करने का अवसर मिला । मेरे संस्कृत एम०ए० करते-करते हमारे महाविद्यालय के जीवन में एक नई घटना हुई । उत्तर प्रदेश उच्च शिक्षा सेवा-आयोग से चयन किये गये नये प्राचार्य का आगमन हुआ । ये नये प्राचार्य मेरे शोध-निर्देशक डा० विशनलाल गौड़ 'व्योमशेखर' थे ।

नये प्राचार्य डा० गौड़ के आने से महाविद्यालय के शैक्षिक जीवन में बहुत सी नई गतिविधियां शुरू हुई । इससे महाविद्यालय के शिक्षक परिवार तथा छात्र समुदाय में एक नये उत्साह का संचार हुआ । संस्कृत के छात्र-छात्राओं के लिये प्राचार्य गौड़ कुछ अतिरिक्त रूप से प्रेरणादायी सिद्ध हुए थे । उनके बारे में जैसे ही यह मालूम हुआ कि वे संस्कृत साहित्य के आचार्य हैं तो संस्कृत के हम सभी छात्रों को कुछ विशेष प्रकार का उत्साह मिला । प्राचार्य गौड़ जब कभी भी महाविद्यालय के मंच से कोई भाषण करते थे तो संस्कृत के छात्रों का वे कुछ नया कर दिखाने के लिये आह्वान करना कभी नहीं भूलते थे । संस्कृत के छात्र-छात्राओं के लिये उनके विचार बहुत ही उत्साहवर्धक होते थे ।

हम संस्कृत के अध्येताओं में प्राचार्य गौड़ के प्रभाव से कुछ नये शोध-अध्ययन करने की भावना भी पैदा हुई । मैंने अपने पूज्य पिता श्री रामनरेश पाण्डेय के साथ जाकर प्राचार्य डा० गौड़ से शोध-अध्ययन की दिशा में मार्गदर्शन की प्रार्थना की । प्राचार्य-जीवन की व्यस्तता के कारण उन्होंने शोध-अध्ययन के निर्देशन का

भार वहन करने में आरम्भ में कुछ संकोच सा प्रगट किया परन्तु सर ! हम छात्राएं फिर कहां जायें ? मेरी यह प्रार्थना सुनते ही वे कुछ नहीं बोले और शोध-निर्देशन का भार स्वीकार लेने की कृपा कर दी । उनकी इस कृपा का लाभ न केवल मुझ एक शोधार्थी को बल्कि एक साथ तीन-चार शोधार्थी छात्राओं को प्राप्त हो गया । भवभूति के वस्तुविधान शिल्प पर किया गया मेरा यह अध्ययन गुरुदेव डा० गौड़ की कृपा का ही फल है ।

प्राचार्य जीवन की जिन व्यस्तताओं और जटिलताओं के कारण डा० गौड़ शोध-निर्देशन का भार वहन करने में संकोच कर रहे थे वह संकोच वास्तव में बहुत सच ही निकला । कुछ ऐसी परिस्थितियां भी सामने आईं कि उनका जो उदार मार्ग-दर्शन शोधार्थियों के लिये सदा सुलभ रहता था उसमें तरह-तरह के कष्ट कारक व्यवधान भी आये । यह सब होने पर भी जो आत्मबल का मंत्र श्रद्धेय प्राचार्य से मिला था उसने साहस कभी नहीं टूटने दिया ।

मेरा यह शोध अध्ययन सम्पन्न करने में अनेक विद्वानों का कृपापूर्ण आशीर्वाद मुझे मिला है । अतर्रा महाविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० जगदेव प्रसाद पाण्डेय, डा० वेदप्रकाश द्विवेदी, डा० ओंकारप्रसाद त्रिपाठी जैसे पूज्य गुरुजन ने समय-समय पर मेरी बाधाओं को दूर किया । इन सभी की मैं बहुत आभारी हूं । जिन विद्वानों की रचनाओं का सहारा पाकर मैंने अपना शोधकार्य पूर्ण किया है, उनका भी मैं नमन करती हूं ।

अतर्रा महाविद्यालय मेरा शोध केन्द्र रहा है । वहां के पूर्व प्राचार्य और वर्तमान अध्यक्ष श्रद्धेय जगपतसिंह की कृपा से पुस्तकालय में शोधार्थियों के लिये पूरी व्यवस्था प्राप्त होती है । उनका आशीर्वाद भी मुझे प्राप्त रहा । पुस्तकालयाध्यक्ष श्री हीरालाल यादव और उनके सहकर्मियों ने मेरा ग्रंथों से भरपूर सहयोग किया । इन सबकी मैं हृदय से आभारी हूं ।

मेरा यह शोध कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो सका, इसके लिये मैं पुनः वाग्देवी का नमन कर विद्वज्जन के आशीर्वाद की प्रार्थना करती हूं।

शोधार्थी

श्रद्धा पाण्डेय

(कु० श्रद्धा पाण्डेय)

विषयानुक्रमणिका

अध्याय - 1

प्रस्तावना

1. अध्ययन का उद्देश्य और परिसीमाएँ
2. अध्ययन की विधा
3. नाटक का कलात्मक महत्व
4. संस्कृत नाटक और रंगमंच का विकास
5. संस्कृत रंगमंच का विशिष्ट व्यक्तित्व
6. नाटककार भवभूति का कृतित्व एवं व्यक्तित्व
7. प्रस्तुत अध्ययन का योगदान

प्रस्तावना

अध्ययन का उद्देश्य और परिसीमाएं

'भवभूति का वस्तुविधान शिल्प' भवभूति के नाटकों के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष को लेकर एक सुनिश्चित दिशा और दृष्टि को अपनाकर किया जा रहा अध्ययन है। भवभूति के नाटकों का वह महत्वपूर्ण पक्ष उनका वस्तुविधान है। हमारी दृष्टि से कथावस्तु ही नाटक का सर्वप्रथम और सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। अन्य नाटकीय तत्व जैसे चरित्रसृष्टि, रसयोजना और संवादयोजना आदि सभी नाटककार की वस्तुयोजना पर निर्भर करते हैं।

आज के युग में हम देखते हैं कि नाटक की भूमिका लगभग-लगभग पूरी तरह चलचित्रों ने ले ली है। जिस चलचित्र की पटकथा जितनी अधिक प्रभावी और तर्कसंगत आधार वाली होती है, वह चलचित्र उतना ही अधिक प्रभावी और लोकप्रिय होता है। कलात्मक दृष्टि से भी वही चलचित्र अधिक महत्व का माना जाता है जिसकी पटकथा सुबद्ध, मनमोहक दृश्य-तत्वों से भरपूर तथा घटनाचक्र का एक क्रमिक और तर्कसंगत विकास रखने वाली होती है। जो बात आज के छायाचित्रों की पटकथा पर लागू होती है वही बात वस्तुविधान के शिल्प की दृष्टि से नाटकों पर भी लागू होती है।

वस्तुविधान में जहां तक कथा तत्व का प्रश्न है वह तो इतिहास, पुराण या अन्य किसी काव्य रचना आदि से भी प्राप्त की जा सकती है। नाटककार, यदि क्षमता रखता है, तो वह नवीन कथा का मौलिक सृजन भी कर सकता है। दोनों ही स्थितियों में उसे मुख्य कथांश और सहयोगी कथांशों के बीच एक कुशल संयोजन नाटकीय दृष्टि से करना होता है। यह संयोजन जितना अधिक कुशलतापूर्ण होता है, नाटकीय कथावस्तु भी उतनी ही अधिक प्रभावी होती है। कुशल नाटककार और आधुनिक पट-कथाकार प्राचीन से प्राचीन ऐतिहासिक और पौराणिक आख्यानों को नाटकीय दृश्य-विधा में कितनी सफलता से ढाल सकते हैं, यह तथ्य हम जिस तरह आज के दूरदर्शन पर प्रदर्शित रामायण, महाभारत तथा चाणक्य जैसे धारावाहिकों से पहचान सकते हैं,

उसी तरह भवभूति के 'महावीरचरितम्' और 'उत्तररामचरितम्' नाटकों से भी जान सकते हैं। इस तरह के आख्यानों को नाटकीय वस्तु के रूप में ढालने में रचनाकार से जहां-कहीं कोई चूक हो जाती है या वह अपने किसी दूसरे रुझान से भटक जाता है, वह भी जागरूक दर्शकों और समीक्षकों की पैनी दृष्टि से छिप नहीं पाता है। प्रस्तुत अध्ययन में हमारा मुख्य उद्देश्य भवभूति के नाटकों के वस्तुविधान शिल्प की समीक्षा इसी खुली दृष्टि के साथ करना है। इस प्रयत्न में हम रसवादी दृष्टि के प्रभाव से यथासम्भव तटस्थ रहकर नाटकों की वस्तुयोजना के शिल्पगत गुणों और दोषों का विवेचन करने तक सीमित रहेंगे। वस्तुविधान शिल्प का प्रभाव और वैशिष्ट्य दर्शाने के लिये जहां कहीं प्रासंगिक होगा, वहां रस और संवादयोजना आदि की भी चर्चा अवश्य की जायेगी।

१.२ अध्ययन की विधा

भवभूति के वस्तुविधान शिल्प का अध्ययन करने के लिये हम दो समानान्तर और सहगामी पद्धतियों को अपनाकर चलेंगे। सर्वप्रथम हम अपने प्राचीन नाट्यशास्त्रीय प्रतिमानों को अपनाकर भवभूति के वस्तुविधान के गुण और दोषों की समीक्षा करेंगे। जहां-कहीं आवश्यक और उपयोगी लगेगा, वहां पाश्चात्य नाट्यशास्त्रीय दृष्टि को भी प्रासंगिक रूप से अपनाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में हम यह नहीं भुला सकते कि हमारे देश में नाटककला और नाट्यशास्त्र की शताब्दियों-शताब्दियों पुरानी एक अविच्छिन्न परम्परा है। संस्कृत के नाटकों और उसके नाट्यशास्त्र का विश्व के नाटक साहित्य में एक सम्मानपूर्ण स्थान है। हमारे कालिदास और भवभूति जैसे नाटककारों की कृतियां पढ़कर १९वीं और २०वीं शती के पाश्चात्य साहित्यकार और साहित्य के मर्मज्ञ आश्चर्यचकित हो चुके हैं। इसी तरह हमारे नाट्यशास्त्र की उपलब्धियों ने भी दूसरे देशों के विद्वानों का बराबर ध्यान खींचा है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर
विश्वनाथ कविराज तक नाटकविधा को लेकर बहुत ही सूक्ष्म जांच-परख करने वाले नाट्यशास्त्रीय प्रतिमानों का निर्धारण किया गया है। हमारे नाट्यशास्त्र के अनेकों

ऐसे प्रतिमान हैं जो आज भी नाटकविधा के लिये सार्वभौम रूप से स्वीकार्य कहे जा सकते हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में नाटकविधा का जैसा सवांग प्रतिपादन किया गया है वह आज भी कितनी ही दिशाओं में नाटककारों और रंगकर्मियों का बहुत बड़ी सीमा तक मार्गदर्शन कर सकता है। नाटककार भवभूति हो या कालिदास अथवा संस्कृत का कोई अन्य नाटककार, वह अपने से पूर्व की और समकालीन नाट्यशास्त्रीय दृष्टियों से अनुशासित न रहा हो, यह तो सोचा भी नहीं जा सकता है। यह हो सकता है कि उनके द्वारा निर्धारित प्रतिमानों को अपनाने में कोई नाटककार किसी अंश में अधिक सफल रहा हो औरकिसी अंश में असफल रह गया हो, परन्तु वह सर्वथा उनका अतिक्रमण करके चल सका हो, ऐसा कथमपि नहीं माना जा सकता। अतएव अपने नाटककार के वस्तुशिल्प के गुणों और दोषों की परीक्षा के लिये उसकी सफलता और असफलता की जांच-परख के लिये हम अपने परम्परागत नाट्यशास्त्रीय प्रतिमानों को ही प्राथमिकता देंगे।

एक समानान्तर विधा के रूप में हम अपने नाटककार के वस्तुविधान शिल्प का मूल्यांकन रंगमंचीय दृष्टि से भी करना चाहेंगे। हम यह जानते हैं कि नाटक एक दृश्य काव्य है और उस रूप में ही उसे रंगमंच पर दर्शकों के सामने आना होता है। अत: नाट्य कला की सबसे बड़ी सफलता उसके रंगमंचीय पक्ष पर ही निर्भर करती है। नाटक के रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य से हम यह भी समीक्षा करेंगे कि हमारे नाटककार ने अपने दृश्यविधान करने में उनकी सम्भवता और असम्भवता का पूरा-पूरा ध्यान रखा है अथवा नहीं। एक-दूसरे के बाद आने वाले दृश्य कहीं ऐसी स्थिति में तो नहीं आ गये हैं कि रंगमंच पर उनका आयोजन करने में असमाधेय कठिनाई ही रंगकर्मियों के सामने आ खड़ी हो। रंगमंचीय दृष्टि से हमें यह भी देखना होगा कि हमारे नाटककार ने कहीं ऐसी वस्तुयोजना तो नहीं कर डाली है कि घटना (Action) और घटना से जुड़े चरित्र तो पर्दे के पीछे जा पड़ें और दर्शकगण किन्हीं अन्य पात्रों द्वारा उनका वर्णन सा सुनते रहने को विवश कर दिये जायें। नाटक में यदि कहीं ऐसा अधिक मात्रा में कर

दिया जाता है तो नाटक की दृश्यधर्मिता का ह्रास हो जाता है । नाटकीय वस्तु विधान की दृष्टि से यह नाटककार की वस्तुयोजना की बहुत बड़ी दुर्बलता मानी जायेगी ।

रंगमंच की दृष्टि से यह भी समीक्षा की जायेगी कि नाटककार ने ऐसी वस्तुयोजना तो नहीं कर डाली है कि एक ही दृश्य में एक ही समय में इतने पात्र मंच पर सामने आ जायें कि रंगमंच का स्थान ही थोड़ा प्रतीत होने लगे । अथवा ऐसी स्थिति पैदा हो जाये कि पात्रों के पारस्परिक संवाद में कुछ पात्र लम्बे समय तक मूक रहने की स्थिति में पड़ जायें ।

१.३ नाटक का कलात्मक महत्व

काव्य की सभी विधाओं से बढ़कर नाटक का कलात्मक महत्व माना गया है । 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' की सुख्यात उक्ति तथ्य प्रकट करती है । इसका कारण भी बहुत ही स्पष्ट समझ आता है । कविता हमें केवल पढ़ने और सुनने का आनन्द दे सकती है । उसमें वर्णित दृश्य, पात्र और उनके भाव-अनुभाव हमारी आंखों के सामने मूर्त रूप में नहीं आ पाते । इसी प्रकार कहानी और उपन्यास भी हैं । वहां भी पढ़ने और सुनने से कानों भर का सुख मिल सकता है । आंखों की तृप्ति वहां भी नहीं हो सकती है । यह तो केवल नाटक की ही विशेषता है कि वह पात्रों के अनुकृति व्यापार से परोक्ष घटनाओं और चरित्रों को, उनकी क्रियाओं और हावभावों को हमारी आंखों के सामने उतार देता है । नाटक की इस विशेषता के कारण हमारे आंख और कान दोनों ही तृप्ति अनुभव करते हैं और हमारा मन रंगमंच पर अनुक्रियमाण चरित्रों और उनके भावों और अनुभावों से साधारणीकरण पा लेता है । नाटकीय परिवेश के साथ हमारी मानसिक भागीदारी सहज ही हो जाती है । इसीलिये नाटक अन्य साहित्यिक रचनाओं से अधिक कलात्मक प्रभाव छोड़ने वाली रचना होता है । दृश्य काव्य होने के नाते नाटक साहित्य की किसी भी अन्य विधा से बढ़ी-चढ़ी लोकधर्मी रचना होती है । नाट्यकोविद भरतमुनि ने नाटकविधा को लोकवेद माना है ।[१]

१- नाट्यशास्त्र, १.२-४

ऋग्वेद आदि चारों वेद जनसाधारण की पकड़ से बाहर हैं । समाज के अशिक्षित और पिछड़े लोगों को पांडित्य से भरे वेदग्रंथ न सुनने को मिल पाते हैं, न पढ़ने को । अत: उन सबके लाभ के लिये एक सर्वश्राव्य और सर्वदृश्य वेद की रचना नाट्य के रूप में आरम्भ की गई । इसीलिए नाट्य विधा लोकधर्मी वेद है ।[१]

नाटक को `नाट्यवेद` के रूप में पंचम वेद का सम्मान देते हुए भरतमुनि ने इसके गुणविस्तार की विशद प्रशस्ति करते हुए कहा है--

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम् ।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ।।
सर्वशास्त्रार्थसंपन्नं सर्वशिल्प प्रवर्तकम् ।
नाट्याख्यं पंचमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ।।

भरत के उक्त कथन से स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि जनता को उचित कर्तव्यों का मार्गदर्शन करने वाला नाटक साहित्य की सबसे अधिक लोकधर्मी विधा है । नाटक के माध्यम से जनता अपने सामाजिक धर्म-कर्म, अर्थोपार्जन, यशस्कर कार्य और नीति-उपदेश आदि सब कुछ जान लेती है । नाटक में देखे गये चरित्रों के अनुकरण से वैसा ही कुछ करने की प्रेरणा भी जनता ग्रहण करती है । इस प्रभावी प्रवृत्ति के कारण ही नाटक नई पीढ़ी का एक सशक्त माध्यम बन जाता है । भारत के राष्ट्रपिता गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि माता-पिता की आज्ञा मानने और उनकी सेवा करने का संस्कार उन्हें `श्रवणकुमार` नाटक देखने से मिला था । इसी प्रकार सत्य के लिये बड़े से बड़ा कष्ट सह लेने का संस्कार उन्हें `हरिश्चन्द्र` नाटक से प्राप्त हुआ था । लोकजीवन को संस्कार और चरित्र देने वाली कितनी प्रभावी विधा है नाटक, यह बात गांधी जी के उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है । नाटक का लोक-

----

१- नाट्यशास्त्र, १.२-४

२- वही - १.१४-१६

जीवन पर कैसा चमत्कारी प्रभाव होता है यह बात तो स्वयं नाटककार भवभूति का उत्तररामचरित ही हमें बता देता है। लोक से विनिंदित और राजदण्ड से अभिशप्त सीता वाल्मीकि के नाटक के प्रभाव से पुन: लोक और राजा दोनों के द्वारा अभिनंदित हो जाती है। नाटक का प्रभाव लोकमानस में घर कर गये कलुष को धो डालता है और एक निर्दोष चरित्र के सम्मान की रक्षा हो जाती है।

जब हम नाटक को लोकवेद के रूप में स्वीकार लेते हैं तो इसके कलात्मक स्वरूप को लेकर बहुत से तत्व स्वयं हमारे मन में आने लगते हैं। हम जानते हैं कि दृश्य काव्य के नाते नाटक को लोक के बीच रंगमंच पर आना होता है। रंगमंच पर आकर वही नाटक अपना कलात्मक प्रभाव डाल सकता है जिसमें नाटककार ने लोक अभिरुचियों लोकजीवन के यथार्थ पक्षों, लोकजीवन के आचार-व्यवहारों और मानमर्यादाओं का सही-सही समावेश किया होगा। नाटक का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पक्ष उसमें लोक-जीवन की यथार्थ और स्वाभाविक अनुकृति है। यह अनुकृति वास्तव में उसे लोक के विभिन्न वर्गों की भाषा, वेषभूषा, चाल-ढाल, वार्ताशैली, स्वभाव और चरित्र सभी बिंदुओं पर करनी होती है। इस सबके लिये नाटककार को लोकजीवन की गहरी पहचान होना बहुत जरूरी है। भरत के नाट्यशास्त्र में नाटक के लोकधर्मी कलापक्ष को बहुत महत्व दिया गया है।

नाटक के लोकधर्मी स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए भरतमुनि ने कहा है--

> स्वभावभावोपगतं शुद्धं त्वविकृतं तथा।
> लोकवार्ता क्रियोपेतमंगलीलाविवर्जितम्।।
> स्वभावाभिनयोपेतं नानास्त्रीपुरुषाश्रितम्।
> यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु सा स्मृता।।[१]

१- नाट्यशास्त्र, १४.६६-७०

इसका सीधा सच्चा अभिप्राय यह है कि जो नाटक लोकस्वभाव के अनुसार भाव प्रदर्शित करने वाला, सादगी और बिना बाहरी दिखावट वाला, कथावस्तु में लोकजीवन के सामान्य आचार, अवस्था एवं क्रियाओं को प्रदर्शित करने वाला, आंगिक लीला प्रदर्शन से दूर सहज भावों को प्रदर्शित करने वाला तथा नाना कर्म और व्यवसाय वाले स्त्री और पुरुष पात्रों वाला होता है, वह लोकधर्मी नाटक कहे जाने का अधिकार पाता है ।

लोकधर्मी नाटक से भिन्न शास्त्रीय परम्परा का अनुगमन करने वाला नाटक 'नाट्यधर्मी' होता है । भरतमुनि नाट्यधर्मी का स्वरूप बताते हुए कहा है--

अतिवाक्यक्रियोपेतमतिसत्वातिभावकम् ।
लीलांगहाराभिनयं नाट्यलक्षणलक्षितम् ।।[१]

मुनि का सीधा सरल-सा अभिप्राय यह है कि यदि किसी नाटक की भाषा लोकभाषा से भिन्न है, वाक्य रचनाएं असामान्य हैं, कार्य व्यापार भी असामान्य हैं, पात्रसृष्टि भी दिव्य अथवा अतिमानवीय है, अभिनय भी भांति-भांति की आंगिक लीला चातुरी से भरपूर है तो वह नाटक 'नाट्यधर्मी' अर्थात् शास्त्रीय नाटक कहा जायेगा ।

अतिरिक्त रूप से कहने की आवश्यकता नहीं कि नाटक की वास्तविक धरती तो लोकजीवन ही है । लोकवेद होने के नाते उसकी यथार्थ और स्वाभाविक अनुकृति तो उसमें होनी ही चाहिए । तभी नाटक लोकरंजन कर सकता है और तभी वह लोक का मार्गदर्शन भी कर सकता है । भरतमुनि ने भी लोकधर्मी को ही प्राथमिकता दी है । किन्तु हम यह भी जानते हैं कि लोकजीवन के भी स्तरभेद या वर्गभेद होते हैं । एक बहुत बड़ा भाग समाज का साधारण लोक कहलाता है । दूसरी ओर लोक का एक

१- नाट्यशास्त्र, १४.७१

विशिष्ट भाग भी होता है जो अभिजात लोक कहलाता है। नाट्यधर्मी नाटक वास्तव में अभिजात वर्ग के लिये ही होते हैं।

संस्कृत नाटक साहित्य में आज जो नाटक सबसे अधिक महिमामंडित हैं, वे सभी शास्त्रीय परम्परा के नाटक हैं। कालिदास और भवभूति के नाटक 'अभिरूप-भूयिष्ठा परिषद्' के रंगमंच पर ही अभिनीत होने वाले हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शास्त्रीय परम्परा के नाटक लोकधर्मिता का पूरी तरह त्याग करके रचे गये हैं। लोक से कटकर तो न कोई अधिक जी सकता है और न कोई शास्त्रीय नाटक ही। जो नाटक शास्त्रीय भी कहे जाते हैं उनका भी आत्मतत्व सामान्य लोकजीवन में समाया होता है। नाटक में स्थान पाने वाले घटनाचक्रों को लोक ही जन्म देता है। अभिजात वर्ग के चरित्र भी अनेक रूपों में सामान्य लोक आकांक्षाओं से प्रेरित होते हैं। उदाहरण के लिये पत्नी और संतान से प्रेम एक सामान्य प्रवृत्ति है। वह सामान्य जन और अभिजात जन सभी में समान होती है। प्रिय के मिलन से हर्ष और उसके वियोग से कष्ट सभी को समान होता है। बात जीवन तत्वों को रूपक में ढालने की है। रूपक की रचना करने वाले का व्यक्तित्व यदि शास्त्रीय संस्कारों से बहुत अधिक प्रभावित है, उसकी भाषा और विचारधारा दोनों की प्रवृत्ति शास्त्रोन्मुख अधिक है तो फिर उसकी नाट्यरचना में भी इनकी प्रधानता रहेगी। शास्त्र और लोक के बीच जो सामान्य और विशिष्ट का अन्तर है वह अभिजात नाटकों में साफ झलकता है। किन्तु यह होने पर भी शास्त्रीय नाटकों को अपनी दृश्य योग्यताएं बढ़ाने के लिये अवसर-अवसर लोकतत्वों का प्रयोग करना पड़ता है। नाटक में विदूषक का प्रयोग एक लोकतत्व ही है। स्त्रीपात्रों और निम्न श्रेणी के चरित्रों के लिये लोकभाषा का प्रयोग भी शास्त्रीय नाटकों को लोक के निकट लाने के लिये ही है।

हमारे नाट्यशास्त्रियों ने नाटक के लोकानुगामी और शास्त्रानुगामी दोनों रूपों को पहचानते हुए उसके अनेक भेदों का परिचय अपनी कृतियों में दिया है। भरत के नाट्यशास्त्र और धनंजय के दशरूपक में जो नाटकों के भेद हम पढ़ते हैं वे सब लोक-नाटक के विकसित हुए कलात्मक रूप हैं। प्राचीन युगों में जब संस्कृत लोकभाषा थी

तब इनमें से अधिकतर रूपक लोकनाटक के ही स्वरूप भेद थे।

जो भी सही, यह एक यथार्थ है कि संस्कृत साहित्य में नाटक का स्थान सर्वोपरि रहा है। हमारे नाटककारों ने लोकदृष्टि और शास्त्रदृष्टि दोनों का समन्वय करते हुए जो कलात्मक नाटक हमें प्रदान किये हैं वे अपने-अपने वैशिष्ट्य में अद्वितीय हैं। नाटक की कलात्मक अद्वितीयता को सर्व मूर्धन्य नाटककार कालिदास ने स्वयं इन शब्दों में रेखांकित किया है--

देवानामिदमामनन्ति मुनय: शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्॥[१]

कालिदास ने एक बार पुन: हमें भरत के नाट्यशास्त्र का स्मरण दिलाया है। नाट्यकला के क्षेत्र में जो महत्व लोकतत्व को भरत ने दिया था, वही कालिदास भी दे रहे हैं। कवि का बहुत सीधा-सा तात्पर्य यह है कि मनीषी लोगों ने नाटक को अभिरुचिपूर्ण लोगों के लिये आनन्ददायक चाक्षुष यज्ञ कहा है। नाटक दृश्य है अत: यह चाक्षुष समारोह है। नटराज शिव ने स्वयं उमा के सहयोग से इसे ताण्डव और लास्य नृत्य प्रदान किये हैं। यह त्रिगुणात्मक जीवन का दृश्य विधान करता है अत: नाना भावों और रसों से भरपूर होता है। सभी भाव और रस सत्व, रजस और तमस् गुणवृत्तियों की ही अभिव्यक्ति करते हैं। अपनी दृश्य और श्रव्य विशेषताओं के कारण तथा लोकजीवन की कलात्मक अनुकृति होने के कारण नाटक समाज के भिन्न-भिन्न रुचि वाले सभी लोगों को अकेला ही आनन्द विभोर कर देता है।

१- मालविकाग्निमित्रम्, १.४

१.४ संस्कृत नाटक और रंगमंच का विकास

भारतीय जीवन में नाटक का इतिहास भी सम्भवत: वेद जितना ही प्राचीन है। यह बात और है कि जो नाटक आज हमारे सामने हैं उनके कलात्मक रूप तक आने में संस्कृत नाटक ने हजारों वर्षों की लंबी यात्रा की है। अब प्रश्न उठता है कि नाटक की यात्रा के प्रथम चरण का आरम्भ किस तरह हुआ अर्थात् नाटकीय दृश्यविधान, रूप-विधान और अभिनय का सर्वप्रथम रूप क्या रहा होगा ? इन प्रश्नों को लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार हमारे सामने आते हैं। इन विचारों को हम दो दिशाओं में लेकर चल सकते हैं- भारतीय दृष्टि और पाश्चात्य दृष्टि। इन दोनों दृष्टियों पर थोड़ा विस्तार से विचार कर लेना आवश्यक है।

भारतीय दृष्टि

नाटक की उत्पत्ति के बारे में सबसे प्रथम मूल्यवान विचार हम नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत का ही महत्वपूर्ण मानते हैं। भरत मुनि के अनुसार समस्त देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे जनसामान्य के मनोरंजनार्थ वेदविद्या से भिन्न किसी नूतन विद्या की सृष्टि करें। ब्रह्मा ने देवों की प्रार्थना को पूरा किया। उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर एक नवीन और पंचम नाट्यवेद की रचना कर दी।[१]

नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक भरत ने जो कहा वही परवर्ती धनंजय आदि सभी नाट्यशास्त्रियों ने भी स्वीकार लिया।[२] कहना चाहिए कि नाट्योत्पत्ति के बारे में भरत की यह दृष्टि हमारी पूरी नाट्य परम्परा की दृष्टि हो गई। स्वयं नाटककार कालिदास ने भी अपने 'मालविकाग्निमित्र' में इसी दृष्टि का उल्लेख किया है। कालिदास की इस दृष्टि का परिचय हम नाटक के कलात्मक महत्त्व का विवेचन करते

१- नाट्यशास्त्र १.१५-१६

२- दशरूपक, १.४

हुए पा चुके हैं ।[१]

इस दृष्टि की अब थोड़ी समीक्षा भी कर ली जाये । ऊपरी स्तर से यह भारतीय दृष्टि नाटक की उत्पत्ति का दैवी सिद्धांत सूचित करती है किन्तु हम इसे नाटक की उत्पत्ति का विकासवादी सिद्धांत ही समझते हैं । कहने का यह रूपात्मक ढंग भारतीय आस्था और शैली के अनुरूप है । इससे लोगों में नाटककला के प्रति एक सामाजिक आस्था का भाव भी बनता है । वैसे इसका तात्पर्य बहुत ही स्पष्ट यह प्रतीत होता है कि संस्कृत नाटक कला का बीज तो स्वयं वेदों में उग आया था । नाटक को जिन चार प्रमुख अंगों की आवश्यकता होती है वे तो यज्ञ-उत्सवों के अवसर पर स्वयं वेदों के रूप में प्रकट हो गये थे । हम अच्छी तरह जानते हैं कि ऋग्वेद के अनेक संवादसूक्त नाटकीयता से भरपूर हैं । हम उन्हें उस युग के लघु काव्य नाटक भी कह सकते हैं । यम-यमी और पुरूरवा-उर्वशी तो संवादों के भावात्मक उद्दीपन और हावभाव संकेतों के कारण इतने उत्कृष्ट हैं कि उनके आदिम काव्यनाटक होने पर तो उंगली उठाना कठिन है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऋग्वेद के इन नाट्यसूक्तों का विषय दो पात्रों की प्रेमकथा है । इन संवादमंत्रों का सही-सही भावानुभावन तो नर-नारी रूप में प्रेमी और प्रेमिका के अभिनयपूर्वक गान से ही सम्भव हो सकता है । इन संवादसूक्तों के अतिरिक्त और भी अन्य संवादसूक्त ऋग्वेद में मिलते हैं । इनमें सरमा-पणि, इन्द्र-मरुत्, नदी-विश्वामित्र, इन्द्र-इन्द्राणी, अगस्त्य लोपामुद्रा आदि उल्लेखनीय हैं । एक विशेष बात संवाद सूक्तों में हम यह भी देख सकते हैं कि 'इन्द्र-मरुत' को छोड़कर सभी में पुरुष-स्त्री संवादों की योजना है । लोकजीवन का नाटक इन दो तत्वों पर आधारित है, यह बात हम किसी भी अच्छे नाटक से जान सकते हैं । इसलिए भरत के रूपकात्मक कथन में देवताओं की प्रार्थना और ब्रह्मा का नाम आ जाने से उसे दैवीवाद के ढोंग का चोंगा समझकर नगण्य मान बैठना अनुचित है । वास्तव में यह हमारे देश के नाटक की विकासयात्रा के आरम्भ का सही उल्लेख है ।

१- मालविकाग्निमित्रम्, १.४

हमारे पूर्वज उत्सव प्रिय आर्य थे। यज्ञ उनके जीवन के सामाजिक उत्सव और समारोह बन गये थे। इसलिए उनकी यज्ञविधियां भी तरह-तरह के नाटकीय प्रतिरूपों से युक्त थीं। यह भी सम्भव है कि उन यज्ञोत्सवों में संवादसूक्तों का काव्यनाटक के रूप में अभिनय भी होता हो। आजकल तो हम एकल नाटक तक पाते हैं जिसमें केवल एक ही पात्र होता है। ऋग्वेद के संवादसूक्तों में तो हम स्पष्टत: दो पात्रों के बीच मार्मिक संवाद पाते हैं।

उक्त स्थिति में कौन नहीं स्वीकारेगा कि हमारे प्रारम्भिक युगों के नाटककारों ने ऋग्वेद से पाठ अर्थात् संवाद कला ग्रहण की। नाटक की काव्यात्मकता के साथ संगीत स्वयं जुड़ जाता है। हमारा आदिम संगीत ज्ञान सामगान से पैदा हुआ है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। यजुर्वेद मुख्यत: यज्ञकाण्ड से जुड़ा है। यज्ञों के अनुष्ठान में पग-पग पर जैसी क्रियाओं, वेषभूषाओं आदि का तांता हो सकता है, उनका अनुमान हम आज भी अपने छोटे-छोटे उत्सवीय हवन आदि में देख सकते हैं। अथर्ववेद तो सीधा लोकजीवन से जुड़ा है। इसलिए नाटक के भावपक्ष का संकेत भरत ने अथर्ववेद के नाम से कर दिया है।

पाश्चात्य दृष्टि

पश्चिम के कुछ आधुनिक विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति की अनेक सम्भावनाओं पर विचार किया है। डा० रिजवे नाटक की उत्पत्ति के बीज प्राचीन सभ्यताओं की वीरपूजा में खोजते हैं। उनका विचार है कि दिवंगत वीरों की आत्माओं को प्रसन्न करने के लिये उनके रूपधारण करके रूपकों का अभिनय किया करते थे। वह वीरोत्सव के अभिनय ही नाटक के आदिम रूप थे।[१]

'संस्कृत नाटक' के लेखक ए०बी०कीथ का विचार है कि नाटक का आदिम उदय ऋतु परिवर्तन के साथ जुड़ा है।[२] उनकी कल्पना है कि प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों

१- डा० शिवबालक द्विवेदी, महाकवि भवभूति और संस्कृत रूपक परम्परा, पृ०१७

२- ए० बी० कीथ, संस्कृत नाटक पृ० ४।

को मूर्त रूप देने के लिये प्रकृति के रंग-रूप धारण करना और अभिनय करना आरम्भ हुआ होगा । हम समझते हैं और देशों की बात तो उन देशों के लोग जानें परन्तु भारतीय जीवन में नाटक के अवतरण को लेकर कीथ की कल्पना निराधार नहीं कही जा सकती । यह कौन नहीं जानता कि प्रकृति ने ही हमें नये-नये रूप-रंग धारण करने सिखाये हैं । उसके रूप-रंग बदलते ही हम लोग भी नये- रूपरंग अपनाने लगते हैं । हम देखते हैं कि हमारे देश में आज भी बसंत का उत्सव पुराने युगों की भांति कुछ-न-कुछ मनाया जाता है । वसन्तपंचमी और होली हमारे रूपरंग क्या बना देती हैं, हम अच्छी तरह जानते हैं । हमारे यह उत्सव और इनसे जुड़े हमारे रूप-रंग ऋतुपरिवर्तन से जुड़े हैं, इसे हम मना नहीं कर सकते । हम देखते हैं, कालिदास के शाकुंतल का सूत्रधार नटी से नाटक की प्रस्तावना करते हुए ऋतुगीत गाने का ही अनुरोध करता है और वही गाया भी जाता है ।[१] इसका अर्थ केवल यह निकलता है हमारे देश के ऋतु-चक्र हमारे नाटकीय जीवन का उत्प्रेरक हैं, फलत: उसमें भी हमारे नाटक की उत्पत्ति के बीज माने जा सकते हैं ।

एक जर्मन विद्वान पिशेल[२] हैं जो संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति का बीज पुत्तलिकाओं के नृत्य और अभिनय से जोड़ते हैं । उनकी यह सूझ-बूझ सूत्रधार जैसे शब्दों के प्रयोग पर टिकी है । भारत के साहित्य में सूत्र शब्द का प्रयोग संक्षिप्त कथन के लिये तब से चल रहा है जबकि कठपुतलियों के नृत्य और अभिनय की कल्पना करना भी कठिन है । इसके अतिरिक्त जो रूपक प्रयोग काठ के पुतलों की तुलना में सीधे-सीधे मनुष्य पात्रों से सरलता से किये जा सकते हैं उनके लिये पहले पुतलियों की बात करना तर्कसंगत नहीं है ।

प्रो० वेबर[३] आदि कुछ पाश्चात्य विद्वान संस्कृत नाटक की उत्पत्ति यूनानी नाटकों के प्रभाव से मानते हैं । इसके लिये वे `यवनिका` (पर्दे) जैसे रंगमंचीय शब्दों

१- शाकुन्तलम्, अंक १ - प्रस्तावना

२- ए० बी० कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० 43

३- वही पृ० 49

का सहारा लेते हैं । कालिदास ने अपने शाकुन्तल के नायक को `यवनीभि: परिवारित:` कहा है । इससे भी यूनानी सम्पर्क की गंध ली जा सकती है । यूनान और भारत का सम्पर्क बहुत पुराना है । दोनों प्राचीन सभ्यताओं में कला, ज्ञान और विज्ञान की दिशा में विनिमय को मना नहीं किया जा सकता । किन्तु इस सचाई को तो कोई भी नहीं नकार सकता कि हमारे संस्कृत नाटकों का पूरा रचनाविधान और मूल प्रकृति ही यूनान के नाटकों से भिन्न है । इसलिये हमारे नाटक के स्वतंत्र अस्तित्व को तो यूनानी प्रभाव से ग्रस्त माना ही नहीं जा सकता । उदाहरण के लिये दो भेदक तत्व ही हमारी मान्यता की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं । प्रथम तो हमारे नाटक निरपवाद रूप से सुखांत नाटक हैं, जबकि यूनानी नाटक सिद्धांतत: दु:खान्त अर्थात् त्रासदी होते हैं । दूसरी बात यूनानी नाटक में काल, स्थान और घटना की अन्विति अनिवार्य रूप से मिलती है, जबकि हमारे संस्कृत नाटकों में काल और स्थान की अन्विति को कोई महत्व नहीं दिया गया है । हमारे नाटकों में घटना की अन्विति को परम अन्विति स्वीकारा गया है । नाटकीय घटना की अन्विति के लिये ही हमारे नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में नाट्यवस्तु विधान के लिये पांच प्रकृति, पांच कार्य अवस्थाओं और पांच संधियों का सिद्धांत दिया गया है । अत: इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संस्कृत नाटक सर्वांश में भारतीय कला है और उसका अपना सर्वतंत्र स्वतंत्र व्यक्तित्व है ।

`भारत की खोज` के लेखक पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी भारत के प्राचीन मौलिक, अवदानों का अध्ययन करके उक्त ग्रंथ में एक स्वतंत्र अध्याय `भारतीय रंगमंच` के लिये रखा है । उनका भी स्पष्ट निष्कर्ष यही है कि पारस्परिक आदान-प्रदान यूनान और भारत के बीच बहुत हुए हैं किन्तु भारतीय रंगमंच मूलत: स्वतंत्र व्यक्तित्व वाला है ।[१]

नाटक और रंगमंच का अटूट सम्बन्ध है, यह बात भरत के नाट्यशास्त्र से विदित हो जाती है । भरतमुनि ने नाटक को स्पष्ट रूप से साहित्य को वह दृश्य-

----

१- भारत की खोज, पृ० इन्डियन थियेटर

विधा माना है जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत होकर अपनी लोकधर्मिता सिद्ध करनी होती है। भरत के नाट्यशास्त्र में जिस विस्तार और तकनीकी सूक्ष्मताओं के साथ रंगमंडप और प्रेक्षागृह के विवरण प्रस्तुत किये गये हैं वे तो अनेक पदार्थों को लेकर आज के फिल्मी प्रेक्षागृहों के भी अनुकरणीय प्रतीत होते हैं। भरत का सारा नाट्यशास्त्रीय विवेचन नाटक के रंगमंचीय स्वरूप को ध्यान में रखकर ही किया गया है।

नाटक और रंगमंच के अनिवार्य सम्बन्ध पर सभी युगों के सभी नाट्य-समीक्षकों की दृष्टि बराबर बनी रही है। जैसे-जैसे एक देश के नाटककारों को दूसरे देश के नाटक-साहित्य का सम्पर्क मिलता गया है वैसे ही वैसे नाटक-विधा में कुछ-न-कुछ नये तत्वों का समावेश होता चला गया है। एक स्थिति यह भी पाई गई है कि बहुत से नाटक साहित्यिक-दृष्टि से बड़े रोचक और पठनीय होते हैं परन्तु रंगमंच से दूर ही पड़े रह जाते हैं। इस तरह के नाटक नाट्य-विधा की दृष्टि से कहा जाये तो लोकधर्मी नाटक नहीं कहे जा सकते। उदाहरण के लिये, आधुनिक हिन्दी नाटककारों में प्रतिष्ठित जयशंकर प्रसाद के नाटकों को ही लिया जा सकता है। उनके 'अजातशत्रु' आदि नाटक रंगमंचीय दृष्टि से सफल नहीं कहे जा सकते हैं। इस तरह के नाटक साहित्यिक अभि-रुचि सम्पन्न पाठकों तक सीमित रहते हैं और पुस्तकालय ही उनका मंच रह जाता है।

अब हम नाटक के रंगमंचीय स्वरूप और उसके विकास की रूपरेखा जानने की ओर बढ़ते हैं। इस सन्दर्भ में नाटक के कुछ आधुनिक समीक्षकों की रंगमंचीय दृष्टि का परिचय पा लेना अत्यन्त प्रासंगिक होगा।

रंगमंच का अर्थ

रंगमंच दो शब्दों के योग से बना है - रंग एवं मंच। रंग का अर्थ है नाच और नृत्य तथा मंच का अर्थ है ऊंचा बना हुआ मण्डप। डा० उपेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार ऊंचा बना हुआ स्थल जहां रंगकर्मी नाच, नृत्य, नाटक आदि अभिनय कलाओं को प्रदर्शित करते हैं, रंगमंच कहलाता है।[१]

१- आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव, पृ० २०

प्रोफेसर एन०आई० नारायणन ने रंगमंच के सम्बन्ध में अपनी धारणा इस प्रकार व्यक्त की है-- आवश्यक साधनों एवं सुविधाओं से सजे हुए उस स्थान को हम रंगमंच कहते हैं जहां अभिनय के भावों का प्रकाशन किया जाता है।[1]

शेल्डान चेनी की धारणा है कि-- जहां कहीं भी और जब कभी प्राणियों का रुझान मनोरंजन की अभिव्यक्ति की ओर बढ़ा, रंगमंच किसी न किसी रूप में अवश्य आया, क्योंकि रंगमंच ही अभिनय, नृत्य, नाटक आदि का अनिवार्य स्थल हो सकता था।[2]

हिन्दी के रंग समीक्षक नेमिचन्द्र जैन की धारणा है कि-- नाट्यकला सृजनात्मक अभिव्यक्ति का वह रूप है जिसमें संवादमूलक आलेख कथा को अभिनेताओं द्वारा अन्य रंगशिल्पियों की सहायता से किसी रंगमंच पर दर्शक समूह के सामने प्रदर्शित किया जाता है। यह प्रदर्शन कभी संवादमूलक होता है, कभी वह आधुनिकतम् संयंत्रों से सुसज्जित रंगभवनों में प्रस्तुत होता है, कभी सौ पचास दर्शकों के सामने और कभी अभिनेताओं के चारों ओर हजारों दर्शकों के बीच। इन सभी स्थितियों में जो तथ्य चाहे विभिन्न अनुपातों और रूपों में ही सही निरन्तर मौजूद रहते हैं वे हैं कथामूलक आलेख, अभिनेता तथा निर्देशक सहित रंगशिल्पी, रंगमंच और दर्शक वर्ग।[3]

संस्कृति सभ्यता काव्यकला मनोरंजन एवं जीवन की अन्यान्य गतिविधियों की दृष्टि से रंगमंच काव्यकला की भांति आवेगों, रागों, विचारों अनुभूतियों की अमूर्त तथा भावात्मक अभिव्यक्ति मात्र नहीं और न वह चित्र तथा शिल्पकला की भांति किसी एक अथवा अनुभूति का काल के आयाम में स्थिरीकृत रूप है। रंगमंच गतिशील कार्यव्यापार के रूप में जीवन की अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है। रंगमंच

१- पृथ्वीराजकपूर अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० १७७ (हिन्दी एकांकी)

२- श्रीकृष्णदास, रंगमंच, पृ० १

३- नेमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ० १३

मनोरंजन का रूप होकर भी उन सब मौलिक मूल्यों और क्रियाओं के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है जिसके बिना संस्कृति ही की कोई सार्थकता नहीं है। रंगमंच की यह विशेषता न केवल उसे किसी भी देश काल की संस्कृति का महत्वपूर्ण उपादान बनाती है बल्कि साथ ही उसे उस संस्कृति के प्रसार और विस्तार का सबसे प्रधान साधन बनाती है। वास्तव में रंगमंच द्वारा यह कार्य एक साथ कई स्तरों पर सम्भव होता है। संयुक्त दृश्य और श्रव्य माध्यम होने के कारण विस्तार की दृष्टि से उसका प्रभाव समुदाय के शिक्षित, अशिक्षित, सभी वर्गों पर पड़ता है। समाज के सजीव और जराग्रस्त दोनों प्रकार के विचारों, भावों, मान्यताओं और आदर्शों को रंगमंच समाज के दूरस्थ क्षेत्र तक ले जाता है।

रंगमंच के उपकरण

पहले कहा जा चुका है कि रंगमंच वह उच्च-स्थल है जहां रंगकर्मी अभिनय कलाओं में नाटक की कथावस्तु का प्रदर्शन करते हैं। रंगमंच एक कला है जिस युग विशेष में जिस प्रकार के रंगमंच की आवश्यकता होती है, रंगमंच उसी रूप में परिवर्तित हो जाता है। नवीन पात्रों के आविर्भाव से उसकी सज्जा देशकाल के अनुसार नये रूप धारण करती है, किन्तु रंगमंच के उद्देश्यों, कार्यों एवं विशेषताओं में कोई परिवर्तन नहीं होता। विभिन्न युगों के देश कालानुसार रंगमंच अपना उद्देश्य, कार्य और विशेषताओं को समाहित कर लेता है। रंगमंच के उपकरणों का विस्तृत सैद्धान्तिक विवेचन अधूरा रहेगा। रंगमंच एक स्थल है, वह एक कला है इसमें नाट्य प्रस्तुतीकरण दर्शक और रंगभवन आदि तथ्य सम्मिलित हैं।

डा० लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है-- रंगभवन में मंच और रंगशाला उभयनिष्ठ है। प्रस्तुतीकरण के दो तत्व हैं- निर्देशन और व्यवस्था। निर्देशन को पुन: दो भागों में विभक्त कर दिया गया है--

१- अभिनय

२- व्यवस्था

अभिनय तत्व आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक - चार उपतत्वों में विभक्त हैं । व्यवस्था के अन्तर्गत रिहर्सल, प्रबन्ध और टिकट से लेकर समापन तक की व्यवस्था है । रंगशिल्प में मंच सज्जा, प्रकाश, वस्त्र विन्यास, रूपविन्यास, संगीत तथा ध्वनि विन्यास का प्रबन्ध है ।[१] इस प्रकार मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि रंगमंच के तीन मुख्य उपकरण हैं ।

१- मंच विधान

२- अभिनेता

३- दर्शक वर्ग

रंगमंच से सम्बन्धित उपकरणों में यह ध्यान देने योग्य बात है कि आज व्यवसायिक और अव्यवसायिक दोनों प्रकार के रंगमंच उपलब्ध हैं । स्थल का चयन मंच का प्रकार यवनिका नेपथ्य ध्वनि प्रकाश व्यवस्था के साथ सम्बन्धित नाटक की परिस्थिति के अनुरूप अन्य प्रकार के साधनों की व्यवस्था के बिना आज रंगमंच की कल्पना सम्भव ही नहीं है ।

अभिनेता नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है । नाटक का पात्रों की क्रिया या घटना ही नहीं उनके अन्तर्द्वन्द्व सुखदुखादि की सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ अभिनय द्वारा ही प्रत्यक्ष होना पड़ता है । परिणामत: अभिनेताओं की मानसिक पृष्ठभूमि और चेष्टा, क्रिया आदि में एक सामंजस्य अनिवार्य हो जाता है । अभिनेता की सफलता की कसौटी उसकी आत्मविस्मृति और अपनी भूमिका के आधार से पूर्ण तादात्म्य की शक्ति ही रहेगी । पात्र-विशेष की पृष्ठभूमि परिस्थिति, संस्कार, संघर्ष आदि से बौद्धिक के साथ-साथ रागात्मक सम्बन्ध की भावना करनी पड़ती है । नाट्यशास्त्र, नाट्यकला, नाट्यसाहित्य आदि का ज्ञान भी उसके अभिनय की सफलता

१- डा० लक्ष्मी नारायण लाल, रंगमंच और नाटक की भूमिका, पृ० १६

में सहायक हो सकता है ।[१]

रंगमंच का तीसरा प्रमुख तत्व दर्शक वर्ग है । जिसको सुरुचि सम्पन्न बनाना रंगमंच का वास्तविक लक्ष्य है । जीवन में जो कुछ भी अशुभ अमंगल कार्य और कुत्सित है उसका नाश कर शिव की स्थापना करना मनुजत्व में देवत्व की परिकल्पना करना रंगमंच द्वारा ही सम्भव है ।[२]

रंगमंच तथा रंगमंचीय उपकरणों के बारे में उपर्युक्त दृष्टियों के अध्ययन से सीधा-सीधा और सबसे अधिक महत्वपूर्ण एक ही निष्कर्ष निकलता है कि रंगमंच से सम्बन्ध जुड़े बिना नाटक की सार्थकता अधूरी और अपूर्ण है । नाटक लोकधर्मी भूमिका तभी निभा सकता है जब वह मंच पर अभिनीत होकर दर्शकों के सामने आये ।

भरत का नाट्य रंगमंच

नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक भरतमुनि ने रंगमंच से जुड़े विविध पदार्थों का विस्तार के साथ वर्णन किया है । भरत के अनुसार नाट्यमंडप की सर्वप्रथम रचना विश्वकर्मा ने की थी । हम समझते हैं कि भरत का यह विश्वकर्मा वह पहला शिल्पी ही कहा जा सकता है जिसने प्रेक्षागृह के स्थायी निर्माण का श्रीगणेश किया होगा । अपने युग के प्रेक्षागृहों को ध्यान में रखकर भरत ने उनका वर्गीकरण दो आधारों पर किया है--

१- रंगमंच का प्रकार

२- रंगमंच का आकार

प्रकार की दृष्टि से नाट्य-मण्डप तीन प्रकार के होते हैं- विकृष्ट : जिन्हें आयताकार कहा जा सकता है ।

१- डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी नाटक व रंगमंच, पृ० १२

२- -वही-

चतुरस्त्र : जो वर्गाकार हैं ।

त्र्यस्त्र : जो त्रिभुजाकार होते थे ।[१]

आकार की दृष्टि से इनमें से प्रत्येक तीन प्रकार का सम्भव है :

ज्येष्ठ : जिसकी एक भुजा एक सौ आठ हाथ की होती थी ।

मध्यम : जिसकी एक भुजा चौंसठ हाथ की होती थी ।

अवर : जिसकी एक भुजा बत्तीस हाथ की मानी जाती थी ।

ये माप हाथ के अनुसार हैं दण्ड के अनुसार भी इतने ही प्रकार और हो सकते हैं, इस प्रकार अभिनव गुप्त ने नाट्य मण्डप के अठारह भेद माने हैं, परन्तु उन्होंने स्पष्टत: स्वीकार किया है कि सभी प्रचलित नहीं थे ।[२]

प्रयोग की दृष्टि से ज्येष्ठ देवताओं के लिये, मध्यम राजाओं के लिये तथा अवर सामान्य जनता के लिये होता था ।[३] अभिनव गुप्त के अनुसार ज्येष्ठ मण्डप में वे नाटक किये जाते थे, जिनके नायक देवता होते थे, मध्यम में जिनके नायक राजा होते थे तथा अवर मण्डप उन नाटकों के लिये था, जिनमें नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि होते थे ।[४]

उपर्युक्त सभी प्रकारों में मध्यम प्रकार के नाट्य मण्डप सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, जिसके मुख्यत: दो कारण भरत ने बताये हैं । प्रथम तो अत्यन्त बृहत् अथवा छोटे नाट्य मण्डप में अत्यन्त उच्चस्वर से किया गया उच्चारण विस्वर हो जाता है । निकटवर्तियों को अधिक उच्च होने के कारण कष्टदायक तथा दूरवर्तियों को सुनाई न दे सकने के कारण कष्टदायक होता है । इसके अतिरिक्त अत्यन्त बड़े नाट्यमण्डप

१- नाट्यशास्त्र २.८

२- वही २.१०

३- वही २.११

४- वही २.१६

में सूक्ष्म मुद्रायें स्पष्ट दिखाई नहीं देती ।[१]

नाट्य मण्डप की सजावट

भरत के नाट्यशास्त्र में प्राप्त प्रेक्षागृह के विवरण से यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि उस युग में प्रेक्षागृह का निर्माण बहुत कुछ विकसित और सुसज्जित हो चुका था । नाट्यशास्त्र में जिन दो प्रकार के प्रेक्षागृहों को सम और विषम रूप में बताया गया है उनसे प्रतीत होता है कि सम प्रेक्षागृह समतल होता था जिसमें रंगपीठ का निर्माण आवश्यक ऊंचाई देकर किया जाता था । इस प्रकार के प्रेक्षागृह का प्रतिरूप हम आजकल के उस नौटंकी रंगमंच में देख सकते हैं जहां दर्शकगण सामने कुर्सियों पर अथवा दरियों पर बैठते हैं तथा नाटक का मंचन तख्तों से बने हुए मंच पर किया जाता है । विषम प्रेक्षागृह को हम कुछ अधिक कलात्मक कह सकते हैं क्योंकि इसका निर्माण सम्भवत: आज के सिनेमा हाल की शैली से मिलता-जुलता था । इसमें प्रेक्षकगण के बैठने का भाग उन्नतोनत सीढ़ियों द्वारा निर्मित होता था ताकि पिछली सीढ़ियों पर बैठे दर्शकों को रंगमंच पर हो रहे अभिनय को देखने में कोई कठिनाई न आये । विषम प्रेक्षागृह में रंगपीठ का निर्माण समभूमि पर होता था तथा वह प्रेक्षकोपवेश से नीचा होता था । आजकल के विश्वविद्यालय कक्षा-सदनों के निर्माण भी कुछ इसी नकल पर किये जाते हैं ।

एक बात और यह समझ में आती है कि नाट्यशास्त्र में आवश्यकतानुसार प्रेक्षागृहों के आकार-प्रकार कुछ घट-बढ़ भी हो सकते थे किन्तु इतना तो निश्चित है कि उस युग में हज़ारों प्रेक्षकों वाले प्रेक्षागृह नहीं हो सकते थे क्योंकि तब आज के युग जैसे ध्वनि-विस्तारक संयंत्रों की कोई सम्भावना नहीं थी ।

मोटे तौर पर भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय प्रेक्षागृह के तीन भाग होते थे-

----

१- नाट्यशास्त्र, २.२०

प्रेक्षकोपवेश, रंगमंच और नेपथ्य । प्रेक्षकोपवेश भाग में प्रेक्षकगण बैठते थे, रंगमंच पर अभिनय होता था और नेपथ्य में अभिनेताओं की साज-सज्जा । भरत ने रंगमंच के आगे मत्तवारिणी नाम के एक चौखम्भे घेरे का भी उल्लेख किया है जिसे हम दर्शकों और अभिनेताओं के बीच थोड़ी दूरी बनाये रखने वाला भाग कह सकते हैं । नाट्यशास्त्र में यवनिका अर्थात् परदे का प्रयोग उल्लिखित हुआ है जिसके आधार पर कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकालने की कोशिश की है जैसे भारतीय नाट्यशाला का स्रोत यूनान रहा हो, किन्तु यह धारणा ठीक नहीं है ।[१]

संस्कृत नाटकों की परम्परा निश्चित ही यूनान अथवा किसी भी अन्य देश की नाट्य-परम्परा से निश्चित ही बहुत प्राचीन है, वह अपने वस्तु-विधान, अभिनय कौशल तथा सामाजिक और कलात्मक उद्देश्यों की दृष्टि से भी पश्चिम की नाट्यकला से बहुत भिन्न और एक विशिष्ट व्यक्तित्व रखती है ।

भवभूति का व्यक्तित्व और कृतित्व

कला की कोई भी कृति रचनाकार की आत्माभिव्यक्ति ही होती है । इसका अभिप्राय यह हुआ कि रचना के माध्यम से रचनाकार अपने आप को ही अभिव्यक्त करता है । बाह्य संसार की वस्तुओं के प्रति जैसा राग-द्वेष, लगाव और अलगाव वह स्वयं अनुभव करता है, जो उसके भावसंसार में कहीं बहुत गहरे बस जाता है, उस सबकी अभिव्यक्ति ही वह अपनी रचना के पात्रों तथा बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से करता है । जिन मूल्यों और आदर्शों को रचनाकार उत्तम समझता है, उन्हें वह अपने आदर्श पात्रों के चरित्र में डाल देता है । जिन्हें वह हेय मूल्य समझता है, उन्हें वह खल पात्रों के चरित्र में डालकर उनके प्रति अनास्था का भाव पैदा करता है । इस तरह एक कला रचना अपना रचनाकार के अंदरूनी और बाहरी दोनों प्रकार के व्यक्तित्व का प्रतिरूप हो जाती है । साहित्य की किसी भी रचना को पढ़कर

१- ए० बी० कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० ३८६

हम उसके रचनाकार के व्यक्तित्व के बहुत से पहलुओं को पहचान सकते हैं । रचना के माध्यम से हम रचनाकार के व्यक्तित्व का चित्र बना सकते हैं । भवभूति जैसे श्रेष्ठ रचनाकार पर तो यह बात और भी अधिक लागू होती है । ऐसे रचनाकार की रचना में झलकता उसका व्यक्तित्व छिपाये नहीं छिपता है ।

इससे पूर्व कि हम भवभूति के व्यक्तित्व की बिंदुवार चर्चा करें, हम यह जान लेना आवश्यक समझते हैं कि वे कौन से प्रमुख तत्त्व हमारे सामने हैं जिन्होंने भवभूति के रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण किया था । भवभूति की नाटक रचनाओं का अध्ययन करने के बाद वे तत्त्व मुख्यत: इन रूपों में सामने आते हैं--

पारिवारिक पृष्ठभूमि

रचनाकार भवभूति हो या कोई सामान्य व्यक्ति, सभी के व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक पृष्ठभूमि का बहुत बड़ा हाथ होता है । यदि परिवार विद्या-सम्पन्न है तो स्वभावत: उस परिवार में जन्मे लोगों को विद्या का संस्कार कुछ-न-कुछ तो परम्परा से अनायास ही मिल जाता है और यदि पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह क्रम वैसा ही स्वस्थ बना रहता है तो ऐसे पारिवारिक परिवेश में असाधारण प्रतिभाएं पैदा हो जाती हैं । भवभूति ने अपने नाटकों में अपनी पारिवारिक परम्परा का जो विवरण दिया है, उससे ज्ञात होता है कि उनका परिवार कई पीढ़ियां पूर्व से ही वेदविद्या का केन्द्र रहा था । उनके परिवार में श्रौत यज्ञों और अनुष्ठानों की एक लम्बी श्रोत्रिय परम्परा चली आ रही थी । उनसे पांच पीढ़ी पहले उनके पूर्वज महाकवि ने वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान किया था । उनके पितामह भट्टगोपाल और पिता नीलकंठ भी इसी श्रोत्रिय परम्परा के प्रकाण्ड प्रतिनिधि थे । भवभूति द्वारा दिये गये विवरण से ज्ञात होता है कि वह श्रोत्रिय परम्परा विदर्भ देश में रहने वाले दाक्षिणात्य ब्राह्मणों की थी । यह लोग गोत्र से कश्यप ऋषि के वंशज थे और कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी थे । पंचाग्नि हवन इनके दैनिक जीवन का भाग था । वाजपेययाग और सोमयाग इनकी श्रोत्रिय परम्परा के गौरव के प्रतीक

थे । इस उच्च कोटि की श्रोत्रिय परम्परा में पिता नीलकण्ठ और माता जातुकर्णी के पुत्र भवभूति का जन्म हुआ था । भवभूति ने बड़े ही आत्मगौरव के स्वर में अपनी इस परम्परा का विस्तार से उल्लेख अपने नाटकों की प्रस्तावना में किया है । सर्वाधिक विस्तृत विवरण उनके 'महावीरचरित' में मिलता है--

> अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम् । तत्र केचित्
> तैत्तिरीया: काश्यपाश्चरणगुरव: पंक्तिपावना: पंचाग्नय: धृतव्रता:
> सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिन: प्रतिवसन्ति । तदामुष्यायणस्य
> तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवे: पंचम: सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य
> पौत्र: पवित्रकीर्ते: नीलकण्ठस्य आत्मसंभव: श्रीकण्ठपदलांछन:
> पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्र: कवि:
> मित्रधेयमस्माकमित्यत्र भवन्तो विदांकुर्वन्तु ।

कुलपरम्परा का यही परिचय भवभूति के 'मालतीमाधव' से मिलता है । 'मालतीमाधव' की प्रस्तावना में परिवार की जीवनमूल्यों की गरिमा को सूचित करने वाला एक श्लोक और अच्छा प्रकाश डाल देता है--

> ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय
> भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते ।
> इष्टाय पूर्ताय च कर्मणो र्थान्
> दारानपत्याय तपो र्थमायु: ।।

यह थी भवभूति के परिवार की आदर्श परम्परा जिसमें तत्त्व निर्णय में वेद को सर्वोपरि प्रमाण माना जाता था । इष्ट और पूर्त कर्मों के सम्पादन के लिये ही जहाँ अर्थोपार्जन होता था । वंश परम्परा का विच्छेद न हो इसलिए सन्तान की इच्छा से ही वे गृहस्थ धारण करते थे । उनके जीवन का परम लक्ष्य तप होता था ।

भवभूति ने अपने परिवार की जिस परम्परा को 'पंक्तिपावन' ब्राह्मणों की परम्परा कहा है, उसका लक्षण करते हुए मनु ने कहा है--

> अग्र्या: सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
> श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेया: पंक्तिपावना: ।।
>
> - मनु० ३.१८४

अर्थात् जो ब्राह्मण वेदों और वेदांगों के अग्रणी विद्वान हैं, श्रौत यागों के अनुष्ठान करने वाले हैं,वे ब्राह्मण 'पंक्तिपावन' कहे जाते हैं ।

शैक्षिक पृष्ठभूमि

पारिवारिक पृष्ठभूमि के बाद व्यक्तित्व के निर्माण में व्यक्ति की शैक्षिक परम्परा का योगदान होता है । अच्छे गुरु और आचार्य योग्य शिष्यों की नई पीढ़ियां तैयार करते हैं । व्यक्तित्व का श्रेष्ठ निर्माण करने वाले ऐसे महान् आचार्यों के शिष्य रूप में अपना परिचय देकर ही व्यक्ति आत्मगौरव अनुभव करता है । यह ठीक ऐसे ही होता है जैसे आजकल हम लोग कुछ प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों का या अच्छे आचार्य और प्रोफेसर का स्नातक होना गौरव की बात मानते हैं । भवभूति के स्वयं के उल्लेख से ही पता चलता है कि उनके गुरु एक असाधारण प्रतिभा और ख्याति वाले आचार्य थे । वे नाम और अर्थ दोनों से 'ज्ञाननिधि' थे । उनका शिष्य कहलाने भर से व्यक्ति समाज की दृष्टि सम्माननीय विद्वान समझा जाता था । भवभूति ने स्वयं ऐसा ही कथन अपने बारे में मालतीमाधव की प्रस्तावना में किया है--

> गुणै: सतां न मम को गुण: प्रख्यापितो भवेत् ।
> यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरु: ।।

पर्यावरणिक पृष्ठभूमि

व्यक्तित्व के निर्माण में प्राकृतिक परिवेश और पर्यावरण का भी विशेष योगदान रहता है। सौम्य पर्यावरण में जन्मे और बढ़े हुए लोगों का व्यक्तित्व स्वभावत: मधुर और उदार गुणों से युक्त होता है। विराट् सागर का पर्यावरण तटवर्ती लोगों के व्यक्तित्व में कल्पनाशीलता और साहसिकता का गुण पैदा करता है। हिमालय जैसे आकाशचुंबी पर्वत और उनसे बहने वाले कलकल झरने तथा हरित प्रदेश स्वभाव में एक गहरी संवेदनशीलता ला देते हैं। इसके विपरीत प्रभाव रूखे प्राकृतिक पर्यावरण का होता है। भवभूति के नाटकों से पता चलता है कि उनके व्यक्तित्व के निर्माण में विन्ध्य प्रदेश के प्राकृतिक पर्यावरण का बहुत बड़ा प्रभाव है।

सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

व्यक्तित्व के निर्माण में तथा व्यक्ति की सामाजिक मूल्यदृष्टि बनाने में उसके युग के सामाजिक और राजनीतिक परिवेश का गहरा और अमिट प्रभाव होता है। इस प्रभाव को हम कालिदास और भवभूति के नाटकों में बहुत ही भिन्न रूप में देख सकते हैं। कालिदास के काव्य और नाटक एक विराट और शक्तिशाली राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति करते हैं। उसके राजन्य नायक पदे-पदे वर्णाश्रम धर्म के पालक सूचित किये जाते हैं। उनकी राजनीतिक दृष्टि का फलक बहुत विस्तृत है। भवभूति की राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि का उतना विस्तार नहीं मिलता है। इसका कारण दोनों नाटककारों के युग के राजनीतिक और सामाजिक परिवेश का अंतर ही माना जा सकता है। कालिदास का गुप्त युग एक ऐसी केन्द्रीय राजसत्ता का युग है जहां पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण सागर तक फैले भारत का 'स्ववीर्य गुप्त' विराट् चित्र है। भवभूति का युग हर्षवर्धन के बाद का है जब वैसी शक्तिशाली केन्द्रीय राजसत्ता नहीं रह गई थी। धीरे-धीरे भवभूति के विदर्भ और पद्मावती जैसे लघुकाय राज्यों का उदय होने लगा था।

साहित्यिक पृष्ठभूमि

आठवीं शती के आसपास हुए संस्कृत के इस महान नाटककार को अपने से पूर्ववर्ती नाटकों की एक महान परम्परा प्राप्त थी । नाटक रचना और रंगमंच के लिये नाट्यशास्त्रीय सिद्धांत सुस्थिर हो चुके थे । भवभूति के श्रेष्ठ नाटक बताते हैं कि उन्होंने अपने से पूर्व की नाटक परम्परा से बहुत कुछ सीखा और अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर ऐसी श्रेष्ठ नाटक रचनाएं कर डालीं जो उन्हें कालिदास जैसे महान नाटककार के समकक्ष बना देती हैं । भवभूति से पूर्व की संस्कृत नाटक परम्परा के कुछ मुख्य नाटककारों का संकेत कर देना यहां आवश्यक है । इससे हम यह सरलता से जान सकेंगे कि संस्कृत नाटकों की महान परम्परा हमारा यह नाटककार किस स्थान पर प्रतिष्ठित है ।

संस्कृत के सर्वप्रथम नाटककार होने का गौरव हम भास को देते हैं । सर्वथा सुनिश्चित तो नहीं कहा जा सकता किन्तु अनेक विद्वान भास को ईसा से बहुत पूर्व मानते हैं । भास के नाम से तेरह नाटक बताये जाते हैं । उनके नाटकों में प्रतिमा, प्रतिज्ञायौगंधरायण, स्वप्नवासवदत्ता और दरिद्रचारुदत्त विशेष लोकप्रिय हैं । भास के नाटकों का रचनाविधान कुछ बातों में नाट्यशास्त्र में वर्णित नाटकीय नियमों से बाहर है । हो सकता है, भास के युग में नाट्यशास्त्रीय अनुशासन उतना प्रभावी न हो जितना कालिदास आदि के युग में वह हो गया । नाट्यशास्त्र के अनुसार सूत्रधार के मंच पर प्रवेश करने से पूर्व समूहगान के रूप में देवस्तुति रूप से नांदी गान का विधान है । नाटककार नाटक के अंग रूप में नांदी गान को लिखता है । भास के नाटकों में ऐसा नहीं मिलता । हो सकता है भास के युग में इसे लोकाचार मानकर नाटक का हिस्सा न बनाया जाता हो । मृत्यु दृश्य को रंगमंच पर लाने के बारे में नाट्यशास्त्र निषेध करता है किन्तु भास ने इस प्रतिबंध को नहीं स्वीकारा है । गुणात्मक दृष्टि से भास के नाटक असाधारण माने जाते हैं । उनका सबसे बड़ा गुण नाटकों की अभिनेयता है ।

भास के बाद उल्लेखनीय नाटककार के रूप में कालिदास का नाम ही सर्वप्रथम आता है । इस महान् नाटककार को भारतीय परम्परा ईसा पूर्व प्रथम शती में मानती है । अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् इन्हें गुप्त शासन काल में स्थापित करते हैं । उनके अनुसार कालिदास का स्थितिकाल पांचवीं शती होना चाहिए । कालिदास के महान कृतित्व से आज सारा विश्व परिचित है । वह एक महान नाटककार होने के साथ-साथ उतने ही महान गीतकार और महाकाव्यकार भी हैं । उनके तीन नाटक हैं-- मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञान शाकुन्तल । तीनों ही नाटक नाट्य-शास्त्रीय और रंगमंचीय दृष्टि से अद्भुत माने जाते हैं । इन नाटकों की सुचारुता और पूर्णता ने भावी नाटककारों का निश्चित ही बहुत प्रभावी मार्गदर्शन किया होगा । कालिदास की नाट्यकला का ही एक अन्य उत्कृष्ट रूप हम भवभूति के नाटकों में देखते हैं ।

कालिदास के बाद हम शूद्रक के रूप में एक और श्रेष्ठ नाटककार देखते हैं । उनका 'मृच्छकटिक' नाटककला के उत्कर्ष का एक विशेष रत्न है । शूद्रक के नाटक का एक असाधारण नवीन तत्व यह है कि उसका नायक और नायिका कोई राजा-रानी न होकर मध्यवर्गीय व्यापारी और गणिका (वेश्या) है । इस नाटक की कथावस्तु और अभिनेयता आधुनिक युग की किसी भी श्रेष्ठ फिल्म को मात दे सकती है । शूद्रक के इस नाटक की यह विशेषताएं बहुत बड़ी सीमा तक हम भवभूति के मालती-माधव में देख सकते हैं । शूद्रक का मृच्छकटिक और भवभूति का मालती-माधव दोनों ही अपने रचनाविधान में अनूठे प्रकरण नाटक कहे जा सकते हैं । यद्यपि भास का 'दरिद्रचारुदत्त' शूद्रक के नाटक को आधारकथा देने वाला कहा जा सकता है, परन्तु मृच्छकटिक की कलात्मकता के सामने वह नहीं ठहर सकता । आगे चलकर सातवीं शती में हम एक और महान नाटककार को देखते हैं । यह नाटककार हर्ष के रूप में सामने आता है । हर्ष ने संस्कृत नाट्य साहित्य के लिये अपनी उत्कृष्ट नाटिकाओं से समृद्ध किया है । यद्यपि उन्होंने 'नागानंद' नाम का एक श्रेष्ठ नाटक भी लिखा है किन्तु लोकप्रियता की दृष्टि से उनकी दो नाटिकाएं- प्रियदर्शिका

और रत्नावली ही अधिक प्रतिष्ठित रही हैं। इनकी 'रत्नावली' नाटिका को 'नाट्यशास्त्रीय कला का चरम परिपाक' माना जाता है।

उक्त प्रकार से हम देखते हैं कि नाटककार भवभूति से पूर्व संस्कृत नाटक की एक अत्यन्त उत्कृष्ट परम्परा मिलती है। भास, कालिदास और शूद्रक ने नाट्यकला के अनमोल हीरे पहले से ही रचकर तैयार कर दिये थे। उनके नाटकों में ऐसा बहुत कुछ था जिससे आगे के नाटककार प्रेरणा लेकर श्रेष्ठ नाटक रचनाएं कर सकते थे। जहां तक कालिदास की नाट्यकला का प्रश्न था वह तो आगे आने वाले नाटकों के लिये एक चुनौती भरा प्रतिमान ही बनी हुई थी। सच तो यह है कि कालिदास के उस प्रतिमान को छूने के लिये एक असाधारण प्रतिभा वाले नाटककार की प्रतीक्षा थी। संस्कृत नाटक की उस शताब्दियों लम्बी प्रतीक्षा को पूरा किये मुक्त प्रतिभा के धनी भवभूति ने। इस बारे में प्रखर समीक्षक डा० शिवबालक द्विवेदी का कथन है-- 'कालिदास के पश्चात् भवभूति के अतिरिक्त 'मुद्राराक्षस' के रचयिता कविवर विशाखदत्त ही ऐसे कवि हैं जो कि संस्कृत नाट्य परम्परा में कतिपय नवीन मूल्यों की स्थापना करने में सक्षम हुए हैं। वे अपनी कृति में नवीन मूल्यों की स्थापना तो करते हैं परन्तु महाकवि कालिदास के द्वारा प्रतिष्ठापित नाट्यमार्ग से लोहा लेने में कतराते हैं। अतएव उस मार्ग का परित्याग कर एक नये मार्ग से निकल जाते हैं। कदाचित् उन्हें भय था कि कालिदास से टकराकर नाट्य जगत् में प्रतिष्ठा पा सकना अत्यन्त दुष्कर होगा। महाकवि भवभूति ही एकमात्र ऐसे साहसी कवि हैं जो कालिदास की नाट्यकला को चुनौती देते हैं। भवभूति कालिदास के द्वारा प्रतिष्ठापित नाट्यमार्ग को अपनाकर उनसे आगे बढ़ने के लिये प्रवृत्त होते हैं।[१]

अब तक हमने उन मुख्य कारकों का विवरण किया है जिनका हमारे इस महान नाटककार के व्यक्तित्व और कृतित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

१- डा० शिवबालक द्विवेदी : महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनितत्व, पृ० २६

अब हम यह देखना चाहेंगे कि उपर्युक्त कारकों में से किसने और किस-किस रूप में नाटककार भवभूति का निर्माण किया है ।

प्रथम बात पारिवारिक परिवेश से आरम्भ की जाती है । जिस वैदुष्यपूर्ण श्रोत्रिय परम्परा की जानकारी स्वयं भवभूति ने गर्व के साथ हमें सूचित की है, उस परम्परा ने हमारे नाटककार को स्वयं भी वेद-वेदांग, व्याकरण, सांख्य-योग और मीमांसा आदि जटिल शास्त्रों का महापंडित बनाया । भवभूति ने स्वयं अपने लिये तीनों नाटकों की प्रस्तावना में `पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ` विशेषण का प्रयोग किया है--

अस्ति खलु तत्र भवान् काश्यप: श्रीकण्ठपदलांछन: पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातूकर्णी पुत्र: ।[१] `पदविद्या` व्याकरणशास्त्र, `वाक्यविद्या` न्यायशास्त्र तथा `प्रमाणविद्या` मीमांसाशास्त्र को कहा जाता है ।

मालतीमाधव की प्रस्तावना में भवभूति स्वयं को बहुत ही स्पष्ट शब्दों में वेद, उपनिषद्, सांख्य और योग का पण्डित सूचित करते हैं--

यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि तत: कश्चिद् गुणो नाटके ।
यत् प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवम्
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययो: ।।[२]

इस महान नाटककार के उक्त कथन से जहां एक ओर उसका विविध शास्त्रों का अगाध पाण्डित्य और असाधारण शास्त्राधिकार प्रकट होता है वहीं दूसरी ओर यह भी पता चलता है कि जटिल शास्त्रों के ज्ञान को भवभूति के अन्दर का नाटककार नाटक

१- उत्तररामo प्रस्तावना

२- मालतीo १.८

जैसी कलात्मक कृति के लिये असाधारण महत्व की चीज नहीं मानता है। वह यह अच्छी तरह जानता है कि सर्जनात्मक कला और शास्त्रों का ज्ञान दो बहुत ही भिन्न वस्तुएं हैं। ऐसा यदि न होता तब तो सारे बड़े-बड़े शास्त्रकार वाल्मीकि और कालिदास की तरह महान् कवि हो सकते थे। नाटक हो या कला का कोई अन्य रूप वह शास्त्रों के ज्ञान से भी अधिक संवेदनशीलता की अपेक्षा करता है। कला के बारे में कोरी तर्कबाजियां और प्रमाणजाल किसी काम आने वाले नहीं होते। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे नाटककार ने कहा है कि - 'शास्त्रों का पाण्डित्य प्रदर्शन से नाटक रचना में कोई गुणवत्ता पैदा नहीं की जा सकती है। नाटक की अभिव्यक्तियों में जो प्रकर्ष आता है वह भावप्रवणता से आता है। वाणी में जो उदारता और खुलापन आता है वह भी संवेदनशीलता से आता है। थोड़े से शब्दों में जो व्यापक अर्थ भी देने की चातुरी है वह भी शास्त्रीय पाण्डित्य से नहीं व्यवहार की समीक्षा से आती है। नाटक जैसी कला के लिये तो वाणी की प्रौढ़ता, उदारता और अर्थ-संप्रेषण की पूर्ण क्षमता जैसे लेखकीय गुणों की आवश्यकता होती है। कला के लिये तो इन्हीं का नाम पाण्डित्य है और इन्हीं का नाम विदग्धता है।

साहित्य के जितने भी रूप हैं चाहे वह कविता हो, कथा हो, नाटक हो अथवा गीतकाव्य आदि सभी शब्द की रचना हैं। जैसे मूर्ति के लिये प्रधान उपादान मिट्टी, पत्थर या लकड़ी होते हैं उसी तरह साहित्य की रचना के लिये सर्वप्रधान कारण भाषा होती है। शब्द और उसका अर्थ आपस में अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं, इस बात को ध्यान में रखकर हमारे कुछ काव्यशास्त्रियों ने काव्य रचना की परिभाषा 'शब्दार्थौ काव्यम्'[१] के रूप में की है। दूसरे काव्यशास्त्रियों ने केवल शब्द को ही काव्य कहा है। पंडितराज जगन्नाथ का कथन है--

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

साहित्यदर्पण के लेखक विश्वनाथ कविराज 'रसात्मक वाक्य' को काव्य कहते हैं।[२]

१- काव्य प्रकाश, काव्य परिभाषा

२- साहित्य दर्पण, काव्य परिभाषा

हम समझते हैं शब्द और अर्थ के जुड़वां होने से शब्दवादी और शब्दार्थोभयवादी काव्यपरिभाषाओं का तात्पर्य एक ही है । रचनाकार को शब्द और अर्थ दोनों ही समान महत्व रखते हैं । रचनाकार जो कुछ कह रहा है अर्थात् जिस कथ्य को वह अपने शब्दों में व्यक्त करना चाहता है, यदि वह रमणीय और सुन्दर नहीं है तो कोरे शब्दों के दिखावे से क्या बनता है । हमारे काव्यशास्त्री तो शब्दों का दिखावा करने वाली रचना को अधम श्रेणी की रचना मानते हैं । कृत्रिमता तो चाहे कथन में हो और चाहे कथ्य में रचना को असुन्दर और घटिया ही कर देती है । इसीलिए काव्यप्रकाशकार ने शब्दों की कोरी चित्रात्मकता को और अर्थ की भी चित्रात्मकता को अधम काव्यरचना ही बताया है--

शब्दचित्रं वाच्यचित्रं अव्यंग्यं तु अवरं स्मृतम् ।[१]

महान् नाटककार और कविताकार कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य की रचना करते हुए शिव और पार्वती की वंदना से प्रस्तावना की है । इस वंदना में वे शब्द और अर्थ दोनों की ही श्रेष्ठ प्राप्ति की कामना की है । एक रचनाकार के रूप में वे स्वयं जानते हैं कि वाक् और अर्थ दोनों पार्वती और परमेश्वर की तरह एक दूसरे के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हैं ।[२] शब्द और अर्थ दोनों को तुल्य महत्व देने वाली दृष्टि ही हम नाटककार भवभूति में पाते हैं । वे भी श्रेष्ठ नाटक रचना के लिये शब्दों की 'प्रौढि और उदारता' के साथ-साथ 'अर्थ के गौरव' को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानते हैं ।[३]

शब्द और अर्थ का मर्म जानने वाले नाटककार भवभूति के अपने विपुल शब्दज्ञान पर बड़ा आत्मविश्वास था । उन्हें अर्थ के अनुकूल शब्द की खोज नहीं करनी पड़ती थी ।

१- काव्यप्रकाश, 1·7

२- रघुवंश, 1·1

३- मालतीमाधव, अंक 1 प्रस्तावना ४

शब्द स्वयं दौड़-दौड़ कर उनके पास चले आते थे। उनके अन्दर का आत्मविश्वासी रचनाकार ही यह कह रहा है कि मैं वह लेखक हूं जिसके साथ भाषा वशीभूत होकर चलती है-- यं ब्रह्माणामियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।[१]

भाषा का असाधारण ज्ञान रचनाकार के सामर्थ्य का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। किन्तु वही सब कुछ नहीं है। शब्दकोष दोहरा देने से अच्छा कवि या नाटककार कोई नहीं माना जा सकता। रचनाकार को दूसरे गुणों की आवश्यकता भी होती है। उदाहरण के लिये एक श्रेष्ठ रचनाकार को अपने अभिरुचिपूर्ण विषय का चयन भी करना होता है। उसे यह भी देखना होता है कि अपनी साहित्य रचना के माध्यम लोकजीवन के लिये क्या सन्देश देना चाहता है। जो सन्देश या आदर्श वह समाज को देना चाहता है उसके लिये कैसा चरित्रनायक और कैसी कथावस्तु की अपेक्षा है। रचनाकार की इस योग्यता को हम वस्तु के चयन की योग्यता कह सकते हैं। चयन की यह योग्यता वास्तव में शब्दों के बारे में भी लागू होती है। अर्थ के सदृश शब्द के प्रयोग ही श्रेष्ठ रचना के लिये उचित माना जाता है। हमारे यहां तो चयन के इस औचित्य को लेकर ही क्षेमेन्द्र ने एक नया काव्यसिद्धान्त दे डाला। क्षेमेन्द्र का वह सिद्धांत 'औचित्य' नाम से ही जाना जाता है।[२]

भाषा पाण्डित्य के साथ-साथ भवभूति के पास चयन का भी पाण्डित्य है। वे अपने अभिमत सामाजिक मूल्यों का सन्देश देने के लिये उचित कथा का चयन करने की क्षमता रखते हैं। वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि नाटक एक दृश्य काव्य होता है। उसे लोगों के सामने मंच पर आना है। इसलिए इतिहास-पुराण से या किसी भी प्राचीन ग्रंथ से यदि कोई कथा ग्रहण की जाये तो उस कथा की लोकप्रियता

१- उत्तर० १.२

२- औचित्यविचार चर्चा, का० ७-१०

को आंक लिया जाये । साथ ही यह भी देख लिया जाये कि उस कथा से जुड़े पात्रों के माध्यम से वह सन्देश दिये जा सकते हैं या नहीं । हम समझते हैं भवभूति ने अपनी इसी चयन दृष्टि से अपने दो महत्वपूर्ण नाटकों के लिये समकालीन जीवन में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं आदर्श रामकथा का चयन किया है । रामकथा पर आधारित उनके वे दो नाटक 'महावीर चरितम्' और 'उत्तररामचरितम्' हैं । भवभूति की यह चयन दृष्टि हम उनके उस कथन में देखते हैं जो उन्होंने अपने 'महावीरचरितम्' नाटक के आकर्षण को लेकर कही है-- वश्यवाच: कवेर्वाक्यं सा च रामायणी कथा । इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि इस नाटक का लेखक भाषा के दारिद्रय से ग्रस्त नहीं है । उसके पास नाटकीय भाषा का पूर्ण ज्ञान है । साथ ही यह भी कि इस नाटक की कथा घटिया चरित्र की नहीं है जो समाज को कुछ दे ही न सके ।

भवभूति के इस कथन को पढ़कर जब हमारा ध्यान आधुनिक नाटक की जगह लेने वाली फिल्मों की ओर जाता है तो लगता है कि उनमें से अधिकांश न भाषा की कलात्मकता है और न कहानी की श्रेष्ठता । इस तरह के आधुनिक कहे जाने वाले सारहीन नाटक हों या फिल्म पैदा होते ही मर जाते हैं । इसके विपरीत हमारे भवभूति और कालिदास के नाटक हैं जिनकी भाषा से अपरिचित लोग भी उनके रूपांतरों को देखकर ही वाह-वाह कर उठते हैं । अपने इस महान चरित्र के बल पर ही भवभूति और कालिदास आदि के नाटक आज तक जीवित हैं और सम्मान पा रहे हैं । आज भी लोग उनके कलात्मक पदों का बड़ी गहराई से अध्ययन करते हैं और उनसे बहुत कुछ सीखते हैं । जब हम अपने देश की हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के नाटकों का इतिहास पढ़ते हैं तो पाते हैं कि सभी आधुनिक भाषाओं में नाटकों का आरम्भ भास, कालिदास और भवभूति आदि संस्कृत नाटककारों के अनुवादों से ही हुआ है । उदाहरण के लिये जयशंकर प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' संस्कृत के 'देवीचन्द्रगुप्त' से प्रभावित है ।

उपर्युक्त कथनों से हमारा एक ही आशय है कि संस्कृत के नाटककारों के पास नाटक की एक नाट्यशास्त्रीय कला भी रही, नाटक रचना के योग्य भाषा भी रही और रचना की एक उद्देश्य दृष्टि भी रही । उद्देश्य दृष्टि से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि कोरा आदर्शवाद रहा बल्कि यह कि धर्म, अर्थ और काम के बीच एक संतुलन रहा । इस संतुलन में भवभूति कालिदास से कुछ आगे ही निकल गये हैं । उनका उत्तर-रामचरित एक और राजधर्म का अद्वितीय आदर्श है तो दूसरी ओर आदर्श प्रेम का भी । लोग इसमें करुणा की बात करते हैं परन्तु करुणा प्रेम की पीड़ा से अलग कहीं नहीं है । ऐसी नाटक रचना भवभूति जैसा श्रेष्ठ नाटककार कर सकता था । भवभूति के प्रशंसकों ने सम्भवत: इन्हीं सारी विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनकी और कालिदास की प्रतिस्पर्धा की कोई कहानी बनाकर स्वयं कालिदास के मुख से यह कहलवाया है--

नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा ।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।।

हमारे उक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भवभूति को अपने परिवार की परम्परा अनेक प्रकार के शास्त्रों का पाण्डित्य मिला था । पाण्डित्य की उस परम्परा का उन्हें कोई दुरभिमान नहीं था, परन्तु स्वाभिमान अवश्य था । वह शास्त्रों और कला की दूरी को पहचानते थे । शास्त्रीय ज्ञान कला में कहां और किस रूप से काम में आता है यह वह अच्छी तरह जानते थे । जो कुछ अपने पाण्डित्य के बारे में कहा है उसके कलात्मक प्रयोग हम उनके नाटकों में देख सकते हैं । उदाहरण के लिये वे ऋषि जीवन के पात्रों से अनुकूल अवसर पर जो सिद्धान्त कथन करते हैं, वे प्राय: किसी न किसी वेद-वेदांग या शास्त्र का ही सन्दर्भ संकेत देता है । उनके शास्त्र परिचय का विस्तार और शास्त्रीय वाक्यों को नाटकीय संवादों में बदल देने की कला इन दोनों गुणों को प्रदर्शित करने वाले कुछ नाटक सन्दर्भ देखे जा सकते हैं ।

हम जान चुके हैं कि भवभूति का जन्म ऐसे विद्या सम्पन्न परिवार में हुआ था जहां उचित और अनुचित, शास्त्रीय और अशास्त्रीय के सन्देहों को `वेदप्रमाण` से तय किया जाता था । भवभूति भी अपने नाटकों में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार करने में सामान्यत: किसी साधारण भाषा का प्रयोग ही अधिक करते हैं । ऐसा एक उदाहरण हम तपस्वी शंबूक के लिये उसकी तपस्या के फल स्वरूप आनन्द और मोद से भरपूर `वैराज` लोक प्राप्त करने की शुभकामनाएं करने वाले राम के कथन में पाते हैं । राम का वह कथन है--

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पद: ।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसा: सन्तु ते शिवा: ।।[१]

निश्चित रूप से भवभूति का यह नाटकीय संवाद ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र की छाया प्रदर्शित करता है--

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद: प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ता कामास्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।[२]

भवभूति का वैदिक भाषा के साथ ऐसा स्वाभाविक व्यवहार यह बताता है कि वेद भाषा और उस भाषा के अन्दर समाया अर्थ तत्व उन्हें लोकभाषा की तरह आत्मसात हो गये थे । इसलिये नाटक के उन पात्रों जो वेदज्ञान के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं वे सहज रूप से वेदोक्तियों का प्रयोग करा देते हैं । वैसे यदि नाटक की सामान्य भाषा प्रवृत्ति का विचार करें तो इस तरह के संवाद अनेक बार विशिष्ट भाषायी स्तर के लगते हैं । लेकिन नाटककार बेचारा विवश है, क्योंकि उसका व्यक्तित्व और संस्कार लोक तो इस भाषा के साथ रच-पच गया है ।

१- उत्तर ० २.१२

२- ऋग्वेद ९.११३.११

भवभूति के नाटकों में उपर्युक्त प्रकार के वेदवाक्य जिस प्रकार से नाटककार के वैदिक संहिताओं के पाण्डित्य को सूचित करते हैं, उसी प्रकार अवसर-अवसर पर संकेतित किये गये काण्ड और सूत्रवाक्य भी नाटककार के श्रौतसूत्रों, धर्मसूत्रों और ब्राह्मणग्रन्थों के यज्ञकाण्डों का गहन परिचय विदित करा देते हैं। उत्तररामचरित के चतुर्थ अंक में भिन्न-भिन्न विधि से कोटि के नीतिशास्त्र या पुराण वाक्य का सन्दर्भ नहीं देते हैं अपितु सीधे वेदवाक्य ही संदर्भित करते हैं। उदाहरण के लिये जब कौशल्या सीता के पुनर्मिलन के बारे में अत्यन्त निराश हो धैर्य खोने लगती है, अरुंधती का यह सांत्वना वाक्य भी उसे आशा नहीं बंधा पाता है कि कुलगुरु ने तो ऋष्यशृंग के आश्रम में कह दिया था कि जो होना था वह तो हो ही गया किन्तु परिणाम कल्याणकारी ही होगा--

भवितव्यं तथेत्युपजातमेव। किन्तु कल्याणोदर्कं भविष्यति।[१]

निराश कौशल्या बोलती है, जिसके सारे मनोरथ पहले ही चकनाचूर हो गये हैं, उस मूक-सी अभागिन के लिये अब कल्याण की सम्भावना क्या हो सकती है। ऋषि वाक्य पर उसकी निराशा भरी अनास्था देखकर अरुन्धती कहती हैं, 'दात्रिये, ऐसा अविश्वास मत करो। तुम क्या समझती हो? वह मृषा वचन था?' इस प्रसंग में भवभूति बहुत ही सटीक शैली से और अरुन्धती जैसे ऋषि पात्र से वेद वाक्य का प्रमाण कथन कराते हैं--

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्यवहारास्तेषां मा संशयोभूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मी निषिक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।।[२]

हम देखते हैं कि अरुन्धती के इस कथन में नाटककार ने ऋग्वेद के निम्न मंत्र का प्रमाण दिया है--

----

१- उत्तर० अंक-४

२- वही ४.१८

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।।[१]

जो मनीषी ऋषि जन मनन पूर्वक सत्तू की तरह छान-फटक कर वाणी का पवित्र व्यवहार करते हैं। वाणी उनकी मित्र हो जाती है। उनकी वाणी में कल्याणी लक्ष्मी निवास करती है। अर्थात् उनका बोला हुआ कभी मिथ्या नहीं होता।

इस मन्त्र के चतुर्थ चरण का प्रयोग अरुन्धती के संवाद में हमारा नाटककार शब्दश: कर रहा है।

इसी प्रकार हम देखते हैं जहां कहीं किसी के यज्ञ, तप या ऐसे ही अनुष्ठान के फल कथन का अवसर आता है तो भवभूति वैदिक सन्दर्भों को आश्रम के दो मान्य अतिथियों का मधुपर्क से अभिनन्दन किया जाता है। वहां पर वशिष्ठ के लिये समांस मधुपर्क होता है और राजा जनक के लिये मांसरहित मधुपर्क दिया जाता है। इस मधुपर्क भेद का आधार भी हमारा नाटककार धर्मसूत्रों की भाषा में ही बताता है। महामहिम वशिष्ठ के सत्कार में नई बछड़ी की हिंसा की जाती है। वह धर्मसूत्रों के द्वारा अनुमत है। यह हिंसा वेद द्वारा विहित है वाल्मीकि आश्रम का सौधातकि जब इस हिंसा का उपहास करता है तो उसका दूसरा साथी दाण्डायन उसे फिड़कता है और समाधान करता है-- समांसो मधुपर्क इति आम्नायं बहु मन्यमाना: श्रोत्रियाय अभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा पचन्ति गृहमेधिन:। तं हि धर्मं धर्मसूत्रकारा: समामनन्ति।

इसके विपरीत राजर्षि जनक के लिये दधि और मधु से किये गये मधुपर्क के बारे में उनके निरामिस होने के कारण धर्मसूत्रों के अनुसार ही निर्मांस मधुपर्क का विकल्प बताया गया है।

१- ऋग्वेद १०.७१.२

इसी प्रकार हम वाल्मीकि आश्रम में राम के अश्वमेध यज्ञ का अश्व पहुंच जाने पर लव तथा अन्य आश्रम बटुकों की वार्ता में नाटककार के अश्वमेध काण्ड के ज्ञान का परिचय पाते हैं। आश्रम बटुकों से यह जानकर कि कोई 'अश्व' नाम वाला पशु आश्रम में घुस आया है, लव कहता है-- अश्वो एव इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते। स्पष्ट रूप से नाटककार यह वैदिक कोश और सांग्रामिक शास्त्र का संकेत कर रहा है। पाण्डित्य के साथ-साथ नाटककार की कलात्मक चातुरी इस बात में है कि जनपद के अश्वादि पशुओं से अपरिचित भोले आश्रमवासी बच्चों के मुंह से उसके अर्थबोध की बात वह पढ़े हुए कोश और शास्त्र के माध्यम से कराता है। इस नाटकीय व्यवहार आश्रमवासी बच्चों के भोलेपन में और चार चांद लग जाते हैं।

इससे आगे लव जैसे ही उस अश्व को देखता है, तुरन्त कह उठता है- दृष्टम् अवगतं च। नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्व:।

साथियों के यह पूछने पर कि कैसे जान लिया? लव कहता है, ननु मूर्खा: पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। नाटककार का यह सन्दर्भ शतपथ ब्राह्मण के उस काण्ड का संकेत कर रहा है जिसमें अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। इतना ही नहीं शास्त्र के अनुसार अश्वमेध के अश्व की रक्षा के लिये कवचधारी, दण्डधारी और तूणीरधारी सैनिकों की सौ-सौ की टुकड़ियां चलती हैं, यह भी लव के संवाद से सूचित होता है।

यह 'अश्वमेध' यज्ञ क्या होता है? इस प्रश्न का उत्तर भी लव सरल शास्त्रीय शब्दावलि में कर देता है-- अश्वमेध इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणां ऊर्जस्वल: सर्वक्षत्रपरिभावी महान् उत्कर्षनिकष:।

पुरातन वांगमय, चाहे वह वेदसंहिताएं हों, ब्राह्मण, आरण्यक या उपनिषद् ग्रन्थ, पुराण ग्रन्थ हो अथवा रामायण और महाभारत, नाटककार भवभूति सबको आत्मसात् किये हैं। अगर उनके नाटकों में प्रयुक्त शास्त्रसन्दर्भों और पारिभाषिक शब्दों का ही अध्ययन किया जाये तो सम्भव है एक छोटा-मोटा ग्रंथ

ही बन जाय । भवभूति को यह सारा शास्त्रीय ज्ञान परिवार की पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही शास्त्र परम्परा से मिला, यह बात स्वत: उनके द्वारा दिये गये विवरणों से पुष्ट हो जाती है ।

व्यक्ति के ज्ञान विस्तार का दूसरा सोपान उसके गुरुकुल की परम्परा और उसका स्वयं का स्वाध्याय होता है । नाटककार भवभूति ने महावीरचरित की प्रस्तावना में स्वयं बता दिया है कि वे प्रकाण्ड पण्डित ज्ञाननिधि के शिष्य थे जिनका नाम ही सारे शास्त्रों का पर्याय था । गुरु परम्परा के साथ-साथ भवभूति का स्वाध्याय और उनकी बहुमुखी प्रतिभा भी उनके पाण्डित्य के महत्वपूर्ण कारण थे । स्वाध्याय और प्रतिभा के बिना शास्त्रों की 'वाक्' देवी किसी के ओठों पर कभी नाच नहीं सकती ।

भवभूति के व्यक्तित्व और कृतित्व का उनका विस्तृत शास्त्रीय ज्ञान और भाषा का असाधारण पाण्डित्य एक पक्ष है । दूसरा पक्ष उनकी संवेदनशीलता का है । उनके अन्दर कलाकार की संवेदनशीलता पैदा करने में हमें लगता है विदर्भ के प्राकृतिक पर्यावरण का विशेष योगदान है । यह ठीक है कि वाल्मीकि रामायण भवभूति की सांसों में बसी हुई है । यह भी सच है कि विन्ध्य की पर्वत श्रेणियों और नदियों के वर्णन रामायण में भी बड़े रमणीय हुए हैं किन्तु भवभूति ने भी गोदावरी परिसर, कदम्ब पर केकते मयूर, स्नान करते हस्तियुगल और अजगरों का पसीना पीते गिरगिटों के जो चित्र रूपायित किये हैं वे उनकी जिन्दगी से सीधे जुड़े रहे हैं । यह सब नाटककार का कल्पना संसार नहीं है, उसका दृश्य जगत् है । यही बात हम मालतीमाधव सिंधु और पार्वती आदि नदियों के पर्यावरण चित्रण में पाते हैं । प्रकृति ने जैसे कालिदास के साथ संवाद किया है वैसे ही नाटककार भवभूति के साथ भी किया है । प्रकृति ने हमारे इस नाटककार को केवल मनोरम दृश्य ही नहीं दिये हैं, उसे भाव-अनुभाव और उन्हें प्रकट करने वाली संवेदनशील भाषा भी दी है ।

भवभूति के व्यक्तित्व और कृतित्व का एक दूसरा रूप उनकी सामाजिक और

राजनीतिक मूल्य दृष्टि भी हैं । भवभूति के महावीरचरितम् का राम एक ऐसा शूरवीर चरित्र है जो अपने मानवीय गुणों, शौर्य और धैर्य से विपक्षी शक्तियों की भी प्रशंसाएं अर्जित कर लेता है । उत्तररामचरित में नाटककार की मूल्य दृष्टि का सारतत्व राजसत्ता के ऊपर लोकसत्ता की नियामकता के रूप में सामने आता है । यह तत्व भारत के प्राचीन राजधर्म के लिये नया तो नहीं है किन्तु समय-समय पर समकालीन राजनीति के पतन को रोकने के लिये साहित्यकार रचनाओं के माध्यम से ऐसे आदर्श राजनीतिक मूल्यों का पुनर्जागरण करते रहते हैं । भवभूति ने भी समकालीन राजनीति के लिये सम्भवतः वैसी ही मूल्य दृष्टि देने का आदर्श सामने रखा है । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कालिदास के राजनीतिक मूल्यों का फलक बड़ा है और भवभूति का वैसा नहीं है । वास्तव में भवभूति के युग की राज्यसंस्था का आकार-प्रकार और शक्तियां कालिदास के युग से बहुत भिन्न हो गई थीं । सामाजिक मूल्य दृष्टियां दोनों ही महान नाटककारों के कृतित्व में प्रातः परम्परा-वादी ही मिलती हैं । दोनों के सामाजिक मूल्य वर्णाश्रम व्यवस्था से प्रभावित हैं ।

जहां तक साहित्यिक परिवेश का प्रश्न है, भवभूति से पूर्व महान् साहित्य-कारों की लम्बी परम्परा उपलब्ध थी । विशेष रूप से नाटककारों की एक बहुत ही उत्कृष्ट परम्परा भवभूति से पहले बन चुकी थी । इस परम्परा का विवरण हम पहले ही जान चुके हैं । भवभूति ने `उत्तररामचरित` लिखकर कालिदास की परम्परा से हाथ मिलाया और `मालतीमाधव` की रचना करके `मृच्छकटिक` की परम्परा में चार चांद लगा दिये ।

भवभूति के व्यक्तित्व और कृतित्व का सबसे अधिक ध्यान देने योग्य पक्ष यह है कि उनकी संवेदनशीलता ने उन्हें पारिवारिक परम्परा से प्राप्त यज्ञविद्या और जटिलशास्त्रों के किले को तोड़कर ललित नाट्यकला के क्षेत्र में उतार दिया । उनके संवेदनशील कलाकार मन को वास्तव में वेदों के अध्ययन, उपनिषदों के मनन और सांख्य-योग आदि के शुष्क ज्ञान से सन्तोष नहीं मिला । इसका परिणाम यह

निकला कि वे काव्य की ओर झुक गये। उनकी संवेदनशीलता ने ही कदाचित् उन्हें वाल्मीकि की रामकथा का भक्त बना दिया था। उस संवेदनशीलता के बल पर ही वे नाट्यकला की इतनी सुन्दर कृतियों की रचना कर सके थे।

भवभूति का अभिजन

भवभूति ने अपनी ही लेखनी से अपने जनपद और नगर का उल्लेख किया है। उनके पुरखे दक्षिणापथ अर्थात् दक्षिण भारत में विदर्भ प्रदेश के पद्मपुर नाम के नगर के रहने वाले थे। भवभूति का जन्म और शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई थी, यह उनके स्वयं के दिये गये परिचय के स्वारस्य से निकलता है।

दक्षिणापथ के विदर्भ का यह पद्मपुर नगर आज अपना अस्तित्व खो चुका है। पुरातत्व में रुचि रखने वाले विद्वानों ने भवभूति के 'पद्मपुर' की पर्याप्त छानबीन की है। ग्वालियर के श्री एम० वी० लेले ने अपने 'मालतीमाधव सार व विचार' नाम के ग्रंथ में यह स्थापित किया है भवभूति का पद्मपुर विदर्भ में स्थित नहीं था। मालतीमाधव में पद्मावती के आत्मीयतापूर्ण और सजीव एवं सूक्ष्म वर्णन से श्री लेले पद्मपुर को पद्मावती ही मानते हैं। अपने पक्ष में उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि भवभूति के सभी नाटक कालप्रियानाथ की यात्रा में अभिनीत वर्णित हुए हैं। यह कालप्रियानाथ उज्जयिनी का महाकाल नहीं, कालपी के किसी शिवमंदिर का संकेत है। मालतीमाधव की पद्मावती कालपी से दक्षिण में पड़ती है अत: दक्षिणापथ की भी संगति बैठ जाती है।

हम समझते हैं लेले का इस प्रकार का कथन महान नाटककार को उसकी विदर्भभूमि से छीनकर ग्वालियर के आसपास बुला लेने जैसा है। जब नाटककार स्वयं दक्षिणापथ के विदर्भ का उल्लेख कर रहा है तो आप उसके प्रतिकूल तो सोच ही नहीं सकते।

डा० आर० जी० भंडारकर ने मालतीमाधव नाटक पर अपनी टिप्पणी में लिखा है कि 'भवभूति की जन्मभूमि नागपुर प्रदेश में चन्द्रपुर या चांदा के समीप कहीं

प्रतीत होती है। इस प्रदेश में आज भी तैत्तिरीय शाखा के महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते हैं जो आपस्तंब सूत्र का व्यवहार करते हैं। इसके दक्षिण तथा पूर्व प्रदेश में इसी वेदसूत्र के अनुयायी तैलंग ब्राह्मण रहते हैं।[१]

डा० बेल्वल्कर का कथन है कि भवभूति का जन्मस्थान तो विदर्भ के पद्मपुर में ही था। लेकिन पद्मपुर नाम का कोई भी स्थान उन्हें विदर्भ में हाथ नहीं आ सका, इसलिए अभी उसके बारे में निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह बात साफ है कि वह भवभूति का पद्मपुर ग्वालियर के पास का नरवर या पद्मावती नहीं था।

डा० वासुदेव विष्णु मिराशी ने वास्तव में भवभूति के जन्मस्थान को लेकर गहरी छानबीन की है। उनका बहुत ही स्पष्ट निष्कर्ष है कि भवभूति का अभिजन पद्मपुर बरार में ही था। उनके मत से यह पद्मपुर आजकल भण्डारा जिले की आमगांव जमींदारी में छोटा-सा गांव है।

डा० मिराशी ने इस पद्मपुर को भौगोलिक स्थिति का और अधिक परिचय देते हुए बताया है कि पद्मपुर गांव दक्षिणपूर्व रेलवे की नागपुर कलकत्ता लाइन पर आमगांव रेलवे स्टेशन से लगभग ढाई मील दूर है। इस ग्राम का क्षेत्रफल १४१६ एकड़ है। इसके लिये उन्होंने प्रमाण यह दिया है कि दुर्ग जिले के पानाबार जमींदारी के मुख्य केन्द्र मुहल्ला में एक ओर खुदा हुआ ताम्रपत्र मिला है। यह वाकाटक राजाओं के दानपत्र को सूचित करने वाले तीन-चार पत्र प्रकारों में से एक है। इस पर केवल दो सम्राटों का उल्लेख है। एक तो सम्राट उपाधिधारी तथा बहुत से बड़े वैदिक यज्ञों के करने वाले प्रवरसेन प्रथम का तथा दूसरे उसके पौत्र तथा उत्तराधिकारी का। द्वितीय राजा के नामनिर्देश के स्थान पर ही यह पत्र खंडित हो गया है। यह पत्र पद्मपुर से लिखा गया है। डा० मिराशी का यह भी कहना है कि इस

१- मालतीमाधव (१९०५) पृ० ८

पत्र पर 'वासकात्,' 'स्थानात्' या 'विजयस्कन्धावारात्' आदि शब्द पद्मपुर के साथ सम्बद्ध नहीं हैं अत: यह नहीं कहा जा सकता कि इस दानपत्र का कर्ता वहां अस्थायी रूप से गया था। अपितु वह उसकी राजधानी थी।

डा० मिराशी यह भी कहते हैं कि वाकाटकों की राजधानी परिवर्तित होती रही है। उनकी प्राचीनतम राजधानी नन्दिवर्धन थी तथा प्रवरसेन ने राजधानी प्रवरपुर बना ली। प्रवरसेन द्वितीय के बाद वाकाटक भवदत्त वर्मा ने विदर्भ को आक्रांत कर नंदिवर्धन में अपनी राजधानी बना ली। अत: यह भी बहुत सम्भव है कि वाकाटकों ने कभी पद्मपुर को भी अपनी राजधानी बना लिया हो। भवभूति यहीं उत्पन्न हुए थे। किन्तु वाकाटकों का ८वीं सदी में पद्मपुर पर आधिपत्य नहीं था। अंतिम वाकाटक सम्राट हरिषेण लगभग ५०० ई० में ही समाप्त हो गया था। अत: उचित राजसंरक्षण के अभाव में भवभूति कन्नौज के प्रतापी राजा यशोवर्मा के संरक्षण में चले आये।

डा० मिराशी का यह भी कथन है कि भवभूति का विदर्भ वर्तमान बरार तक ही सीमित नहीं था। वह इससे विस्तृत था। वर्तमान बरार में पद्मपुर से मिलता-जुलता नाम वाला कोई स्थान नहीं मिला है। विदर्भ के चांदा तथा भण्डारा जिलों में छ: ग्राम पद्मपुर, पद्मापुर या पदमपुर नाम के मिले हैं। भण्डारा आमगांव जमींदारी के पद्मपुर को ही डा० मिराशी ने भवभूति का पद्मपुर माना है। यहां के प्राकृतिक दृश्य बड़े ही मनोरम हैं और हो सकता है, भवभूति को अपने प्रकृतिवर्णनों में इनसे सहायता मिली हो। यहां बहुत ध्वंसावशेष और शिवमूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। इसके अतिरिक्त इस स्थान के समीपवर्ती स्थानों में कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मण रहते हैं। सम्प्रति पद्मपुर में कोई ब्राह्मण नहीं है, पर पड़ोस के स्थानों में तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मण आज भी हैं।

उपर्युक्त प्रकार से सतर्क खोजों के आधार पर डा० मिराशी ने आमगांव के पद्मपुर को ही भवभूति का जन्मस्थान माना है।[१] हम समझते हैं अब तो जो भी

छानबीन भवभूति के पद्मपुर को लेकर की गई है उसमें डा० मिराशी का निष्कर्ष ही सबसे अधिक ग्राह्य लगता है । पी० वी० कण आदि विद्वानों को इस बारे में फिर भी कुछ सन्देह बना रहा है, परन्तु यह उनका भी मानना है कि ग्वालियर के पास की पद्मावती भवभूति के पद्मपुर से भिन्न है । भवभूति और दण्डकारण्य का गहरा लगाव जैसा उनके नाटकों में मिलता है वह दक्षिणापथ से बाहर तो भवभूति के पद्मपुर की बात सोचने भी नहीं दे सकता । भवभूति स्वयं भी इसकी अनुमति नहीं देते । उनका विदर्भ पद्मावती से भिन्न एक बाहरी राज्य है जहां का शासक भी विदर्भ के शासक से भिन्न है और अमात्य भी विदर्भ के अमात्य से भिन्न है । उनका मालतीमाधव ऐसा ही बताता है ।

श्री लेले के पद्मावती सूत्र पर तो इतना ही कहा जा सकता है कि दक्षिण विदर्भ के कवि को कन्नौज के आस-पास यदि कोई सुरम्य स्थान मिल गया जो उसके मूल अभिजन की रूप छटा से मेल खाता हो तो स्वाभाविक है कि वह उसका वर्णन भी हृदय की वैसी ही गहराई से कर सकता है ।

प्रस्तुत अध्ययन का अवदान

अध्ययन का उद्देश्य और उसकी दिशा स्पष्ट करते हुए यह सूचित किया गया है कि इस शोध अध्ययन का केन्द्रबिन्दु भवभूति का नाटकीय वस्तु-शिल्प है । स्वभावत: इस अध्ययन का पूरा-पूरा प्रयत्न नाटककार भवभूति के उस असाधारण नाट्य-शिल्प को प्रकाश में लाना है जिसकी प्रशंसा में उसके कोई समीक्षक तो `उत्तररामचरित` के वस्तु-शिल्प के बारे में `अहो संविधानकं` `अहो संविधानकं` कहते नहीं थकते तो दूसरे उसके `मालतीमाधव` शिल्प को संस्कृत के किसी भी प्रकरण नाटक की तुलना में अधिक कलात्मक बताते हैं और कुछ लोग उसे प्रेम और मार-धाड़ के दृश्यों वाली आधुनिक फिल्मों को भी मात देने वाला कहते हैं । जहां तक हमारे अध्ययन का प्रश्न है उसमें पूरा-पूरा प्रयत्न इस दृष्टि के साथ नाटककार की वस्तु-योजना को

समझना है जैसे कि उसके नाटक एक फिल्म की तरह हमारे सामने अभिनीत हो रहे हों और उन्हें देखकर हम नाटककथा की सारी कड़ियों को किस सीमा तक प्रभावी रूप से सुसंबद्ध अनुभव करते हैं और कहां तथा कितने अंश में उसमें कोई अवरोध या टूटन अनुभव करते हैं ।

कालिदास की तरह भवभूति के नाटकों को लेकर भी एक से एक मूल्यवान कार्य पहले भी किये जा चुके हैं इसलिये एक नवीन अध्येता का यह मान बैठना कि वह जो कुछ नये तथ्य सामने ला रहा है, वे सर्वथा अस्पृष्ट अथवा अद्वितीय होंगे, दुस्साहस ही कहा जायेगा । वास्तविकता यह है कि इस अध्ययन में एक विशिष्ट दृष्टि के साथ भवभूति के नाट्यशिल्प का मूल्यांकन किया जा रहा है जो इस प्रकार के दूसरे नाटककारों के अध्ययन के लिये भी एक दिशा देने वाला हो सकता है ।

अध्याय - 2

भवभूति की नाट्य कृतियाँ

:

एक सर्वेक्षण

२

भवभूति की नाट्यकृतियां : एक सर्वेक्षण

भवभूति के पूर्ववर्ती महान नाटककार कालिदास ने संस्कृत साहित्य को तीन अमर नाटक प्रदान किये - विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् । भवभूति ने भी कालिदास की नाट्यकला से प्रतिस्पर्धा करते हुए तीन महान नाटकों की रचना की । महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् तथा उत्तररामचरितम् । एक दूसरे से तुलना करके सहसा यह निष्कर्ष ले डालना उचित नहीं लगता है कि कौन-सा नाटककार किस से श्रेष्ठ है । यही बात कालिदास और भवभूति के बारे में लागू होती है । नाट्यकला के कुछ ऐसे पक्ष हैं जिनकी दृष्टि से कालिदास के नाटक भवभूति के नाटकों की तुलना में कुछ अधिक आकर्षक कहे जा सकते हैं । इसी प्रकार, दूसरे कुछ ऐसे पक्ष भी हैं जहां भवभूति, कालिदास से आगे बढ़ते दिखाई देते हैं । यहां इन दोनों नाटककारों की तुलना में उलझ रहना हमारा उद्देश्य नहीं है । प्रासंगिक रूप से यह बात जान लेना पर्याप्त है कि संस्कृत नाटककारों में भवभूति ही एकमात्र वह नाटककार कहे जा सकते हैं जिन्होंने कालिदास का प्रतिस्पर्धी होने का साहस दिखाया है और नाट्यप्रेमियों से अंतत: यह सम्मान प्राप्त करके ही छोड़ा कि उत्तररामचरितम् का भवभूति, कालिदास से बढ़ जाता है-- उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।

संस्कृत नाटकों का मूल्यांकन प्राचीन काव्यशास्त्री रसवादी दृष्टि से ही करते रहे हैं । इस रसवादी दृष्टि के कारण ही नाटकों के बारे में एक सामान्य सी धारणा रूढ़ि पकड़ गई थी कि नाटक-रचना या तो श्रृंगार रस की हो सकती है या फिर वीर-रस की ही । अन्य किसी रस की बात करना जैसे नाटक की दुनिया में सम्भव ही नहीं था । भवभूति के अन्दर के नाटककार ने इस रसरूढ़ि को एक चुनौती के रूप में लिया और उसे तोड़कर दिखा दिया । उन्होंने उत्तररामचरितम् के रूप में करुण रस का एक ऐसा महान नाटक रचकर दिखा दिया जो नाट्यकला की सभी दृष्टियों से एक अद्वितीय नाटक है । केवल इतना ही नहीं इस रस रूढ़ि को तोड़ने से पहले उन्होंने अपनी पहली दो नाटक रचनाओं से यह भी जता दिया था कि वीर

रस और श्रृंगार रस की अच्छी नाटक-रचनाएं कर देना तो उनके लिये साधारण सी चीज था । उनका सबसे पहला नाटक `महावीरचरितम्` माना जाता है जो वीर रस का नाटक है । दूसरा नाटक मालतीमाधव है जो श्रृंगार रस का श्रेष्ठ नाटक है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां कालिदास नाटक साहित्य को केवल श्रृंगार रस की ही रचनाएं प्रदान कर सके, भवभूति ने वीर, श्रृंगार और करुणा रस की अलग-अलग तीन श्रेष्ठ रचनाएं प्रदान कीं ।

अब हम भवभूति की तीनों नाटक रचनाओं का समग्र परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से उनका एक क्रमबद्ध सर्वेक्षण आरम्भ करते हैं--

महावीरचरितम्

महावीरचरित नाटक भवभूति की सबसे पहली नाटक रचना है । यह नाटक सात अंकों में विभक्त है । नाटक का कथानक मुख्यत: राम-सीता विवाह की योजना से लेकर राम के लंका-विजय तथा राज्याभिषेक तक के घटना-चक्र पर आधारित है । इसका सीधा-सीधा यह तात्पर्य होता है कि महावीरचरित का कथानक पूरी तरह वाल्मीकि रामायण में प्रतिपादित राम के जीवन-चरित पर आधारित है । यह बात बहुत अलग है कि नाटककार रामायण जैसे विशाल महाकाव्य के वर्षों और वर्षों में फैले तथा भौगोलिक रूप से अत्यन्त दूर-दूर प्रदेशों में घटित हुए इतिवृत्त को कुछ ही घंटों में अभिनीत की जाने वाली नाटक-रचना में बांधने के लिये जहां जैसा उचित समझा, तोड़-मरोड़ कर डाला और अपनी नाट्य-अभिरुचि के अनुसार एक अच्छी नाटक रचना बनाकर तैयार कर दी । भवभूति ने रामायण की मूलकथा में कहां क्या परिवर्तन किये, वे कितने आवश्यक और उचित थे, इसका मूल्यांकन हम यथास्थान करेंगे । यहां तो हमें केवल यह जान लेना है कि `महावीरचरित्` की कथानक-योजना अंकों और दृश्यों के अनुसार किस रूप में नियोजित की गई है ।

प्रथम अंक : दृश्य प्रथम

यह नाटक का प्रस्तावना दृश्य है। कालप्रियानाथ का यात्रामहोत्सव है। सूत्रधार प्रवेश करता है तथा महावीरचरित् नाटक की कथावस्तु, पात्र एवं वीर रस आदि का बखान करता है। इसके पश्चात वह वश्यवाक् कवि भवभूति के उज्जवल श्रोत्रिय-कुल का शंसन करता हुआ भवभूति के गुरु ज्ञाननिधि का महत्त्व दर्शाता है।[१] नट प्रवेश करता है। नट के कथा प्रवेश के विषय में जिज्ञासा करने पर सूत्रधार बताता है कि ऋषि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को वसिष्ठ के यजमान दशरथ के घर से अपने यज्ञ में बुला लाए हैं, राजा जनक के प्रतिनिधि के रूप में उनके भाई कुशध्वज भी आमंत्रित होकर सीता एवं उर्मिला को साथ लेकर उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आ गये हैं।

दृश्य द्वितीय : विश्वामित्र का सिद्धाश्रम

रथस्थ राजा कुशध्वज एवं सूत सीता एवं उर्मिला के साथ प्रवेश करते हैं। राजा एवं सूत दोनों कन्याओं को ऋषि विश्वामित्र के अद्भुत व्यक्तित्व एवं परा सावना के विषय में बताते हैं।[२] आश्रम निकट रह जाने पर राजा कन्याओं के साथ रथ से उतर जाते हैं। सूत प्रस्थान करता है। इसके बाद राम एवं लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का प्रवेश होता है। विश्वामित्र अपने स्वागतभाषण में राम के लिये किये जाने वाले रक्षाविधमंगल, सीता के साथ राम के भावी विवाह, अपने याज्ञिक संकल्प तथा लोक-क्षेम के लिये राम के आश्चर्यजनक कार्यों का संकेत करते हैं।[३] आमंत्रित जनक की ओर से कन्याओं के साथ कुशध्वज को आते देखकर वे प्रसन्नता व्यक्त

१- महावीर०, १.५

२- वही, १.१०-१२

३- वही, १.१३

करते हैं । राम एवं लक्ष्मण को वे राजर्षि जनक तथा उनकी अयोनिजा कन्या के सम्बन्ध में बताते हैं । स्वयं जनक यज्ञ में लगे हुए हैं, अत: उन्होंने अपने अनुज कुशध्वज को विश्वामित्र के पास भेज दिया है । कुछ दूर से ही विश्वामित्र के साथ खड़े दोनों क्षात्रिय-कुमारों को देखकर उनके प्रति न केवल राजा, प्रत्युत सीता एवं उर्मिला भी समाकृष्ट हो जाती हैं बल्कि राजा निकट आकर भगवान विश्वामित्र का अभिवाद करते हैं । कन्यायें भी उन्हें प्रणाम करती हैं । राम देवयज्ञ से उत्पन्न सीता के सम्बन्ध में जानकर उनके प्रति सहज ही खिंच जाते हैं ।[१] विश्वामित्र राजा को राम एवं लक्ष्मण का परिचय देते हैं । दाशरथि कुमारों से परिचित होकर राजा उन्हें गले लगाते हैं और रघुवंश की कीर्ति का शंसन करते हैं । सभी आश्रम में प्रवेश करके वहां वृक्ष की छाया में समासीन होते हैं । नेपथ्य से राम की जयकार सुनाई देती है । जिज्ञासु राजा को विश्वामित्र बताते हैं कि यह उद्घोष पत्थर बनी हुई अहल्या का है जिसे राम ने अपने प्रताप से पाप-मुक्त कर दिया है । राम की ऐसी उपलब्धियों को सुनकर राजा के मन में राम के साथ सीता के विवाह की कामना जाग्रत हो जाती है किन्तु शिव-धनुष चढ़ाने की राजा जनक की दृढ़ प्रतिज्ञा का स्मरण करके वे निराश हो जाते हैं । इसी समय सीता की मंगनी के लिये आया हुआ रावण का पुरोहित सर्वमाय प्रवेश करता है । वह मिथिला में राजा जनक के पास से होकर उन्हीं के आदेश से यहां विश्वामित्र एवं कुशध्वज से मिलने आया है । वह रावण का प्रस्ताव इनके सामने रखता है ।[२] प्रस्ताव को सुनकर सीता सन्न रह जाती हैं - उनके लिये एक राक्षस प्रार्थी हो रहा है । लक्ष्मण को भी कुछ बुरा लगता है, किन्तु राम विश्वविजयी रावण के इस प्रस्ताव को स्वाभाविक बताते हैं ।[३] जब तक रावण के इस प्रस्ताव पर कोई अभिमत प्रकट किया जाये, नेपथ्य में

१- महावीर० १.२१

२- वही १.३०

३- वही १.३१

कोलाहल होता है । विश्वामित्र बताते हैं कि ताटका नाम की राक्षसी आ रही है । उसे देखकर कन्यायें डर जाती हैं । विश्वामित्र राम को ताटका-वध की आज्ञा देते हैं । राम पहले तो ताटका को स्त्री जानकर उसे मारने से हिचकते हैं, किन्तु विश्वामित्र के आदेश को अलंघ्य मानकर उसका संहार करने के लिये प्रस्थान करते हैं । राम ताटका का वध कर देते हैं । उनकी अपरिमित शक्ति एवं महिमा को प्रत्यक्ष देख सुनकर सर्वमाय चकित रह जाता है, अपनी स्वजन ताटका के वध से वह आक्रोश भी अनुभव करता है ।[१] वह अपने प्रस्ताव के सम्बन्ध में विश्वामित्र का उत्तर चाहता है । विश्वामित्र टालमटोल किये जाते हैं । अवसर अनुकूल देखकर वे सर्वमाय के सामने ही अपना जृंभकास्त्र नामक दिव्यास्त्र सम्प्रदाय राम को प्रदान करते हैं । ऋषि से अनुगृहीत राम की तेजस्विता को देखकर राजा कुशध्वज अब चुप नहीं रह पाते, वे विश्वामित्र से खुले शब्दों में राम को जामाता बनाने की इच्छा व्यक्त करते हैं । विश्वामित्र तो यह चाहते ही हैं । उनके आदेश से कुशध्वज शिव-धनुष का ध्यान करते हैं, देखते ही देखते धनुष राम के सामने प्रकट हो जाता है । राम तत्क्षण उसकी प्रत्यंचा खींचकर चढ़ा देते हैं और तोड़ भी देते हैं ।[२] कुशध्वज आनन्द-विह्वल होकर राम को गले लगाने के लिये आगे बढ़ते हैं । विनीत राम प्रवेश करते हैं । सीता और उर्मिला, क्रमशः राम एवं लक्ष्मण को दे दी जाती हैं । विश्वामित्र की इच्छा से माण्डवी एवं श्रुतकीर्ति का विवाह भी भरत एवं शत्रुघ्न के साथ तय कर दिया जाता है । विश्वामित्र अपने शिष्य शुनःशेप को अयोध्या जाकर इसकी सूचना वसिष्ठ को दे आने को कहते हैं ताकि वे सभी ब्रह्मर्षियों एवं दशरथ आदि को साथ लेकर चारों भाइयों के गोदान-मंगल के लिये मिथिला पधारें ।[३] सर्वमाय अपने

१- महावीर०, १.४०

२- वही १.५३

३- वही १.५८

'धर्मादार' सुनाता है- राम को सीता दी जा रही है, यह अनर्थ का कारण है, सीता को प्रकारान्तर से इन्द्रपुरी की वन्दिनी स्त्रियों की तरह लंका जाना ही होगा ।[१] इसी समय नेपथ्य में पुन: कोलाहल होता है । विश्वामित्र बताते हैं कि सुबाहु और मारीच नामक राक्षस उपद्रव मचा रहे हैं । वे राम एवं लक्ष्मण को उन्हें मारने का आदेश देते हैं । दोनों कुमार राक्षसों को मारने के लिये तत्पर होते हैं । सर्वमाय इन सारी घटनाओं को माल्यवान् से निवेदित करने की सोचता है । विश्वामित्र कुशध्वज को राम का अप्रतिम पराक्रम दिखाने के लिये ले जाते हैं ।

द्वितीय अंक : दृश्य प्रथम : लंकेश्वर रावण का राजभवन

विष्कंभक के रूप में आयोजित इस कथांश में चिन्तित माल्यवान प्रवेश करता है । सर्वमाय से सारी बातें जानकर वह राम के बढ़ते हुए प्रताप पर गहरी चिन्ता प्रकट करता है । शूर्पणखा प्रवेश करती है । वह बताती है कि राम का विवाह मंगल सम्पन्न हो चुका, महर्षि अगस्त्य ने उपहार के रूप में राम के पास महेन्द्र धनुष प्रेषित किया है । माल्यवान् की चिन्ता इससे और भी बढ़ जाती है । प्रतीहार सूचित करता है कि परशुराम के पास भेजा गया दूत उनका एक पत्र लेकर वापस आ गया है । माल्यवान् पत्र पढ़ता है । परशुराम ने अपने पत्र में लिखा है कि दण्डकारण्य में राक्षस ब्राह्मणों को सता रहे हैं - उन्हें रोका जाय, अन्यथा रावण के मित्र परशुराम रूठ जा सकते हैं । माल्यवान् अवसर से लाभ उठाना चाहता है - वह शिव-भक्त परशुराम को शिवधनुष तोड़ने वाले राम के विरुद्ध प्रयुक्त करने की योजना बनाता है और इसी उद्देश्य से वह शूर्पणखा के साथ उनसे मिलने के लिये महेन्द्र द्वीप प्रस्थान करता है ।

१- महावीर०, १.५६

दृश्य द्वितीय : मिथिला में राजा सीरध्वज का राजभवन

नेपथ्य से राम को सूचित किया जाता है कि अपने गुरु के धनुर्भंग से क्रुद्ध हुए परशुराम उन्हें खोजते हुए आ रहे हैं। राम सीता और उनकी सखियों के साथ प्रवेश करते हैं। राम स्वयं इस सूचना से अनुद्विग्न हैं, वे परशुराम जैसे परम तपस्वी के दर्शन करना चाहते हैं, किन्तु सीता तथा उनकी सहेलियां इस सूचना से घबड़ा जाती हैं। पुन: नेपथ्य से घोषित किया जाता है कि भगवान परशुराम क्रोधावेश में राम को खोजते हुए अन्त:पुर में ही प्रवेश कर रहे हैं।[१] राम प्रत्यक्षत: परशुराम की इस अशिष्टता से दुखी हो जाते हैं। वे धैर्य नहीं त्यागते और परशुराम से मिलने चल देते हैं। डरी हुई सीता उन्हें रोकना चाहती है, किन्तु वे सीता को समझा-बुझाकर शान्त कर देते हैं। क्रुद्ध परशुराम प्रवेश करते हैं। वे शिवधनुष तोड़ने वाले राम पर तीव्र आक्रोश प्रकट करते हैं। राम की सौम्य मूर्ति को अपने सामने देखकर वे उससे अन्तत: प्रभावित हो जाते हैं, किन्तु राम को मारने से विरत भी नहीं होना चाहते। राम की शालीनतापूर्ण बातें सुनकर वे उनकी प्रशंसा भी करते हैं। उनके आदेश से सीता आदि स्त्रियां वहां से प्रस्थान करती हैं। वेगपूर्वक जनक तथा शतानन्द प्रवेश करते हैं। राम की व्यंग्योक्ति से परशुराम झल्ला उठते हैं, वे राम को युद्ध के लिये ललकारते हैं। जनक एवं शतानन्द परशुराम से महाराज जनक का आतिथ्य स्वीकार करने का निवेदन करते हैं, किन्तु परशुराम बड़ी उग्रता के साथ उनका प्रस्ताव ठुकरा देते हैं। कंचुकी प्रवेश करता है। वह वैवाहिक विधि के लिये राम को बुलाने आया है। परशुराम की आज्ञा से राम कंकणमोचन-विधि सम्पन्न करने के लिये भीतर देवियों के पास प्रस्थान करते हैं। सुमन्त्र प्रवेश करते हैं, उनके कथनानुसार उक्त दोनों ऋषि महाराज दशरथ के पास बैठे उन सबकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

१- महावीर० २.२०

तृतीय अंक : दृश्य प्रथम : सीरध्वज का राजभवन

परदा उठते ही वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम तथा शतानन्द प्रवेश करते हैं। परशुराम का क्रोध शान्त करने के लिये वसिष्ठ एवं विश्वामित्र यथाशक्य प्रयत्न करते हैं, उनके वंश, यश, ज्ञान, शक्ति आदि की सराहना करके वे उन्हें राम के अनुकूल बनाना चाहते हैं। परशुराम उनके सद्विचारों को सुनकर राम-वध से निवृत्त होना किसी भी अवस्था में नहीं चाहते। परशुराम के उग्र हिंसा-भाव के कारण अब तक शान्त बैठे शतानन्द का क्रोध भड़क उठता है। वे अपने क्रोधावेश में शाप देकर परशुराम को भस्म कर देना चाहते हैं किन्तु नेपथ्य से दशरथ उनसे शान्त हो जाने का अनुरोध करते हैं।[१] अन्त में वसिष्ठ के प्रयत्न से शतानन्द का क्रोध शान्त होता है। शतानन्द प्रस्थान करते हैं। उनके इस कठोर व्यवहार से परशुराम की क्रोधाग्नि और भी प्रज्वलित हो जाती है। उन्हें शान्त करने का दूसरा कोई मार्ग न देखकर राजा जनक तक उनसे युद्ध करने को तैयार हो जाते हैं।[२] इसी समय राजा दशरथ प्रवेश करते हैं। वे उन दोनों को शान्त कराना चाहते हैं। इसी क्रम में दशरथ के साथ भी क्रुद्ध परशुराम का विवाद हो जाता है। अन्त में परशुराम तैश में आकर जब भगवान् वसिष्ठ को भी अपमानित करने से बाज नहीं आते तो वहां उपस्थित विश्वामित्र, दशरथ एवं जनक इसके लिये उन्हें बुरी तरह धिक्कारते हैं।[३] फिर विश्वामित्र एवं परशुराम के बीच कहा-सुनी होती है। अन्त में नेपथ्य से राम की ओजभरी वाणी सुनाई देती है-- कौशिक के अन्तेवासी राम परशुराम पर विजय प्राप्त करने के लिये कृतसंकल्प होकर आ रहे हैं। राम के इस आह्वान को स्वीकार करके परशुराम भी उनसे युद्ध करने के लिये प्रस्थान करते हैं। उनके साथ अन्य जनों का भी प्रस्थान होता है।

१- महावीर०, ३.२२

२- वही, ३.२६

३- वही, ३.३७-३६

चतुर्थ अंक : दृश्य प्रथम : मिथिला का कोई प्रान्तर

परशुराम पर राम की विजय की उद्घोषणा नेपथ्य से की जाती है। इसके लगे बाद विमान द्वारा सम्भ्रान्त माल्यवान् एवं शूर्पणखा प्रवेश करते हैं। परशुराम के विजेता राम के बढ़ते हुए प्रताप से स्पष्टत: ये दोनों घबड़ाये हुए हैं। माल्यवान् को अपने गुप्तचरों से मालूम हो चुका है कि दशरथ ने अपनी जिस रानी कैकेयी को दो वरदान दिये थे, उसने अपनी दासी मन्थरा को कुछ आवश्यक संवाद के साथ अयोध्या से मिथिला भेजा है। माल्यवान् शूर्पणखा को मिथिला जाती हुई मन्थरा के शरीर में प्रविष्ट होकर राजा दशरथ द्वारा कैकेयी के दिये गये उक्त दो वरदानों से राक्षसों का अभीष्ट सिद्ध करने का आदेश देता है। वह एक वर से भरत को अयोध्या का राज्य तथा दूसरे वर से राम को चौदह वर्षों का वनवास दिलायेगी। अपने प्रताप खोकर राम जब दण्डकारण्य में राक्षसों के बीच पहुंचेंगे तो उन पर आसानी से आक्रमण किया जा सकेगा, वहां से सीता का अपहरण भी आसान हो जायेगा। रावण द्वारा सीताहरण हो जाने पर राम, सम्भव है, स्वयं ही प्राण त्याग दें, यदि मरेंगे नहीं तो इस तीखे अपमान से निष्प्राण से अवश्य हो जायेंगे। यदि इतना होने पर भी वह रावण से बदला लेने को उद्यत होंगे तो रावण का मित्र बाली उनका बीच में ही नाश कर देगा। इस कलहचक्र में विभीषण जो रावण का सहज शत्रु है, भागकर अपने मित्र सुग्रीव के आश्रय में ऋष्यमूक पर्वत पर अवश्य चला जायेगा। बाली उसे भी नहीं छोड़ेगा। रावण के रास्ते का वह कांटा भी सदा के लिये नष्ट हो जायेगा। शूर्पणखा को अपनी कूटनीति की इन चालों से अवगत करा लेने के बाद माल्यवान् उसे मिथिला जाकर अभीष्ट कार्य सम्पन्न करने का निर्देश देता है।

दृश्य द्वितीय : सीरध्वज जनक का राजभवन

वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के साथ दशरथ एवं जनक प्रवेश करते हैं। जनक एवं वसिष्ठ क्रमश: दशरथ एवं विश्वामित्र के गले लगकर उन्हें राम द्वारा परशुराम को

पराजित करने के उपलक्ष्य में बधाई देते हैं। राम एवं परशुराम प्रवेश करते हैं। राम परशुराम से अपनी धृष्टता के लिये क्षमा-याचना करते हैं। विजित परशुराम राम को अपना उपकारी बताकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। दोनों वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि के निकट आते हैं। वहां परशुराम उक्त दोनों से अपनी धृष्टता के लिये क्षमा-याचना करते हैं। कुछ देर में वसिष्ठ एवं विश्वामित्र वहां उपस्थित लोगों को आशीर्वाद देते हुए प्रस्थान करते हैं। विदा होने से पहले परशुराम राम की वीरता से प्रसन्न होकर उन्हें अपना धनुष अर्पित कर जाते हैं। उनके चले जाने के पश्चात् राम को चिन्ता होती है कि परशुराम ने अस्त्र त्याग ही दिये, स्वयं राम परतन्त्र ही ठहरे, इस स्थिति से लाभ उठाकर अब राक्षस तपस्वियों को खूब सतायेंगे।[1] इसी समय नेपथ्य से लक्ष्मण मन्थरा के आने की सूचना देते हैं। राम उसे बुलाने की आज्ञा देते हैं।

मन्थरा-प्रविष्ट शूर्पणखा कैकेयी का सन्देश लेकर लक्ष्मण के साथ प्रवेश करती है। माताओं के कुशल-क्षेम कह चुकने के बाद शूर्पणखा कैकेयी की ओर से दशरथ का 'कार्यलेख' प्रस्तुत करती है। लक्ष्मण उसे लेकर पढ़ते हैं - एक वर से भरत राज्य के अधिकारी हों, दूसरे वर से राम अविलम्ब चौदह वर्षों के लिये दण्डकारण्य चले जायें, वहां उनके साथ लक्ष्मण एवं सीता के अतिरिक्त दूसरा कोई न रहे। इस आज्ञा-पत्र को सुनकर राम बड़े प्रसन्न होते हैं, वे तो पहले से ही वहां जाने की सोच रहे थे। राम की स्वीकृति जानकर शूर्पणखा प्रसन्न मन से प्रस्थान करती है। लक्ष्मण राम को सूचित करते हैं कि मामा युधाजित् के साथ भरत पिताजी (दशरथ) के पास जा रहे हैं।

इसके बाद युधाजित् एवं भरत प्रवेश करते हैं। वे दशरथ के पास जाकर उनसे समस्त प्रजा का निवेदन विज्ञापित करते हैं - त्रयी के संरक्षक, राम आपके प्रसाद से अभिषिक्त होकर प्रजाजनों को पूर्णकाम करें। दशरथ कल्याण-कामना करने वाली प्रजा का निवेदन सुनकर प्रसन्न होते हैं। जनक से अभिषेक-महोत्सव कराने का अनुरोध

१- महावीर०, ४.३८

करते हैं तथा इस खुशी में याचकों की जिस वस्तु की इच्छा हो, उसकी पूर्ति करने का आदेश देते हैं। इसी समय राम याचक के रूप में उनके निकट आते हैं तथा उनसे अपनी मझली माँ के दोनों वरदानों की पूर्ति करने की प्रार्थना करते हैं। दशरथ जब सत्यसन्ध रघुवंशियों के नाम पर कैकेयी को कोई भी इच्छा पूर्ण करने का वचन देते हैं तो राम शूर्पणखा द्वारा प्रस्तुत कार्यलेख उन्हें सुनाते हैं। इसे सुनते ही दशरथ मूर्छित हो जाते हैं। राम एवं लक्ष्मण उन्हें धीरज बंधाते हैं। शोकाकुल जनक को कैकेयी के इस कृत्य पर आश्चर्य होता है। राम के जोर देने पर दशरथ को कैकेयी की माँग के आगे झुकना पड़ जाता है। राम के आदेश से लक्ष्मण सीता को बुला लाने के लिये प्रस्थान करते हैं। भरत अपनी माँ के इस दुष्कर्म के लिये अपने मामा के वंश को ही दोषी बताते हैं। दुखी युधाजित् भरत द्वारा अपने कुल पर लगाये गये इस लांछन को स्वीकार करते हैं। लक्ष्मण तथा सीता का प्रवेश होता है। राम अपने बन्धुजनों को समाश्वस्त करने का भार युधाजित को सौंपकर लक्ष्मण एवं सीता के साथ प्रस्थान करते हैं किन्तु शोकविह्वल भरत एवं युधाजित् उनका पीछा नहीं छोड़ते। जब भरत की कोई प्रार्थना राम नहीं मानते, तो अत्यन्त निराश एवं विषण्ण होकर भरत मूर्छित हो जाते हैं। युधाजित् भरत को आश्वासन देकर राम से उनके लिये चरण-पादुका माँगते हैं। राम अपनी पादुका उतारकर भरत को समर्पित कर देते हैं। भरत इसे सिर से लगाते हैं तथा राम के वापस आने तक इसे ही नन्दिग्राम में अभिषिक्त करके पृथ्वी के पालन करने की प्रतिज्ञा करते हैं।[१] दशरथ सचेत होकर अत्यन्त करुण शब्दों में राम से वन नहीं जाने का अनुरोध करते हैं। भरत एवं जनक उन्हें सहारा देकर उन्हें लिये हुए प्रस्थान करते हैं। युधाजित् राम से मिथिला एवं साकेत के शोकविह्वल आबालवृद्ध प्रजाजनों की ओर संकेत करते हैं जो राम के वनगमन को सुनकर रोते-चिल्लाते उनके पीछे-पीछे दौड़े आ रहे हैं। राम युधाजित् से इन सबको लौटा ले जाने का अनुनय करते हैं। रोते हुए युधाजित्

१- महावीर०, ४.५४

प्रस्थान करते हैं । राम चित्रकूट पर्वत को जाकर वहां से दण्डकारण्ड की ओर जाने की इच्छा करके प्रस्थान करते हैं ।

पंचम अंक : दृश्य प्रथम : दक्षिणारण्य कावेरी वेष्टित मलयाचल

इस दृश्य का कथांश विष्कंभक के रूप में नियोजित किया गया है । सम्पाती का प्रवेश होता है । वह सामने आकाश में निहारता हुआ अपने भाई जटायु के आने की सम्भावना प्रकट करता है । जटायु प्रविष्ट होकर ज्येष्ठ भ्राता सम्पाति के प्रति अपनी प्रबल श्रद्धा एवं प्रणाम निवेदन करता है । सम्पाति जटायु को गले लगाकर उससे पितृशोक में डूबे हुए राम का हाल पूछता है । दोनों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि राम चित्रकूट से शरभंग के आश्रम को गये, वहां से अगस्त्य के आदेशानुसार पंचवटी में आकर निवास कर रहे हैं । वहीं राम के साथ रति की इच्छा से एक दिन शूर्पणखा पहुंची । लक्ष्मण ने उसके ओठ, नाक और कान काटकर मानो 'दशाननतिरस्कार की प्रशस्ति' ही लिख डाली ।[१] इससे क्रुद्ध होकर राक्षसों ने राम पर आक्रमण कर दिया, किन्तु अकेले राम ने खरदूषण एवं त्रिशिरा के साथ चौदह हजार राक्षसों का संहार कर डाला । यह सब सुनकर सम्पाती जटायु को सावधान करता है कि अपनी सहोदर बहन शूर्पणखा का यह अपमान रावण नहीं सह सकेगा । अत: प्रिय राम, लक्ष्मण और सीता की रक्षा ठीक से करनी होगी ।[२] जटायु को यह सब समझाकर सम्पाति स्नान संध्या हेतु समुद्र की ओर प्रस्थान करता है । इधर जटायु आकाश में उड़ने का नाटक करता है और उड़ता हुआ प्रस्रवण पर्वत के पास आ जाता है । वह अपने सामने कंचनमृग द्वारा आकृष्ट होकर उसके पीछे जाते हुए राम तथा उन्हें अनुसरण करते हुए लक्ष्मण को देखता है । राम की पर्णशाला में सन्यासी के वेश में प्रवेश करते हुए रावण को देखकर जटायु सावधान हो जाता

१- महावीर०, ५.१२

२- वही ५.१४

है । जब वह रावण को अपने रथ पर सीता को बैठाकर ले जाते हुए देखता है तो क्रुद्ध होकर रावण को धिक्कारता है और उस पर आक्रमण करने के लिये टूट पड़ता है ।[१]

दृश्य द्वितीय : पंचवटी वनांचल

लक्ष्मण प्रवेश करते हैं । वे अपनी खोई हुई भाभी सीता को लक्ष्य करके करुण उद्गार व्यक्त करते हैं । उनके शब्दों में सीता के बिना राम 'मूर्त क्रोध' एवं 'जंगम शोकाग्नि' की तरह दीख रहे हैं ।[२] राम प्रवेश करते हैं । वे सीता एवं दिवंगत जटायु दोनों को लेकर अपने अन्तर्मन का शोक, अपमान एवं लज्जा व्यक्त करते हैं ।[३] लक्ष्मण उन्हें धीरज बंधाते हैं और दम तोड़ते हुए जटायु के अन्तिम शब्दों को दुहराते हैं - 'रावण ने हमारे प्राण एवं सीता दोनों का हरण किया है ।[४] इसे सुनकर राम की अन्तर्व्यथा बढ़ जाती है तथा प्रतिकार की भावना बलवती हो जाती है । वे इस अपमान का बदला लेने के लिये मचल उठते हैं । राम एवं लक्ष्मण दण्डकारण्य के कुंजरवान् नामक अंचल में प्रवेश करते हैं । वहां नेपथ्य से राम की खोज में निकली हुई श्रमणा नामक शबरतापसी का आर्त स्वर सुनाई पड़ता है जिसे कबन्ध नामक राक्षस ने पकड़ लिया है । राम लक्ष्मण को श्रमणा की रक्षा के लिये जाने का आदेश देते हैं । लक्ष्मण प्रस्थान करते हैं । राम अपनी प्रियतमा सीता के वियोग में करुण विलाप करते हैं । श्रमणा को लिये हुए लक्ष्मण प्रवेश करते हैं । श्रमणा राम को रावण के भाई विभीषण के सम्बन्ध में बताती है कि खर, दूषण एवं त्रिशिरा के मारे जाने को सुनकर वह अपने बन्धुओं को छोड़कर

१- महावीर०, ५.१८

२- वही ५.२०

३- वही ५.२२-२३

४- वही ५.२४

सुग्रीव के पास ऋष्यमूक में निवास कर रहा है। वह विभीषण का आत्मसमर्पण-लेख राम को अर्पित करती है जिसमें विभीषण ने राम की शरण की याचना की है। राम प्रसन्न होकर विभीषण को `लंकेश्वर` कहकर अभिहित करते हैं। बात ही बात में श्रमणा बताती है कि सीता का अनसूया नामांकित उत्तरीय ऋष्यमूक पर निवास करने वाले राम के पक्षपाती सुग्रीव, विभीषण तथा हनुमान आदि को प्राप्त हुआ है। इसे सुनकर राम एवं लक्ष्मण श्रमणा के साथ सुग्रीव आदि से मिलने चल देते हैं। रास्ते में लक्ष्मण द्वारा बनाई गई योजनबाहु की विशाल चिता दीखती है। लक्ष्मण बताते हैं कि उस चिता की आग से कोई दिव्य पुरुष प्रकट हो रहा है। दिव्य पुरुष प्रवेश करता है। वह अपने वास्तविक रूप की प्राप्ति के लिये राम के प्रति अपनी कृतज्ञता एवं शक्ति प्रकट करता है।[१] उसके कहने से मालूम होता है कि माल्यवान् ने रावण के मित्र बाली को राम को मार डालने के लिये नियुक्त किया है। राम `महावीर` बाली को देखने की उत्कण्ठा व्यक्त करते हैं। राम का आशीर्वाद प्राप्त करके वह दनु नामक दिव्य पुरुष प्रस्थान करता है। राम लक्ष्मण एवं श्रमणा आगे बढ़ते हैं। सामने मार्ग पर पड़े दुन्दुभि नामक दैत्य के पर्वताकार अस्थि-कूट को राम अपने पैर के अंगूठे से दूर फेंक देते हैं। राम के इस प्रताप एवं शौर्य को देखकर श्रमणा दंग रह जाती है। इसके आगे पम्पासरोवर प्रान्त आता है। कुछ दूरी पर मतंग मुनि का आश्रम है। राम उस रमणीय प्राकृतिक अंचल के पुष्पित कदम्बों को देखकर सीता-वियोग की तीव्रता का अनुभव करने लगते हैं। इसी बीच नेपथ्य से बाली का गम्भीर गर्जन सुनाई देता है जो राम को मारने के लिये कृतसंकल्प होकर आ रहा है। बाली का प्रवेश होता है। वह अपने स्वगत-भाषण में अपने घर आये हुए अतिथि राम जैसे साधु पुरुष को मारने में बड़ी ग्लानि का बोध करता है, किन्तु रावण की मैत्री के नाम पर इस दुष्कर्म में माल्यवान् द्वारा सम्प्रेरित किये जाने के कारण परवश-सा अनुभव करता है।[२]

१- महावीर०, ५.३४

२- वही ५.४५-४६

लक्ष्मण बाली को राम से परिचित कराते हैं। राम एवं बाली दोनों एक दूसरे के प्रति समादर एवं स्नेह के भाव व्यक्त करते हैं। कुछ देर में दोनों युद्ध के लिये प्रस्थान करते हैं। लक्ष्मण एवं श्रमणा अपने वार्तालाप के क्रम में राम एवं बाली के भीषण युद्ध की सूचना देते हैं। कुछ देर में राम के बाण से बाली के आहत होने की सूचना दी जाती है, बाली ने मरने से पहले विभीषण, सुग्रीव आदि को शान्त कर दिया है तथा अपनी जगह सुग्रीव को तथा सुग्रीव की जगह अंगद को देने की घोषणा कर दी है। सुग्रीव, विभीषण, बाली एवं राम प्रवेश करते हैं। आहत बाली राम के समक्ष रावण के साथ मैत्री करने का प्रायश्चित करता है। बाली को आहत करने वाले राम के चरित्र को लेकर सुग्रीव एवं विभीषण के मन में जो शंका उत्पन्न हो जाती है, श्रमणा उसका निवारण कर देती है। बाली, सुग्रीव को राम के हाथों सौंप देता है। राम एवं सुग्रीव बाली के सामने मैत्री की शपथ लेते हैं।[१] राम, लक्ष्मण को भी अपने मित्र सुग्रीव एवं विभीषण को सौंप देते हैं। सुग्रीव एवं विभीषण लक्ष्मण को गले लगाते हैं। करुण स्वर में विलाप करते हुए वानरों से मरणासन्न बाली सुग्रीव एवं अंगद की सहायता करने तथा राम-रावण युद्ध में राम का साथ देने की याचना करता है।[२]

षष्ठ अंक : दृश्य प्रथम : लंका का अमात्य भवन

चिन्तित माल्यवान् प्रवेश करता है। वह दुर्विनीत रावण के निरन्तर बढ़ते हुए दुर्भाग्य पर गहरी चिन्ता व्यक्त करता है। अब तक प्रयुक्त अपनी मंत्रशक्ति को विपरीत फल देते हुए देखकर वह शंकालु हो चलता है।[३] राम ने वानरराज बाली को भी अपने बाण का शिकार बनाया, इसे जानकर उसे भय भी है और

१- महावीर०, ५.६०

२- वही ५.६२

३- वही ६.२

आश्चर्य भी । उसे अपने गुप्तचरों से सूचना मिल चुकी है कि सीता की खोज में वानरगण सभी दिशाओं में चक्कर काट रहे हैं । इसी बीच नेपथ्य से लंका में भयानक अग्निकाण्ड की सूचना दी जाती है । सम्भ्रान्त अवस्था में त्रिजटा प्रवेश करती है । वह अपनी रक्षा के लिये छाती पीटती हुई माल्यवान् के सामने गिर पड़ती है । माल्यवान् के पूछने पर वह बताती है कि एक दुष्ट बन्दर ने समस्त लंका नगरी में आग लगा दी, राक्षसों को मार भगाया और अक्षकुमार का भी संहार करके स्वयं निकल गया । इसे सुनकर माल्यवान् दुख प्रकट करता है - उसे स्मरण होता है कि यह सब हनुमान द्वारा किया गया है । त्रिजटा उसे बताती है कि उस बन्दर ने राम के अभिज्ञान के रूप में चूड़ामणि लाकर सीता को प्रदान किया है । घबड़ाई हुई त्रिजटा को माल्यवान् सान्त्वना देता है, उसे रावण के बाहुदण्डों पर भरोसा करने को कहता है । उसके मुख से रावण के लिये अनजाने ही अशुभ बात निकल जाती है ।[१] जिसे सुनकर त्रिजटा चिन्ता व्यक्त करती है । अन्त में वह माल्यवान् के पूछने पर बताती है कि रावण इस समय सर्वतोभद्र नामक अट्टालिका पर चढ़कर सीता द्वारा अधिष्ठित अशोकवाटिका में निहार रहा है, लंका नगरी की दुर्दशा से अवगत मन्दोदरी अपने स्वामी को समझाने के लिये वहीं गई है । माल्यवान् मन्दोदरी की प्रशंसा करता हुआ अपने गुप्तचरों के साथ अगली योजना पर विचार करने के लिये त्रिजटा को साथ लिये प्रस्थान करता है ।

दृश्य द्वितीय : रावण का सर्वतोभद्र प्रासाद

उत्कण्ठित मुद्रा में रावण प्रवेश करता है । वह सीता के ध्यान में डूबा हुआ है । इसी बीच एक चेरी को साथ लिये हुए मन्दोदरी प्रवेश करती है । वह रावण को शत्रु के आक्रमण के विषय में सूचित करती है, किन्तु रावण अपने अलंघ्य प्रताप के आगे अपने किसी शत्रु की कल्पना तक नहीं करना चाहता, वह

१- महावीर०, ६.७

मन्दोदरी की बातों को हंसी में उड़ा देता है। सागर पर सेतु बांधने की बात को भी वह असम्भव कहकर टाल देता है। इन दोनों के वार्तालाप के बीच ही नेपथ्य में कोलाहल होता है और राक्षसों को अर्गला बन्द करके सुरक्षित स्थानों पर चले जाने को कहा जाता है - उन्हें लंका पर राम के सम्भावित आक्रमण से सावधान किया जाता है।[१] इसके तुरन्त बाद प्रतीहारी सेनापति प्रहस्त के आगमन की सूचना देती है। प्रहस्त प्रवेश करता है और रावण की अन्यमनस्कता को लक्ष्य करके आश्चर्य प्रकट करता है। वह राम की सैन्य-शक्ति से बचाव के लिये लंका में की गई रक्षा-योजनाओं से रावण को परिचित करता है। कुछ देर में प्रतीहारी राम के दूत अंगद को साथ लेकर प्रवेश करती है। अंगद रावण से सीता को लौटा देने की प्रार्थना करता है और बताता है कि स्त्री पुत्र एवं मित्रों के साथ लक्ष्मण के चरणों पर गिरना ही रावण के हित में होगा।[२] रावण, अंगद की बातों पर घोर व्यंग्य करता है और उसे अपमानित करने के उद्देश्य से उसके मुख को रंगवा देने का आदेश देता है। इस पर अपने दौत्य-भाव के कारण लाचार बने हुए वीर अंगद का क्रोध भड़क उठता है। वह रावण की भर्त्सना करता हुआ वहां से छलांग लगाकर प्रस्थान करता है। रावण प्रहस्त को आदेश देता है कि लंका के वीर राक्षस राम की समस्त वानर-सेना का विनाश कर डालें।[३] प्रहस्त प्रस्थान करता है। नेपथ्य से वानरों एवं राक्षसों के भीषण युद्ध में राक्षसों के बुरी तरह आहत होने की सूचना दी जाती है। इसे सुनकर रावण उत्तेजित मुद्रा में मन्दोदरी के साथ प्रस्थान करता है।

१- महावीर०, ६.१६

२- वही ६.२०

३- वही ६.२३

दृश्य तृतीय : युद्ध क्षेत्र का अन्तरिक्ष

रथारूढ़ इन्द्र एवं मातलि प्रवेश करते हैं। दोनों राक्षसों एवं राम की सेना में भयानक युद्ध का अवलोकन करते हैं। इसी बीच उत्तर दिशा से विमान पर चढ़ा हुआ गन्धर्वराज चित्ररथ प्रवेश करता है। युद्धोद्यत रावण को विशाल रथ पर आरूढ़ देखकर इन्द्र अपना रथ राम को अर्पित करते हैं और स्वयं चित्ररथ के रथ पर सवार हो जाते हैं। मातलि राम को रथ प्रदान करने के लिये प्रस्थान करता है। इसके पश्चात् इन्द्र एवं चित्ररथ राम-रावण युद्ध का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करने लगते हैं। मेघनाद के नागपाशास्त्र को अपने गरुडास्त्र से जब तक लक्ष्मण काटे, क्रुद्ध रावण उन पर शतघ्नी का प्रहार कर देता है। लक्ष्मण मूर्च्छित होकर हनुमान की गोद में जा गिरते हैं। हनुमान उन्हें बचाने के लिये संजीवन लाने के क्रम में सम्पूर्ण पर्वत ही उठाकर ला देते हैं। उस पर्वत की हवा पाकर लक्ष्मण स्वस्थ एवं नव चैतन्य से स्फूर्त हो जाते हैं। रावण राम से और मेघनाद लक्ष्मण से विकट युद्ध करने लगते हैं। राम एवं लक्ष्मण अपने तीखे बाणों से रावण एवं मेघनाद के सिरों को काट तो देते हैं, किन्तु फिर उन दोनों के सिर अनन्त होकर प्रकट हो जाते हैं। इसी समय नेपथ्य से दिव्यर्षिगण राम को पापी रावण का अविलम्ब संहार करने की प्रेरणा देते हैं। इसके अनन्तर राम एवं लक्ष्मण अपने ब्रह्मास्त्र एवं अच्युतास्त्र को स्मरण करके उनसे रावण एवं मेघनाद के सिर काट डालते हैं। दोनों भाइयों पर देवगण पुष्प-वृष्टि करते हैं। रावण-वध के उपलक्ष्य में आनन्द मनाते महर्षियों से मिलने के लिये इन्द्र प्रस्थान करते हैं। अपने प्रस्थान से पूर्व वे चित्ररथ को कुबेर के पास जाकर यह शुभ समाचार सुनाने को भेज देते हैं।

सप्तम् अंक : दृश्य प्रथम : लंका का निर्जन प्रदेश

यह कथांश मिश्र विष्कंभक के रूप में नियोजित है। शोकाकुल लंका प्रवेश करती है। वह दिवंगत हुए विश्वविजयी रावण, कुम्भकर्ण एवं मेघनाद के नाम ले लेकर उनकी स्मृति के करुण विलाप करती है। वह इस सारे दुर्भाग्य के लिये अपने

बुरे चरित को ही उत्तरदायी मानती है और चिल्लाकर रोती है। अलका प्रवेश करती है। वह भी राक्षसराज के निधन पर दुख प्रकट करती है। अपनी छोटी बहन लंका के सामने विलाप करते हुए देखकर वह उसके समीप जाकर उसे धीरज बंधाती है। लंका का कहना है कि उसके दुर्भाग्य से उसके वंश को धारण करने वाला केवल विभीषण बच गया है जो शत्रुओं के पक्ष में है, ऐसी स्थिति में उसे धीरज कैसे हो। इस पर अलका उसे समझाती है कि राम वस्तुत: उन लोगों के शत्रु नहीं मित्र हैं, रावण ने अपने दुराचार का ही परिणाम भोगा है।[१] इसे सुनकर लंका आश्वस्त होती है और अलका से उसके वहां आने का कारण पूछती है। अलका बताती है कि वह रावण के भाई कुबेर के आदेश से लंका के बचे हुए बन्धुओं को समाश्वस्त करने, विभीषण का राज्याभिषेक देखने और रावण द्वारा अपहृत पुष्पक विमान को राम के लिये उपहार-स्वरूप प्रदान करने के निमित्त आई है। इसी बीच नेपथ्य में कोलाहल होता है - देवगण अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण साध्वी सीता का अभिनन्दन करते हैं और राम से उन्हें समाहत करने का अनुनय करते हैं। नेपथ्य से मंगलवाद्य की ध्वनि सुनकर लंका जिज्ञासा प्रकट करती है। अलका बताती है कि सीता की शुद्धि के अनुमोदन के लिये समागत अप्सराओं एवं दिव्य ऋषियों ने राम के आदेशानुसार विभीषण का राज्याभिषेक कर दिया है। अलका एवं लंका भी उन सबों से मिलने के लिये प्रस्थान करती है।

दृश्य द्वितीय : राम का सैन्य शिविर

पुष्पक लेकर विभीषण प्रवेश करते हैं। वे बताते हैं कि राम की आज्ञा पाकर उन्होंने बन्दी देवांगनाओं को मुक्त कर दिया है। वे राम के निकट जाकर उनका जयकार करते हैं और उन्हें अपने उक्त कार्य की सूचना देते हैं। पुन: वे पुष्पक का परिचय देकर उसे उन्हें अर्पित करते हैं। इसके बाद लंका में अपने अभीष्ट कार्यों

१- महावीर०, ७.१

को समाप्त हुआ जानकर राम, सुग्रीव से परामर्श करके अयोध्या लौटने के लिये सब के साथ पुष्पक पर समारूढ़ हो जाते हैं ।

दृश्य तृतीय : व्योम यात्रा

पुष्पक अयोध्या की ओर प्रस्थान करता है । मार्ग में पड़ने वाले दृश्यों में सबसे पहले समुद्र दीखता है । सीता की जिज्ञासा होने पर राम समुद्र को भगवान शंकर की अष्टमूर्तियों में प्रथम बताते हैं ।[१] उसी समुद्र के वक्ष पर वानरों द्वारा निर्मित प्रस्तरसेतु भी दीखता है जिसे लक्ष्मण, राम का कीर्तिस्तम्भ कहकर अभिहित करते हैं । राम अपनी उंगली के संकेत से तमाल वृक्षों से आवृत एक स्थल विशेष की ओर लक्ष्मण का ध्यान आकृष्ट करते हैं । लक्ष्मण का कहना है कि यह वही स्थान है जहां एक गुफा में उन दोनों भाइयों ने बिजली की कड़क-दमक से युक्त एक भयंकर रात बितायी थी । आगे विभीषण कावेरी के तटवर्ती वनांचलों की ओर राम का ध्यान आकृष्ट करते हैं जिनके निकट ही लोपामुद्रा से परिष्कृत आश्रम में अगस्त्य मुनि निवास करते हैं । राम सबके साथ अगस्त्य आदि ऋषियों की वन्दना करते हैं । इसके पश्चात् पम्पासरोवर-प्रान्त दीखता है । विभीषण इससे सम्बद्ध विविध अभिज्ञानों तथा राम के वीरतापूर्ण कार्यों की ओर इंगित करते हैं । इसी सन्दर्भ में जब राम सीता के अनसूया नामांकित उत्तरीय की प्राप्ति का सजल स्मरण करते हैं तो सीता लज्जा का अनुभव करती है । गृध्रराम जटायु से सम्बद्ध प्रदेश विशेष को पार कर लेने के बाद दण्डकारण्य की सीमा समाप्त हो जाती है - सुग्रीव उस सीमान्त पर शूर्पणखा की नाक एवं ओठ काटे जाने के कारण कुपित हुए त्रिशिरा, खर एवं दूषण के मारे जाने की याद दिलाता है । पुष्पक अब आर्यवर्त में प्रवेश करने के लिये सह्यगिरि को पार करने लगता है । वह विष्णुपद से भूषित मध्यम लोक में आ जाता है जहां सीता दिन में ही टिमटिमाते हुए तारों को देखकर

१- महावीर०, ७.६

विस्मित हो जाती है । सुग्रीव सब को उदयाचल एवं अस्ताचल की छटा दिखाता है और नीचे फैले हुए कैलाश, अंजन पर्वत, कांचनाचल एवं गन्धमादन की ओर सब का ध्यान आकृष्ट करता है । इसके बाद राम एवं सीता अपने सामने कुबेर का सन्देश लेकर आते हुए किन्नर-दम्पति को प्रत्यक्ष करते हैं । किन्नर-दम्पति नेपथ्य से राम का यशोगान करते हैं । विभीषण अब हिमाचल के पवित्र शिखरों को दिखाते हैं । इसके बाद राम नीचे भूखण्ड पर फैले हुए विश्वामित्र के पवित्र तपोवन को लक्ष्य करते हैं । नेपथ्य से विश्वामित्र राम को आदेश देते हैं कि वे बीच में बिना कहीं रुके हुए साकेत चले जायें, वहां वसिष्ठ उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं[1] - विश्वामित्र स्वयं भी वहां कुछ देर में आ जायेंगे । पुष्पक आगे बढ़ता है । कुछ ही क्षणों में विभीषण नीचे पृथ्वी पर कुहरे की तरह उड़ती हुई धूल की ओर संकेत करते हैं । राम का अनुमान है कि भरत सेना के साथ उनकी अगवानी करने आ रहे हैं । हनुमान का प्रवेश होता है । वे बताते हैं कि तपस्वी भरत प्रजा के साथ राम से मिलने आ रहे हैं ।[2] भरत से मिलने की बात से राम, लक्ष्मण आदि प्रसन्न होते हैं । विमान रोककर सभी उस पर से उतरते हैं । राम, भरत आदि प्रेम-विह्वल होकर एक दूसरे के गले लगते हैं । राम, सुग्रीव एवं विभीषण का परिचय भरत एवं शत्रुघ्न से कराते हैं । भरत राम को राज्याभिषेक के लिये वसिष्ठ के पास बुला ले जाते हैं । वसिष्ठ, अरुन्धती एवं राम की माताओं के साथ प्रवेश करते हैं । अरुन्धती कैकेयी से उसकी उदासी का कारण पूछती है । कैकेयी लोगों की इस धारणा का उल्लेख करती है जिसके अनुसार राम के वनवास के लिये कैकेयी ही उत्तरदायी है - ऐसी स्थिति में राम के सामने जाने से स्वभावत: ही झिझकती है । अरुन्धती उन्हें समझाती हैं कि वे सर्वथा निष्कलंक एवं निरपराध हैं, वस्तुत: माल्यावान् के आदेशानुसार शूर्पणखा ही मन्थरा के शरीर में प्रविष्ट होकर राम

१- महावीरचरित् ७.२८

२- वही ७.३०

आदि के वन जाने का निमित्त बनी । इसे सुनकर सभी स्त्रियां राक्षसों की दुष्टता पर आश्चर्य व्यक्त करती हैं । वे सभी उन्हें आशीर्वाद देते हैं । इसी बीच नेपथ्य से घोषणा होती है - विश्वामित्र की आज्ञा है कि परिजन उत्सव मनायें, अधिकारी लोग अपने कार्यों में सावधान रहें तथा ब्राह्मण राम के अभिषेक की तैयारी करें ।[१] वसिष्ठ तथा दूसरे लोग इसे सुनकर प्रसन्न होते हैं । विश्वामित्र अपने शिष्य के साथ प्रवेश करते हैं । वसिष्ठ उनका स्वागत करते हैं । दोनों ऋषि राम के अभिषेक की आज्ञा देते हैं । मुनिगण राम को अभिषिक्त करते हैं । नेपथ्य से दुन्दुभि बजती हैं और आकाश से पुष्पवृष्टि होती है । अभिषेक के बाद राम दोनों गुरुजनों के प्रति अपना प्रणाम निवेदित करते हैं । दोनों की विदाई करने एवं पुष्पक को कुबेर के पास भेज देने का आदेश देते हैं । राम वैसा ही करते हैं । अन्त में राम भरतवाक्य के क्रम में विश्वामित्र से राष्ट्र की समृद्धि आदि के लिये प्रार्थना करते हैं । विश्वामित्र के 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहने के बाद सब लोग प्रस्थान करते हैं ।

निष्कर्ष यह है कि महावीरचरित भवभूति के उत्तररामचरित की आधार-शिला है । डा० अयोध्या प्रसाद सिंह ने लिखा है कि - कवि की आदर्शवादी विचारधारा के समर्थ प्रतीक राम प्रस्तुत नाटक की कलात्मक वस्तु के सर्वस्व हैं । उन्हें समझे बिना उत्तररामचरित के राम के चारित्रिक वैशिष्टों का अध्ययन अधूरा माना जायेगा । 'महावीर' राम ही आगे चलकर उत्तरचरित के 'लोकाराधक' राम के पवित्र उत्कर्ष में उन्नीत हो जाते हैं । दूसरे शब्दों में यहां राम की जो अप्रतिम वीरता है वही आगे चलकर उनकी अनुपम मानवता की सजल करुणा का रूप ले लेती है ।[२]

१- महावीर०, ७.३७

२- भवभूति और उनकी नाट्य कला, पृ० १०६

मालती माधव

भवभूति का 'मालती माधव' रूपक शास्त्र की दृष्टि से प्रकरण नाम वाली नाट्य-रचना है। धनंजय के अनुसार प्रकरण नाम की नाट्य रचना की कथा इतिहास आख्यान मूलक न होकर कवि कल्पित होती है। दूसरी बात यह है कि उसका नायक कोई दिव्य पुरुष या राजन्य वंशी न होकर अमात्य, विप्र अथवा वणिक वर्ग का होता है। धनंजय का यह भी मानना है कि प्रकरण का मध्यवर्गीय नायक धीर और प्रशान्त चरित्र वाला होना चाहिए, धर्म, काम और अर्थ सिद्धि का उयोगी होना चाहिए तथा उसकी कार्य योजनाएं भांति-भांति के विघ्नों से युक्त होनी चाहिए। शेष सभी बातें प्रकरण रचना में भी नाटक रूपक की तरह ही होती हैं।[१]

दशरूपककार प्रकरण रूपक की नायिका के बारे में बताता है कि वह कोई कुलीन नारी अथवा कोई वेश्या अथवा दोनों हो सकती है।[२]

जहां तक भवभूति के मालती-माधव प्रकरण की बात है इसकी कथा-वस्तु न तो कालिदास के दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रेमकथा की तरह इतिहास, पुराण प्रसिद्ध कोई आख्यान है और न ही यह कोई प्रसिद्ध लोक कथा है। इसकी प्रेमकथा आधुनिक सिनेकथा की तरह पूरी तरह नाटककार की कल्पना की देन है। यह दो पुरुष प्रेमियों की अलग-अलग दो नारी-प्रयसियों से प्रेम की कहानी है। इन दो प्रेम कहानियों में एक कहानी मुख्य भूमिका में रहती है और दूसरी सहयोगी भूमिका में चलती है।

भवभूति के मालतीमाधव प्रकरण में प्रेम में बाधा पहुंचाने वाले प्रतिरोधी चरित्र की भूमिका में न केवल खलनायक का प्रयोग किया गया है बल्कि खलनायिका

१- दशरूपक ३.३६-४०

२- वही ३.४१

का भी प्रयोग हुआ है । इसमें न केवल स्वच्छंद प्रेमाचार का प्रदर्शन है बल्कि हिंसा, अपहरण और दुस्साहस घटनाएं भी आधुनिक युग की रोमांटिक फिल्मों जैसी हैं ।

प्रकरण की कहानी का संक्षिप्त रूप तो केवल इतना है कि दक्षिणापथ के `पद्मावती` और `विदर्भ` इन दो छोटे-छोटे राज्यों के `भूरिवसु` और `देवरात` दो मंत्री हैं । दोनों छात्र-जीवन के सहपाठी हैं । उनकी एक सहपाठिनी भी थी जो आगे चलकर `कामन्दकी` नाम की बौद्ध सन्यासिनी हो गई । भूरि वसु और देवरात ने गुरुकुल जीवन में ही एक मित्रतापूर्ण प्रतिज्ञा परस्पर की थी कि यदि उनमें से कभी एक के पुत्र और दूसरे के पुत्री का जन्म होगा तो वे उन दोनों का विवाह सम्बन्ध करेंगे । दोनों ने यह प्रतिज्ञा अपनी सहपाठी मित्र कामन्दकी के सामने ही की थी । बाद में दोनों अलग-अलग राज्यों के मंत्री हो गये, पद्मावती के मंत्री भूरिवसु पुत्री वाले बन गये, पुत्री का नाम था मालती । विदर्भ के मंत्री देवरात पुत्रवान हुए, पुत्र का नाम था माधव । समय बीतता गया । मालती, माधव सयाने हो गये । दोनों के विवाह की बात नहीं बन सकी । विवाह के रास्ते में सबसे बड़ी यह बाधा आ गयी कि पद्मावती के राजा का मुंहलगा सचिव नन्दन मालती को चाहता था, उसे पाने के लिये वह राजा का दबाव भूरिवसु पर डलवा रहा था । भूरिवसु और देवरात की सहपाठी मित्र कामन्दकी, पद्मावती राजधानी के बौद्ध-विहार में ही रह रही थी । उसे विवाह की प्रतिज्ञा और विवाह के रास्ते की सारी बाधा का ज्ञान था । वह एक सच्चे सहपाठी मित्र के हृदय से भूरिवसु और देवरात की संतानों मालती और माधव के विवाह को पूरा कराने का बीड़ा उठा लेती है । मालतीमाधव प्रकरण का सारा घटनाचक्र कामन्दकी की ही कूटनीति से संचालित होता है । कामन्दकी मालती और माधव के हिलन-मिलन की परिस्थितियां पैदा कर दोनों का प्रेम-प्रसंग पैदा कर देती है ।

कामन्दकी अपने नीति-कौशल से माधव के सहपाठी मित्र मकरन्द का प्रेम नन्दन की बहन मदयन्तिका से करा देती है । मकरन्द और मदयन्ति की प्रेम-कहानी

मालती-माधव प्रेम कहानी की सह-कथा हो जाती है। दोनों युगलों की प्रेम कहानियां बड़े ही रोमांटिक ढंग से चलती हैं। प्रकरण की दोनों नायिकाएं - मालती और मदयन्तिका - अपने प्रेमियों द्वारा जीवन पर खेलकर मौत के मुंह से बचाई जाती हैं। माधव, मालती को एक वाममार्गी तांत्रिक द्वारा बलि का बकरा बनाये जाने से बचाता है और मकरन्द अपनी प्रेयसी मदयन्ती को कटघरे से भाग निकले एक सिंह का शिकार होने से बचाता है।

प्रकरण कथा का रोमांटिक रूप यहां तक बढ़ता है कि कामन्दकी बड़ी कुटिलता से मकरन्द को मालती के वेश में लाकर नन्दन की वधु बना देती है। बेचारा नन्दन सुहागरात के क्षण नववधु से पिट-पिटाकर घर छोड़ भागता है और उसकी बहन मदयन्ती मालती वेश में छिपे अपने प्रेमी मकरन्द से विवाह कर लेती है।

एक रोमांटिक फिल्म की तरह ही रात्रि के समय राजमार्ग से गुजरते हुए मकरन्द और माधव की राजा के पुलिस कर्मचारियों से मुठभेड़ होती है। पुलिस के साथ मार-धाड़ में माधव और मकरन्द विजयी रहते हैं। मार-धाड़ का यह दृश्य और माधव मकरन्द का बल-प्रदर्शन राजभवन की अटारी से राजा स्वयं देख लेता है। उन दोनों के पराक्रम से प्रसन्न होकर वह दोनों प्रेमी-युगलों के विवाह का समर्थन कर देता है।

प्रकरण की मालती-माधव प्रेम कहानी का आखरी और सबसे अधिक रोमांचक क्षण तब आता है जब तांत्रिक 'अघोरघण्ट' जिसका वध माधव के हाथों मालती को मुक्त कराते हुए कर दिया गया था, की शिष्या कपालकुण्डली मालती का अपहरण कर बलि देने के लिये उसे एकान्त और बीहड़ श्रीपर्वत पर ले जाती है। बेचारा माधव, मालती के लिये पागल हो जाता है, जंगल का कोना-कोना छानता है। उसका मित्र मकरन्द भी उसका साथ नहीं छोड़ता। अंत में कामन्दकी की एक शिष्या सौदामिनी, जो स्वयं श्रीपर्वत पर साधना कर रही होती है, मालती को

प्राणरक्षक बनती है। भटकते-भटकते मकरन्द और माधव श्रीपर्वत पर सौदामिनी तक जा पहुंचते हैं। सौदामिनी, मालती, माधव और मकरन्द तीनों को अपनी सिद्धि के प्रभाव से आकाश मार्ग से लेकर कामन्दकी के पास पहुंचती है, जहां सबका सुखद मिलन हो जाता है।

संक्षेप में भवभूति के मालती-माधव प्रकरण की यही चमत्कारपूर्ण कलात्मक नाट्य-कथा है।

नाटककार भवभूति ने मालती-माधव की उपर्युक्त प्रेम कहानी का वस्तु विधान प्रकरण के दस अंकों में विभक्त किया है। अंकों के क्रमानुसार कथावस्तु की रचना इस प्रकार की गई है।

प्रथम अंक : दृश्य प्रथम : कालप्रियानाथ का यात्रा उत्सव

सूत्रधार प्रवेश करते ही कालप्रियानाथ उत्सव की सूचना देता है तथा घोषणा करता है कि भगवान कालप्रियानाथ की यात्रा उत्सव में देश-देशान्तर से आये महानुभावों के विनोदनार्थ श्रेष्ठ नाटक का अभिनय प्रस्तुत होने जा रहा है। इस घोषणा के साथ वह उत्सुकता बढ़ाता हुआ यह घोषणा भी करता है कि इस उत्सव में उसकी नट-मण्डली महाकवि भवभूति द्वारा रचित मालती-माधव नामक एक ऐसे अद्भुत प्रकरण का अभिनय करने जा रही है जिसमें रसों का अद्भुत प्रयोग, मित्रता की अद्भुत घटनाएं स्वच्छंद प्रेम के रोमांचक चित्र, शौर्यपूर्ण दुस्साहस घटनाएं तथा विचित्र-विचित्र दृश्य और बुद्धि-कौशल की घटनाएं हैं।[१]

दृश्य द्वितीय : पद्मावती का बौद्ध विहार

कामन्दकी और अवलोकिता की बातचीत से नाटक की कहानी का आरम्भ होता है।

१- मालती माधव १.४

कामन्दकी यह चिन्ता प्रकट करती है कि भूरिवसु और देवरात की सन्तान मालती और माधव का पाणिग्रहण उत्सव कैसे सम्पन्न हो। अवलोकिता वामाक्षि स्पन्दन के शकुन से शुभ-अशुभ प्रकट करती है। कामन्दकी की बातचीत से ये जानकारी भी मिलती है कि भूरिवसु देवरात दोनों उसके सुपरिचित हैं और देवरात इस समय विदर्भ राज के मंत्री हैं।

उधर भूरिवसु पद्मावती राज्य के मंत्री हैं। यह भी सूचना मिलती है कि दोनों ही सहाध्यायी थे और अध्ययन काल में ही दोनों मित्रों ने आपस में प्रतिज्ञा की थी कि होने वाली सन्तान का यदि वे पुत्र और पुत्री हुए तो विवाह सम्पन्न करेंगे।

कामन्दकी की बातचीत से यह भी जानकारी मिल जाती है कि देवरात ने अपने पुत्र माधव को तर्कशास्त्र पढ़ने के लिये विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर से पद्मावती भेज दिया है, इससे सहज ही उसके मित्र भूरिवसु को पुरानी प्रतिज्ञा भी याद आ सकती है।

अवलोकिता कामन्दकी की चिन्ता पर प्रश्न लगाती है - 'ऐसी क्या बात है कि मालती के पिता अमात्य भूरिवसु स्वेच्छा से पुत्री का पाणिग्रहण माधव से नहीं कर देते और चोरी छिपे विवाद में आपका सहयोग लिया जा रहा है'।

कामन्दकी के उत्तर से रहस्य का पर्दा खुलता है और वो इस प्रकार की भूरिवसु के ऊपर पद्मावती के राजा का दबाब पड़ रहा है। राजा का मुंह लगा सचिव नन्दन है जो मालती से विवाह करना चाहता है। इसीलिए भूरिवसु ने उसे चोरी छिपे इस कार्य की सिद्धि में लगाया है। अवलोकिता के संवाद से लगता है जैसे भूरिवसु तो माधव का नाम तक नहीं जानता किन्तु कामन्दकी के शब्दों में यह भूरिवसु का बनावटी व्यवहार है, वह अपने इरादे का सम्वरण (ढांक) कर रहा है।

जहाँ तक मालतीमाधवम् की बात है दोनों के अनुराग की बात जग जाहिर हो चुकी है। कामन्दकी यह भी साफ कर देती है कि पद्मावती के राजा और उसके सचिव नन्दन को मूर्ख बनाकर हमें ये मांगलिक कार्य करना है।

कथावस्तु के इतने अंश को हम थोड़ा-सा गम्भीरता से सोच लें तो सरलता से जान सकते हैं कि मालतीमाधवम् नाटक के वस्तुविधान का आदि बिन्दु और अन्तिम बिन्दु क्या हो सकता है।

इतने ही कथांश से यह बात खुल चुकी है कि नाटक की कहानी मालती और माधव के चौर्य विवाह पर टिकी हुई है यह भी कि इसको पार करने में मुख्य भूमिका बौद्ध सन्यासिनी कामन्दकी की ही रहती है, यह भी कि इस कहानी में पद्मावती के राजा और उसके नर्म सचिव नन्दन को मूर्ख बना देने की योजना कामन्दकी लागू करेगी जिसका अर्थ होगा कि छलकपट से नन्दन का इरादा पूरा नहीं होने दिया जायेगा, बस मालती माधव के वस्तु विधान का पूरा तानाबाना इसी योजना के अनुसार चलता है।

देखते ही देखते अवलोकिता की बातचीत से पता चल जाता है कि कामन्दकी योजना के अनुसार माधव को सम्पर्क में लाया जा रहा है।

कामन्दकी सम्पर्क के इस प्रयोग का समर्थन करती है और बताती है कि इस योजना को सफल बनाने के लिये हमने मालती की धात्री की लड़की लवंगिका को पहले ही लगा दिया है और उसने हमें सूचित किया है कि अपने भवन के समीप से बार-बार आते-जाते माधव को बातायन से देख मालती उसके प्रति अनुरागबद्ध हो गई है।

अवलोकिता सूचित करती है कि इसीलिए तो लवंगिका ने मालती का मन बहलाने के लिये उसका चित्र मन्दारिका को पकड़ा दिया है, कामन्दकी बताती है कि ये अच्छा हुआ, क्योंकि मन्दारिका हमारी विहार की दासी है और माधव

की यह मूर्ति मालती के पास पहुंच जायेगी ।

अवलोकिता सूचित करती है कि मैंने स्वयं आज माधव को उत्सुकता पैदा करके मदन महोत्सव वाले पार्क में भेज दिया, मालती भी वहां पहुंचेगी । दोनों एक दूसरे से भेंट कर सकेंगे । चट से कामन्दकी बोल उठती है, शाबाश अवलोकिता तेरी इस कुशलता ने तो मुझे मेरी पुरानी शिष्या सौदामिनी की याद दिला दी ।

यह सौदामिनी कहां है ? यह सूचना अवलोकिता के संवाद से मिलती है कि वह आजकल श्रीपर्वत पर मंत्रसिद्धि कर रही है ।

तुम्हें कैसे मालूम हुआ, कामन्दकी के पूछने पर अवलोकिता बताती है । इस पद्मावती नगरी में श्मशान देश में कराला नामक चामुण्डा का मठ है । हां मैं जानती हूं उसे साहसिक लोग तरह-तरह के जीवों की भेंट चढ़ाते हैं । अवलोकिता एक और सूचना देती है, कामन्दकी जी उस श्मशान के पास श्रीपर्वत से आया हुआ अघोरघण्ट नाम का एक कापालिक साधक रहता है जिसकी कपाल कुण्डला नाम की एक शिष्या सन्ध्या के समय आती है, वह बड़ी तंत्र मंत्र वाली है, उसी ने मुझे श्रीपर्वत पर सौदामिनी होने की सूचना दी ह । ठीक कहती हो, सौदामिनी सब कुछ रखने का सामर्थ्य रखती है ।

अवलोकिता अब कामन्दकी का ध्यान दूसरी ओर खींचती है । वह कहती है भगवती ! कितना अच्छा हो, यदि माधव के बाल मित्र मकरन्द का विवाह नन्दन की भगनी मदयन्तिका के साथ हो जाये । इससे माधव का और अधिक दूसरा प्रिय कार्य हो जायेगा ।

झट से कामन्दकी बताती है, इस कार्य के लिये मैंने पहले ही अपनी प्रिय सखि बुद्धरक्षिता को लगा दिया है । आओ अब माधव और मालती की ओर चलें । दोनों बौद्ध सन्यासिनी मालती और माधव दोनों के जोड़े की सुन्दरता बखानती हैं

और दोनों के मिलन की शुभकामनाएं करती है, साथ ही अपने दूती कार्य के प्रति हर तरह की सावधानी करने का विचार बनाती है ।

कितना अद्भुत है भवभूति के वस्तु-विधान का यह अंश । बात ही बात में घटनाचक्र में उतरने वाले प्रत्येक पात्र का हमें सहज ही परिचय मिल जाता है, केवल इतना ही नहीं कौन पात्र किस जीवन का है और नाटकीय घटनाचक्र में वह किस भूमिका में उतर सकता है, इसका भी संकेत हो जाता है, हमें कामन्दकी और अवलोकिता की दूती योजना का हिस्सा बनने वाले लवंगिका, विहार दासी मन्दारिका तथा माधव के दास कलहंस का भी परिचय मिल जाता है । यह भी कि कलहंस मन्दारिका को चाहता है, कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे नाटककार ने त्रिकोण प्रेम प्रसंगों की गोटियां फैला दी हैं--

कथा के मुख्य नायक माधव और मालती द्वितीय मकरन्द मदयन्तिका और तृतीय कलहंस तथा मन्दारिका ।

श्मशान वासी अघोरघण्ट और कपाल कुण्डला की जीवनचर्या से उनकी भूमिका का संकेत कर दिया है । श्रीपर्वत पर मंत्र सिद्धि युक्त सौदामिनी की जानकारी कपाल कुण्डला से देकर भूमिका बना दी है कि घटनाचक्र में यह दोनों पात्र आवश्यकता के समय श्रीपर्वत पर उतारे जा सकते हैं ।

हम कह सकते हैं कि कुशल नाटककार ने घटनाचक्र, पात्र योजना और दृश्यविधान की पूरी बिसात बखूबी बिछा दी है । अब सिर्फ गोटियों को आगे बढ़ाना बाकी है । जब हम आगे चलकर उद्यान आदि में प्रणयी पात्रों का मिलन देखेंगे, या फिर प्रणय जाल बिछाने वाली कामन्दकी और अवलोकिता की चतुराइयों को पायेंगे अथवा फिर कहीं अघोरघण्ट और कपालकुण्डला के जीववध जैसे साहसिक कर्म को देखेंगे तो हमें कोई आश्चर्य या अविश्वास नहीं होगा, सारा घटनाचक्र बड़ी सहजता से अपील करेगा ।

यही बात दृश्यविधान की है, प्रणयीपात्रों के मिलन के लिये मदनोद्यान, सचिव भवन अथवा बौद्ध विहार सब कुछ स्वाभाविक लगेगा, ठीक ऐसे ही किसी श्मशान प्रदेश में अथवा कापालिक कर्म केन्द्र के श्रीपर्वत किसी प्राणी के बलि दिये जाने की योजना सहज और अपील करने वाली लगेगी ।

कामन्दकी और अवलोकिता जैसे दूती पात्र अन्तत: मिलन कराने में सफल होंगे, यह बात भी जान ली गई है ।

दृश्य द्वितीय : पद्मावती का मदनोद्यान

आइये अब घटनाचक्र को विकास की ओर चलता हुआ देखें । पर्दा उठते ही चित्र हाथ में लिये माधव का दास कलहंस दिखाई देता है और सोचता है कि मकरन्द के साथ माधव को इसी पार्क में होना चाहिए । बस सामने माधव उपस्थित हो जाता है जो सोचता है कि अवलोकिता की सूचना के अनुसार मेरा मित्र माधव यही होना चाहिए, तुरन्त उसे माधव दिखाई देता है ।

माधव सुन्दरी मालती की स्मृति में आतुर है । दोनों मित्र उद्यान में एक जगह बैठ जाते हैं, तभी कलहंस समीप आ पहुंचता है दोनों मित्रों की बातचीत होती है, बातचीत से प्रकट होता है कि माधव कहीं अनुरागबद्ध हो चुका है, वह मकरन्द को बताता है कि इस उद्यान के मदन उत्सव में आया था, तभी कोई असाधारण सुन्दरी उधर आ पहुंची और उसने मुझे निहारा, वह मेरे प्रति अपने मनोभावों को न छुपा सकी और उसने कटाक्ष से मुझे देखा ।

तब तो तुम्हारे प्रति उसका अनुराग प्रकट हो ही गया, कलहंस ने इसका समर्थन किया और बताया कि इन दोनों का अनुराग स्त्रीजन के बीच चर्चा का विषय हो गया है । माधव ने यह भी सूचित किया कि वह सुन्दरी हथनी पर सवार हो उद्यान से चल दी । कलहंस ने सोचा वह मालती ही होगी ।

मकरन्द ने पूछा उसका नाम परिचय हो सका ? उत्तर मिला हां उसकी एक सहेली ने बताया था कि वह अमात्य भूरिवसु की बेटी मालती है और मैं उसकी धात्री की बेटी लवंगिका हूं ।

यह संवाद योजना एक बार फिर कामन्दकी और अवलोकिता की याद कराती है ।

कलहंस ने प्रसन्नता व्यक्त की, तब तो हमने बाजी मार ली ।

कहानी का छिपा रहस्य खुला, मकरन्द को चिन्ता हुई कि अमात्य भूरिवसु की बेटी, इसको तो मालती-मालती कहकर कामन्दकी बहुत चर्चा करती है, किन्तु उसके लिये तो राजा अपने सचिव नन्दन के लिये मांग रहा है, ऐसी चर्चाएं हुईं ।

मकरन्द बताता है, माधव उसके मनोभाव तुम्हारे प्रति अनुराग सिद्ध कर चुके हैं, कलहंस ने तुरन्त कहा और यह चित्र भी ।

किसने बनाया है यह चित्र ? कलहंस का उत्तर था मालती ने, तुम्हें कैसे मिला, लवंगिका से, मन्दारिका के हाथों और क्या कहा मन्दारिका ने, यह चित्र मालती ने अपने मनो-विनोद के लिये बनाया था, बस ऐसी ही कुछ और मित्र चर्चा ।

इतने में ही मन्दारिका चोर-चोर करती कलहंस के पास आ धमकी, किन्तु माधव और मकरन्द को देख लजा गई ।

कलहंस ने वह चित्र मन्दारिका को दे दिया । मन्दारिका ने देखा उसके साथ मालती का भी चित्र बन गया है । यह चित्र किसने बनाया, उसने जिसके लिये मालती ने बनाया है, उत्तर मिला । मन्दारिका मकरन्द की बातचीत से पता चलता है माधव के प्रति पहला आकर्षण मालती को वातायन से हुआ था । मन्दारिका चल देती है, मकरन्द और माधव भी सूर्य तपता देख चल देते हैं ।

मकरन्द मन ही मन सोचता है, अब तो बस, कामन्दकी ही हमारा सहारा है ।

जैसाकि हर कहानी में होता है कथा का मुख्य बीज और उसका अंकुरण, यह कर चुकने के बाद कथा की पहली कड़ी पूरी हुई अर्थात् नाटक का प्रथम अंक समाप्त ।

द्वितीय अंक : दृश्य प्रथम : अमात्य भूरिवसु की भवन वीथि ।

दो दासी सखियों की आपसी बातचीत से कुछ नई सूचनाएं मिलती हैं । एक सखि दूसरी से बताती है कि अवलोकिता और कामन्दकी कुछ गुप्तबात कर रही थी, दूसरी ने कहा मकरन्द ने मदनोद्यान का सारा वृतान्त भगवती कामन्दकी को बता दिया है । भगवती ने मालती को देखने के लिये अवलोकिता को भेजा है । वह यह भी बताती है कि मालती निर्जन स्थान में लवंगिका के साथ बैठी है ।

लवंगिका मदनोद्यान में फूल चुनने गई है क्या अब लौट आई ? हां दूसरी ने कहा उसको साथ में लेकर बिना किसी परिजन के भर्तृदारिका (मालती) अट्टालिका पर पहुंच गई, तब तो निश्चित ही वे माधव की चर्चा करके मन बहला रही होंगी ।

दूसरी ने सांस भरते हुए कहा, भगवान जाने मालती का सपना कैसे पूरा होगा । आज सवेरे ही महाराज ने नन्दन के लिये अमात्य से मालती की मांग पेश कर दी है । वह क्या ? पहली ने पूछा । अरे माई तुम जानती हो, अपने अधीनस्थ मंत्री की कन्या के बारे में महाराज के प्रभाव को मना नहीं किया जा सकता । इसलिए मुझे लगता है, माधव का अनुराग मालती के लिये जीवन भर का कांटा बन जायेगा ।

झट से पहली ने कहा कि अरे देखती जाओ, भगवती कामन्दकी कुछ-न-कुछ अपना भगवतीत्व तो दिखाकर रहेंगी--

'भगवती अब किमपि भगवती त्वम् दर्शयिष्यति ।'

दूसरी बोली, अच्छा बेतुकी बात करने वाली आओ ।

नाटककार ने इन दो साधारण दासियों की बातचीत का वस्तु-विधान प्रवेशक के रूप में किया है । इससे हम ये जान गये कि माधव और मालती का अनुराग बढ़ रहा है, हम यह भी जान गये कि आगे मालती और लवंगिका इस अनुराग की चर्चा करेंगी । साथ ही यह सूचना दे दी गई कि प्रणय बाधा ने सिर उठाना आरम्भ कर दिया है और साथ ही यह भी संकेत मिल गया है कि भगवती कामन्दकी का भगवतीत्व अपना रंग दिखाकर रहेगा ।

दृश्य द्वितीय : भूरिवसु के भवन की अटारी

मालती और लवंगिका अटारी पर बातचीत कर रही हैं । मालती ने मदनोद्यान में छोड़ी हुई लवंगिका से पूछा सखि ! आगे क्या हुआ ?

उस महानुभाव ने तुम्हारे लिये यह बकुल पुष्पों की माला भेंट की है । मालती ने प्रसन्नता से लिया और बोली सखि ! इस माला संरचना में कुछ विषमता आ गई है । हां हां, ये तुम्हारे द्वारा पैदा की गई व्यथा के कारण हुआ ।

दोनों की बातचीत से पता चलता है कि मालती और माधव दोनों ओर अनुराग पल रहा है, मालती ने पूछा, फिर क्या हुआ ? फिर भीड़ छंट जाने पर मैं मन्दारिका के घर पहुंची । क्योंकि मैंने प्रात:काल उसे वह चित्र दे दिया था ।

मालती ने कहा, क्यों ? क्योंकि मन्दारिका को माधव का अनुचर कलहंस चाहता है । वह उस चित्र को दिखायेगी । मालती प्रसन्न होकर बोली, 'बोलो तुम्हारी प्रिय वस्तु क्या है' लवंगिका ने तपाक से कहा मन को प्रफुल्लित कर देने वाला तुम्हारा चित्र । वह चित्र जो मनोविनोद के लिये माधव ने बनाया था। मालती ने लम्बी श्वास छोड़ते हुए चित्र को देखा और बोली हृदय को फिर भी आशा नहीं बांध रही है ।

आश्चर्य है सखि, तुम्हें फिर भी आशा नहीं बंधती । आशा कैसे हो, मालती ने कहा, जिसके लिये तुम पीड़ित हो, वह भी तुमसे अधिक संतप्त है ।

भगवान उनकी रक्षा करे, मेरा मनोरथ फिर भी दुर्लभ लगता है । इतने में ही प्रतिहारी सूचना देती है, भगवती कामन्दकी आ गई है, हां उन्हें बुला लाओ । लवंगिका सोचती है, भाग्य से अच्छा हुआ । बस कामन्दकी और अवलोकिता सामने आती हैं । कामन्दकी बोलती आती है, वाह रे भूरिवसु वाह कैसा सुन्दर उत्तर दिया महाराज को -

'प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य देव ।'[१]

महाराज अपनी कन्या के बारे में आप सम्प्रभु हैं, मैं जानती हूं कि ऐसा उत्तर पहला मंगलाचरण है । फिर इधर मदनोद्यान का असर है और फिर बकुलावली तथा चित्र दर्शन जादू है ।

इतरेतर प्रेम ही तो विवाह का सबसे बड़ा मंगल है । इसी को तो अंगिरस ऋषि ने कहा है जिसमें मन और चक्षु दोनों जुड़ जायें उसी में कल्याण है ।

भगवती यह मालती है, कामन्दकी उसकी सन्तप्त अवस्था देखकर द्रवित हो गई । पास पहुंचते ही मालती और लवंगिका ने स्वागत किया, परस्पर कुशल प्रश्न हुए, लवंगिका ने मन ही मन सोचा । यह सब कपटनाटक की प्रस्तावना है ।

कामन्दकी के मुंह से भी निकला, यही तो चीरचीवर वेश के विरुद्ध मेरा तुम लोगों से परिचय है । लवंगिका ने पूछा, भगवती कहां तो ये सुन्दरी मालती और कहां वह नन्दन । लवंगिका ने कहा सारे लोक में थू-थू हो रही है कि राजा के दबाव से अमात्य मालती का विवाह नन्दन के साथ कर रहा है ।

१- मालतीमाधव २.२

कामन्दकी ने अफसोस प्रकट किया, अमात्य यह क्या अनुचित कर रहे हैं। मालती चिन्ता में पड़ गई। राजा को प्रसन्न करना बड़ी चीज है मालती नहीं और रोने लगी। लवंगिका ने प्रार्थना की, कामन्दकी जी हमारी सखि की रक्षा कीजिए, यह तुम्हारी बेटी है।

भगवती क्या कर सकती है, कुमारियों का निर्णायक तो उनका पिता और भाग्य ही है। जहां तक शकुन्तला और दुष्यन्त, पुरुरवा उर्वशी, वासवदत्ता और उदयन की कहानियां हैं, वे सब साहस की बाते हैं। उनकी सीख नहीं दी जानी चाहिए। जब पिता ही एक शशिकला को धूमकेतु लगा रहा हो तो कोई क्या करे।

अवलोकिता बोली, भगवती श्रीमान् माधव बहुत आश्वस्त हैं, देर न कीजिये और कामन्दकी चल दी।

लवंगिका ने मालती से कहा, सखि। कम से कम भगवती से माधव का परिचय तो जान लें। कामन्दकी ने बताया विदर्भ राज के अमात्य देवरात हैं जो बहुत यशस्वी हैं, उसका ही बेटा माधव है। वह माधव अपने बाल सखा मकरन्द के साथ यहां पद्मावती में न्यायशास्त्र पढ़ रहा है। मालती खिल उठीं। उसे लगा, उसका प्रिय माधव कुलीन है।

इसी बीच शंख ध्वनि सुनाई देती है। कामन्दकी संध्या आ पड़ी जानकर वहां से चल देती हैं। मालती पिता को कोसती हुई रह जाती हैं और लवंगिका के साथ अटारी से उतर आती हैं।

कामन्दकी बोलती हैं, अवलोकिता, देख मैंने कितनी तटस्थता से मालती के प्रति दूती कर्म का दायित्व पूरा कर दिया। मैंने दूसरे वर्ग के प्रति नफरत पैदा कर दी। पिता के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया। पुरानी कहानियों से साहस दिखाने की दिशा भी दे दी और माधव के वंश परिचय आदि से उसके

गुणों की प्रसंशा कर दी ।[१] दोनों के प्रस्थान के साथ ही दृश्य पट बदल जाता है ।

तृतीय अंक : दृश्य प्रथम : बौद्ध विहार

अब घटनाचक्र का तीसरा चरण शुरू होता है । बुद्ध रक्षिता अवलोकिता को पुकारती आती है और पूछती है भगवती कामन्दकी कहां हैं ? अवलोकिता आती हुई बोलती है, 'पागल हो गई हो' बुद्ध रक्षिता भगवती कामन्दकी मालती के साथ लग गई हैं उन्होंने मुझे माधव के पास भेजा है और सन्देश दिया है कि माधव शिव मन्दिर के पास उद्यान में पहुंचकर अशोक वन में ठहरे ।

माधव को वहां क्यों भेजा है ?

आज कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी है, माता के साथ मालती भी शिव मन्दिर जायेगी, तभी देव-पूजा के लिये फूल तोड़ने के बहाने मालती को लेकर लवंगिका उस उद्यान में जायेगी, जहां माधव छिपा है, वहां दोनों एक दूसरे को मिलेंगे । बुद्ध रक्षिता बोली मुझे भी तो मेरी प्रिय सखि मदयन्तिका ने शिव मन्दिर बुलाया है, अवलोकिता ने पूछा तुम्हें कामन्दकी ने किस काम में लगाया है ? बुद्ध रक्षिता बोली, उन्होंने मुझे मदयन्तिका के मन में मकरन्द का प्रेमांकुर जगाने के लिये नियुक्त किया है ।

बुद्ध रक्षिता को शाबाशी दी अवलोकिता ने और दोनों चल दीं ।

नाटककार ने तृतीय अंक की घटना में यह प्रवेशक जोड़ा है । इससे हमें जानकारी मिल गई कि मालती और माधव शिव मन्दिर पहुंच रहे हैं तथा यह भी कि बुद्ध रक्षिता भी एक दूसरे प्रणय के दूती कर्म में उतार दी गई हैं ।

दृश्य द्वितीय : कुसुमाकर उद्यान

कामन्दकी सन्तोष प्रकट करती हुई प्रवेश करती है। वह सोचती है मैंने उपायपूर्वक मालती को थोड़े ही दिनों में ऐसा काबू में कर लिया है कि मुझसे अपनी निकट सखियों जैसा विश्वसनीय व्यवहार करने लगी है। मेरे दूर होते ही आकुल हो जाती है, साथ रहते प्रसन्न रहती है। एकान्त में खेलती है, प्रेमालाप करती है। मेरे चलते ही गले से चिपट जाती है और शपथ देकर बार-बार रुकने की प्रार्थना करती है। इससे मुझे अपनी योजना में सफल हो जाने की आशा बंध गई है।[१] जब मैंने उसे शकुन्तला आदि के कथानकों को दूसरों के नाम से दोहराया तो मालती मेरी गोद में लुढ़क कर चिन्ताग्रस्त हो गई। (इसका अर्थ यह हुआ कि भगवती ऐसे साहस में तुम्हीं मेरा सहयोग कर सकती हो)।[२] अब मुझे माधव के सामने अगली योजना बढ़ानी है, यह कहते हुए उसने मालती और लवंगिका को पुकारा। दोनों ने एक साथ प्रवेश किया।

मालती को अपने पिता से बड़े गहरे तीन उलाहने हैं--

कथमुपकारीकृतास्मि राज्ञस्तातेन।

राजाराधनं खलु तातस्य गुरुकम्न

पुनर्मालती। हा तात, त्वमपि

मम नामेवमिति सर्वथा जितं भोगतृष्णाया।

हर्ष से उछलती, ओह। वह महानुभाव एक कुलीन पुरुष है, मेरी सहेली ने उचित ही कहा था, महोदधि को छोड़कर पारिजात और कहां पैदा हो सकता है। क्या मुझे फिर भी उनका दर्शन हो सकेगा ?

१- मालतीमाधव ३.२

२- वही ३.३

लवंगिका ने मालती की मानसिकता को ताड़ते हुए कहा सखि, आओ कोकिल के स्वर से कूजती और भौंरों से गुन्जारही कुसुमाकर उद्यान की हवाओं का आनन्द लें। (दोनों चल देती हैं।)

घटनाचक्र आगे बढ़ता है। कामन्दकी माधव के पास आ गई है, माधव की आशा जागती है, वह सोचता है जैसे वर्षा से पूर्व बिजली की चमक ग्रीष्म के मारे मयूर को जीवन देती है वैसे ही मेरी प्रिया से पहले आती कामन्दकी मेरे हृदय को जीवन दे रही है।[१] अरे वाह! लवंगिका के साथ मालती भी आ गई, माधव ने कहा और उसके रूप सौन्दर्य में खो गया। मालती और लवंगिका उद्यान में कुसुम चयन करती हैं। माधव उसके सौन्दर्य में डूब जाता है।

माधव कामन्दकी की निपुणता पर आश्चर्य चकित होता है। मालती फूल चुनने दूसरी ओर चलती है। कामन्दकी बोलती है, अरे छोड़ो तुम बहुत दुर्बल हो गई हो और भी कुछ उपहास सा करती है।

इसके आगे कामन्दकी मालती की ठोडी में हाथ डाल कहती है, सौभाग्यनी एक मधुर बात सुनो, मैंने तुम्हें कभी बताया था कि एक माधव नाम का कुमार है, वह तेरी ही तरह मेरे हृदय का दूसरा प्रिय है। हां, भगवती लवंगिका ने समर्थन किया।

'देखो मालती' कामन्दकी ने बात आगे बढ़ाई। मदनोद्यान की तुम्हारी यात्रा के दिन से वह बेचारा स्वयं को खो बैठा है।

लवंगिका ने फिर समर्थन किया, हां यह बात मुझे अवलोकिता ने भी कही थी कि माधव अस्वस्थ है।

'मैंने सुना है' मालती ही उसके मनस्ताप का कारण है।

१- मालती माधव ३.४

माधव कामन्दकी की चातुर्य से खिल उठता है ।

कामन्दकी की बातें सुनकर मालती माधव के लिये चिन्तित हो उठी और बोली लवंगिके मेरे कारण ऐसे पुरुष श्रेष्ठ को कोई आपत्ति न आ पड़े ।

माधव का चित्र प्रदर्शित किया और हां, साथ में चित्रित मालती का इसी बीच दूर से आवाज, अरे-अरे, भागो, देखो, ये कट-कट और घट-घट शब्द करता यमराज-सा क्रोधी व्याघ्र दौड़ा आ रहा है ।

आवाज सुनकर सब चौंकते हैं । इसी बीच बुद्धरक्षिता चिल्लाती है, अरे ! मेरी प्रिय सखि मदयन्तिका पर दुष्ट व्याघ्र आक्रमण कर रहा है । मालती घबराई माधव ने प्रश्न किया, वह कहां है, तभी मालती और माधव के नेत्र एक दूसरे से मिले और भावों में डूब गया ।

बुद्धरक्षिता ने बताया श्रीमन वह व्याघ्र इस उद्यान से बाहर की सड़क पर है । दूर से देख, सब चीख उठे, अरे बेचारी कन्या को व्याघ्र ने खा लिया ।

तुरन्त दृश्य बदला कि व्याघ्र और मदयन्तिका के बीच आयुध धारी मकरन्द दिखाई दिया । सब ओर से उसके पौरुष की प्रशंसा हुई । मकरन्द ने व्याघ्र को मार गिराया ।

सब लोग मकरन्द के पौरुष पर रीझ उठे । खून से लथपथ दूर से देखकर माधव लड़खड़ाया । कामन्दकी ने कहा, आओ, मकरन्द को देखें और चल दिये ।

तीसरे अंक की वस्तु रचना से नाटककार ने यह बात स्पष्ट कर दी कि मालती और माधव की मनोभूमि योजनानुसार तैयार है ।

साथ ही मकरन्द और मदयन्तिका के प्रणय की भूमिका भी उजागर कर दी ।

चतुर्थ अंक : दृश्य प्रथम : वही कुसुमाकर उद्यान

घटनाचक्र का आरम्भ तृतीय की घटनाचक्र से जुड़कर चलता है। व्याघ्र युद्ध में घात-विघात अपने मित्र मकरन्द के साथ माधव और दूसरी ओर मदयन्तिका, मालती, कामन्दकी, बुद्धरक्षिता और लवंगिका सामने आते हैं। घायल मकरन्द को मदयन्तिका आंचल की हवा से होश में लाती है और दूसरी ओर मालती माधव को।

पहले अंक के घटनाचक्र तक हम मालती और माधव के अनुराग को पूर्ण पल्लवित हुआ देख चुके हैं।

इधर दूसरी ओर मदयन्तिका और मकरन्द का प्रणय अंकुरित हो रहा है। इसी बीच मदयन्तिका को सूचना मिलती है कि तुम्हारे बड़े भाई अमात्य नन्दन ने सन्देश दिया है कि आज महाराजाधिराज ने स्वयं हमारे घर आकर भूरिवसु के ऊपर अगाध विश्वास और हमारे ऊपर महती कृपा की है।

इस सूचना को सुनते ही मालती और माधव का मुख मलिन हो जाता है। मदयन्तिका हर्ष से फूल जाती है और कहती है सखि ! मालती हम तुम एक नगर के रहने वाली और साथ-साथ एक माटी में खेलने वाली एक दूसरे की प्यारी सखि हैं। अब तो तुम हमारे घर की शोभा ही हो गई हो।

कामन्दकी ने मन की बात छिपाकर मदयन्तिका को बधाई दी। मदयन्तिका और बुद्धरक्षिता विवाहोत्सव की ओर चल दी, तभी लवंगिका ने धीरे से कामन्दकी के कान में फुसफुसाया, भगवती ! देखा, मदयन्तिका और मकरन्द के अवलोकन बता रहे हैं।

'कामन्दकी ने हंसकर कहा' हां, हां, दोनों के बीच सम्मोहन चल रहा है। मदयन्तिका और बुद्धरक्षिता मकरन्द की चर्चा करती चली जाती हैं।

माधव का आशातन्तु टूट जाता है। कामन्दकी ढाढस बंधाती है और कहती है कि ऐसी प्रणयसिद्धि अनायास ही नहीं होती और तुम क्या समझते हो मैं इस मामले में असावधान हूं। मकरन्द और माधव श्रद्धा से सिर झुका लेते हैं। इसी बीच आवाज आती है--

भगवती कामन्दकी जी, महारानी का आदेश है, मालती को लेकर जल्दी आओ। कामन्दकी उसे लेकर चल देती हैं। माधव सोचता है, मेरी और मालती की सहयात्रा बस इतनी ही है।

मालती भी इसी सोच में डूबी असहाय-सी चल देती है।

माधव का विश्वास कामन्दकी से हिल जाता है।

इधर मकरन्द मदयन्तिका के बारे में अपनी मन की बात माधव को बताता है। माधव बोलता है, तुम्हारे साहस कर्म से उसके प्राणों की रक्षा हुई है, इसलिए मदयन्तिका तुम्हारे लिये दुर्लभ नहीं है।

आशा-निराशा के बीच डूबते उतरते दोनों मित्र वरदा और सिन्धु नदी के संगम पर स्नान कर उद्यान से नगरी की ओर चल देते हैं।

हम देखते हैं, तृतीय अंक और चतुर्थ अंक का पूरा घटनाचक्र कुशुमाकर उद्यान में घटित होता है।

प्रणय व्यापारों में जुटी पात्रों की पूरी टोली यहां उपस्थित रहती है। ये पात्र हैं मुख्य रूप से, कामन्दकी, बुद्धरक्षिता, लवंगिका और मालती माधव तथा मकरन्द और मदयन्तिका।

पंचम अंक : दृश्य प्रथम : पद्मावती का श्मशानवर्ती कराला मन्दिर

कपाल कुण्डला भूतनाथ शिव की आराधना करती दिखाई देती है और अपनी मंत्र सिद्धि के बल पर आकाश में उड़ सकने का गौरव बखानती है।

श्मशान के पास ही वह कराला देवी के मन्दिर आ पहुंचती है और कहती है, मेरे गुरु ने कहा है कपाल कुण्डले कराला चामुण्डा ने जो बलि मुझसे सुन्दर स्त्री की चाही है, वह आज मुझे देनी है, तभी उसे हाथ में कृपाण लिये सुन्दर पुरुष श्मशान में दिखाई देता है। वह आश्चर्य से कहती है, अरे! यह तो कामन्दकी के लिये देवरात का बेटा माधव प्रेतों के लिये नरमांस बेच रहा है। होने दो मुझे तो गुरु की बलि के लिये कर्त्तव्य निभाना है।

हम स्पष्ट देखते हैं, यह घटना अंश जोड़कर नाटककार ने एक रोमांचक कड़ी की भूमिका इस विष्कंभ योजना से बना दी है।

माधव, मालती के लिये कपाली जीवन में उतर गया है, यह सूचित हो गया है। अब देखना है कपालकुण्डला नर बलि के लिये नगरी की किस सुन्दरी को उड़ाकर लाती है। यह उत्सुकता भी पैदा कर दी गई है।

पर्दा उठते ही मंच पर माधव प्रेतों के लिये मांस बेचता दिखाई देता है और इस कर्म का एक ही फल चाहता है, मालती मिलन।

श्मशान में प्रेतों के वीभत्स दृश्य सामने आते हैं और माधव पुकारता है। 'असस्त्र पूतमव्याज पुरुषांगोप कल्पितम्। विक्रीयते महामांशं गृह्यतां इति:।'

इसी बीच उसे पिशाच लीलाओं से सारा श्मशान हिलता नजर आता है।

बेचारा माधव फिर वही असरत्र पूतम् पुकारता है। इतने में ही, अरे! निर्दयी पिता तुम्हारे राजा की प्रसन्नता का साधन, मैं मर रही हूं।

माधव सुनकर चौंकता है, स्वर पहचानने लगता है, वह ध्वनि की दिशा पकड़ कराला मन्दिर की ओर बढ़ता है ।

फिर वही हा तात् निश्करोमि की पुकार, साथ ही साथ माधव, कामन्दकी, लवंगिका आदि की भी पुकार ।

माधव ने जान लिया, यह तो मालती बोल रही है, वह तेजी से दौड़ा । मन्दिर में उसकी बलि देने को दैत्य दो कापालिक दिखाई दिये ।

तरह-तरह से चामुण्डा के मंत्रों की ध्वनि सुनाई दी । माधव ने देखा, दो चाण्डालों के बीच भूरिवसु की बेटी दो भेड़ियों के बीच मृगी की तरह फंस गई है । कपालकुण्डला ने कहा, मौत के मुंह में जाने से पहले अपने प्रिय को याद कर, तो मालती माधव-माधव पुकारने लगी । जैसे ही अघोरघण्ट उसके बध के लिये तत्पर हुआ, माधव उसके ऊपर टूट पड़ा । अघोरघण्ट और माधव के बीच कटु संवाद शुरू हो गये । माधव ने मालती से घटना की जानकारी चाही ।

`उसने कहा` अटारी पर सोई हुई मैं यहीं जागी हूं केवल इतना मालूम है । आप यहां कैसे, मालती के इस प्रश्न पर माधव ने बताया ।

शुभगे तुम्हें पाने के लिये यह जीवन चर्या ग्रहण की है । तुम्हारे रोने की आवाज सुनकर श्मशान से यहां आ पहुंचा । बस माधव और अघोरघण्ट की एक दूसरे पर आक्रमक प्रवृत्ति आरम्भ हो गई ।

इसी बीच दूर से कामन्दकी की आवाज, मालती को खोजने वाले लोगों, मैं आदेश करती हूं, कराला मन्दिर को घेर लो ।

अघोरघण्ट के अलावा यह दुष्कर्म किसी का नहीं है । कराला को बलि देने के अलावा और कोई फल भी सम्भव नहीं है ।

कराला मन्दिर घेर लिया जाता है। माधव मालती को एक ओर माधव-जनों में खिसका कर स्वयं अघोरघण्ट से भिड़ जाता है और प्रहार करता हुआ बोलता है-- 'असिगात्रंगात्रं सपदि लवशस्ते विकिरतु।'

अघोरघण्ट का बध हो जाता है।

इस अंक की घटनाचक्र में नाटककार ने मकरन्द के पराक्रम की तरह माधव के पराक्रम का भी अवसर पैदा कर दिया।

इससे नाटकीय वस्तु-विधान में और रोचकता आ गई है, किन्तु इतना अवश्य है कि कापालिकों के संवादों में और माधव के श्मशान दृश्य वर्णन में जिन श्लोक रचनाओं का प्रयोग किया गया है वे अपने शब्द विन्यास और ध्वनि कर्कस्वता से भयावह दृश्य तो भरपूर पैदा करते हैं, लेकिन नाटकीय संवादों के लिये वे क्लिष्ट हैं और अर्थ की जगह केवल ध्वनि प्रवाह ही पैदा कर सकते हैं।

हम इतना जानते हैं कि नाटककार अगर कराला मंत्रों में और श्मशान वर्णन में थोड़ा भाषा संयम बरतता तो अधिक उचित होता।

पंचम अंक के घटनाचक्र में हम देख चुके हैं कि नाटककार ने कपालकुण्डला और अघोरघण्ट को खलनायक की भूमिका में उतारा है। इस भयानक घटना का आयोजन करके उसने मालती के हृदय में अपने सारे साहसी प्रिय के प्रति प्रेम को और दृढ़ बना दिया है। अब घटनाचक्र आगे बढ़ता है।

षष्ठ अंक : दृश्य प्रथम : कराला मन्दिर

पटल पर कापालिकी कपालकुण्डला अवतरण करती है। वह माधव द्वारा अपने गुरु अघोरघण्ट के मार दिये जाने से अत्यन्त क्रुद्ध है और उसे दण्ड देने की प्रतीज्ञा करती है।[१]

१- मालती माधव ६.१

दूसरी ओर नेपथ्य से विवाह के उत्सव की तैयारियां सुनाई देती हैं। सूचना दी जाती है कि जब तक वर यात्रिक नहीं आते हैं तब तक मालती नगर देवता के मन्दिर में जाकर मंगल पूजा करे और तब तक उपहार देने वाले लोग उसके लौटने की प्रतीक्षा करें।

यह सूचना सुनकर कपालकुण्डला बोलती है, अच्छा, मैं भी इस भीड़भाड़ के वातावरण से हटकर माधव से बदला चुकाने की योजना में लगती हूं और चल देती है। इस विष्कंभक योजना से मालती के पुन: अपहरण की भूमिका बन गई है। वस्तु-विधान में कपालकुण्डला की बातचीत के इस अंश को जोड़कर नाटककार ने और एक किसी भयानक घटना की सूचना दे दी है अर्थात् नायक की और कोई कड़ी परीक्षा।

दृश्य द्वितीय : पद्मावती का नगर देवता मन्दिर

कपालकुण्डला के खिसकते ही मंच पर कलहंस दिखाई देता है, वह बोलता है नगर देवता के मन्दिर में मकरन्द के साथ छिपे माधव ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं यह सूचित करूं कि मालती इस मन्दिर की ओर चल दी है अथवा नहीं।

उसके हटते ही पर्दा उठता है। माधव और मकरन्द नगर देवता मन्दिर में दिखाई देते हैं। दोनों इस बात को लेकर सन्देह में डूबे हुए हैं कि भगवती कामन्दकी की सारी योजना सफल हो गई अथवा निरर्थक रह जायेगी।

मकरन्द माधव को बोलता है कि भगवती की बुद्धि कभी मात नहीं खा सकती।[१] इसी बीच कलहंस मालती के उस ओर आने की सूचना देता है। माधव हर्षित हो उठता है। दोनों मित्र मन्दिर के झरोखे से गाजे-बाजे के साथ आती मालती को देखते हैं।

१- मालती माधव ६.३

मालती के साथ आ रहे सारे लोग मन्दिर से दूर ही रुक जाते हैं और मालती मन्दिर में पहुंच जाती है ।

सारी परिस्थिति योजनानुसार अनुकूल देखकर कामन्दकी खिल उठती है और शुभकामना करती है - प्रयत्न: कृत्स्नो यं फलतु शिवतातिश्च भवतु ।[१]

मालती बेचारी सारे घटनाचक्र की खिलौना बनी हुई है ।

नन्दन के साथ विवाह के उपक्रम को लेकर वह अपने जीवन का अन्त कर देना अधिक अच्छा समझती है । कामन्दकी की योजना का मालती को पता नहीं है ।

इसी बीच राजा साहब के द्वारा प्रेषित किये गये उपहार वस्त्रालंकार लेकर प्रतिहारी आ पहुंचता है और कहता है, इन आभूषणों से मालती को देवमन्दिर में दुल्हन बनाना है ।

कामन्दकी बोलती है, बहुत ठीक, मन्दिर इस कार्य के लिये सबसे मांगलिक स्थान है । प्रतिहारी कहीं रेशमी शाल, कहीं लाल चुनरी और कहीं भांति-भांति के आवरण तथा मोती हार तिलक चन्दन आदि गिन-गिन कर भगवती को सौंप देता है ।

कामन्दकी सोचती है इन सबको पहनकर जब मेरा मकरन्द दुल्हन बनेगा तो दुनियां वाले वाह, वाह कर उठेंगे । भगवती ने सेवक को लौटा दिया, अमात्य से कह देना, सब ठीक हो रहा है ।

अब कामन्दकी ने लवंगिका के साथ मालती को देवमन्दिर में पहुंचा दिया और स्वयं एकान्त में इन वस्त्रों और आभूषणों के लक्षणों की शास्त्रों के अनुसार जांच परख करती हूं, कह कर पटल से हट गई ।

१- मालती माधव ६.७

अब हम मन्दिर के गर्भ गृह का छल नाटक देखते हैं ।

मालती और लवंगिका देव मन्दिर में प्रवेश करती हैं । मकरन्द और माधव मन्दिर के स्तम्भ की आड़ में छिप कर देखते हैं ।

लवंगिका मालती को सजाने के लिये अंगराग और कुसुम मालाएं प्रस्तुत करती है और कहती है, सखि पाणिग्रहण से पहले कल्याणकारी देव पूजा कर लो । मालती अन्दर ही अन्दर पीड़ा से भर जाती है उसे अपने विवाह की कोई खुशी नहीं है । वह लवंगिका को बोलती है, लवंगिका यदि सचमुच तुम मेरी सखि हो तो इस अवसर पर मुझे माधव का मुखारविन्द दिखा दो ।

माधव और मकरन्द आड़ लेकर यह सब सुनते हैं । मालती मरणोद्धत होती है । लवंगिका उसे धीरज बंधाती है, मालती लवंगिका के पैरों पड़कर माधव को एक बार मिला देने के लिये बिलखती है । लवंगिका संकेत से माधव को बुलाती है । मकरन्द, माधव को बोलता है, जल्दी करो, जाकर लवंगिका के स्थान पर खड़े हो जाओ ।

माधव वैसा ही करता है । मालती धरती पर पड़ी हुई सामने खड़े माधव को लवंगिका ही समझती है, बस माधव उसे उठाते हुए प्रेमालाप करता है । मालती मुग्ध भाव से उसे अभी भी लवंगिका समझती है और माधव की दी हुई वकुलमाला उसकी ओर बढ़ाती हुई कहती है सखि ! मेरे बाद तुम इसे धारण करना ।

अन्त में भेद खुल जाता है और माधव को मालती पहचान लेती है । दोनों के मिलन से देव मन्दिर में स्थित कलहंस और मकरन्द भी हर्षित हो उठते हैं ;

लवंगिका माधव से मालती के पाणिग्रहण का अनुरोध करती है । मालती फिर भी कन्या स्वभाव के अनुसार झिझकती है । तभी अचानक कामन्दकी मन्दिर में आ पहुंचती है और बोलती है पुत्रि ! अब कैसा भय ? तुम्हारा वह प्रथम नयनानुराग, तुम्हारा वह मानसिक अनुभाव, तुम्हारी वह पीड़ा, यह सब आज सफल

हो गये हैं।[१] लवंगिका ने कहा, भगवती, यह माधव बड़ा साहसी है जिसने मालती को पाने के लिये श्मशान में प्रेतों को नरमांस विक्रय का साहस तक दिखाया है। कामन्दकी ने कहा, हां हां, सचेत अनुराग के लिये कोई भी कठिन परीक्षा देनी होती है। यह कहते हुए कामन्दकी ने मालती का हाथ प्रेमाश्रु छलकाते हुए माधव को पकड़ा दिया। उसने माधव को कहा वत्स! तुम दोनों का प्रेम अद्भुत है। मुझे भी तुम बहुत मानते हो। बस इतना ध्यान रखना कि मेरे बाद मालती से बेरुखी कभी न करना। अच्छा तो और अधिक क्या, अब तुम मालती को स्वीकार करो।[२]

इस कथांश में मालती पाणिग्रहण के क्षणों में कामन्दकी की भूमिका एक सहृदय मां जैसी है। अतएव नाटककार ने इन क्षणों को भारतीय लोकाचार के अनुसार ही विन्यस्त किया है।

अब घटना की दूसरी कड़ी का आरम्भ, कामन्दकी ने आदेश किया कि मकरन्द मालती वेश धारण कर नन्दन से परिणय को तैयार हो जाये। मकरन्द ने तुरन्त एक बड़े चित्र की आड़ लेकर वेश परिवर्तन कर मालती रूप धारण कर लिया। उसकी निपुणता से मालती, माधव, लवंगिका सब आश्चर्यचकित रह गये।

कामन्दकी ने आज्ञा दी, मालती और माधव सामने दीख रहे लतापुन्ज की ओर बढ़ जायें, वहां उद्यान में पहुंचे, उनके विवाह संस्कार की पूरी तैयारी अवलोकिता ने कर रखी है।

'ध्यान रहे' कामन्दकी ने कहा, जब तक मदयन्तिका और मकरन्द वहां पहुंचे तब तक वहीं ठहरना है।

१- मालती माधव ६.१५

२- वही ६.१६

कामन्दकी के इस छोटे से कथन से नाटककार ने आगे की योजना सूचित कर दी ।

वह है मकरन्द और मदयन्तिका का पाणिग्रहण ।

सभी लोग योजनानुसार चल दिये । कामन्दकी मालती बने मकरन्द और लवंगिका को लेकर मन्दिर की ओर प्रस्थान कर जाती है ।

यही छठे अंक की कड़ी पूरी हुई ।

सप्तम अंक : दृश्य प्रथम : सचिव नन्दन के भवन का बाहरी भाग

बुद्धरक्षिता के सकल आलाप से पता चलता है कि कामन्दकी का जान सफल हो गया है । मालती रूप धारण किये मकरन्द से नन्दन का पाणिग्रहण हो चुका है । कामन्दकी नन्दन से विदा लेकर खिसक गई है । बुद्धरक्षिता और लवंगिका को मकरन्द और मदयन्तिका की विवाह योजना में जुटा दिया है ।

सारी योजना सफल हो गई है, क्योंकि कामी नन्दन को मकरन्द ने कसकर धुन दिया है और वह तौबा करता हुआ घर से निकल भागा है । अब मदयन्तिका और मकरन्द के मिलन की घटना शुरू होती है ।

बुद्धरक्षिता के इस प्रवेशक की सहायता से नाटककार ने हमें वे घटनाएं बता डालीं, जिनका मंच पर लाना कुछ आवश्यक नहीं था । हम ये जान गये कि कामन्दकी की योजना के अनुसार मकरन्द मालती बना, भूरिवसु के घर छिपा रहा, हम यह जान गये कि वह वधू बनकर नन्दन के यहां पहुंचा, हम यह भी जान गये कि उसने नन्दन को घसीट डाला और यह भी कि मकरन्द और मदयन्तिका के समागम का मंच सहज तैयार हो गया ।

दृश्य द्वितीय : नन्दन भवन का शयनागार

शैया पर लेटा मालतीवेश मकरन्द और उसके साथ लवंगिका मंच पर दिखती हैं। मकरन्द, लवंगिका से पूछता है, क्या बुद्धरक्षिता के सहारे भगवती कामन्दकी की नीति सफल हो सकेगी अर्थात् क्या मदयन्तिका मुझे मिल सकेगी। लवंगिका बोलती है, मुझे कोई सन्देह नहीं है, देखो यह पायल की धुन बता रही है, मदयन्तिका को लेकर बुद्धरक्षिता आ पहुंची है। मालतीवेश मकरन्द चादर से मुंह ढंककर लेट जाता है।

मदयन्तिका को घटना का अन्दरूनी रहस्य ऐसे ही नहीं मालूम है जैसे देव मन्दिर की घटना का रहस्य मालती को नहीं मालूम था। वह बेचारी बुद्धरक्षिता के साथ यही सोचती जाती है कि अशिष्टता करने वाली भाभी को डांटेगी। यह सोचते-सोचते मदयन्तिका और बुद्धरक्षित नन्दन भवन आ पहुंचती हैं। वहां सोने का अभिनय करते हुए मालती वेश मकरन्द पहले से मौजूद है। लवंगिका वहां उपस्थित है, वह मदयन्तिका को बताती है, बहू रानी की नींद न टूट जाये, बहन जी, आप शैया के खाली अर्धभाग पर ही बैठ जाइये। मदयन्तिका वैसा ही करती है।

मदयन्तिका, बुद्धरक्षिता और लवंगिका, नन्दन के सौभाग्य-मिलन के बारे में कुछ उलाहने भरी बातें करती हैं और अन्त में सभी नन्दन को ही दोषी ठहराती हैं। बुद्धरक्षिता बोलती है, नन्दन स्वयं ही तो इस चरित्रहीन से मेरा कोई वास्ता नहीं। इस तरह बकता हुआ घर से निकल गया। इसमें वधू का क्या दोष था ?

मदयन्तिका कहती है जो हुआ सो हुआ लवंगिके यह प्रवाह फूटना नहीं चाहिए। वह यह भी कहती है लवंगिका मुझे मेरे उस प्रिय का मिलन करा दो। कौन है वो जिसने अपने पौरुष से व्याघ्र का वध करके मुझे बचाया था।

अच्छा, मकरन्द ! लवंगिका ने कहा।

बुद्धरक्षिता बोल उठी, हूं, समझ गई । मदयन्तिके तुम्हारा पुलकित शरीर बता रहा है कि तुम मकरन्द के मिलन से उत्कण्ठित हो गई हो ।

आप क्या कह रही हैं ? यह प्रसन्नता तो मुझे शैया पर सो रही मालती को देखकर मिल रही है, मदयन्तिका ने लज्जा भाव से कहा ।

बातचीत में मदयन्तिका मकरन्द के लिये अपनी मानसिक प्रेम दशा का वर्णन करती है और सूचित करती है कि साहसी मकरन्द के बिना मेरा जीवन सूना है ।

तरह-तरह से परस्पर हास-परिहास चलते हैं । बुद्धरक्षिता बोलती है, मदयन्तिका, अगर तुझे मकरन्द मिल जाये तो ? मदयन्तिका बोली, तो मैं स्वयं को उसको समर्पित कर दूंगी ।

मकरन्द तुरन्त ही मुंह उघाड़कर उसका हाथ थाम लेता है, अरे तुम जाग गई मालती ! मदयन्तिका कहती है । मकरन्द ने स्वयं को वास्तविक रूप में प्रकट किया । बस उसी क्षण बुद्धरक्षिता बधाई देकर चल देती है ।

कहां चलीं बुद्धरक्षिते, मदयन्तिका ने पूछा । जहां मालती गई हुई है । बुद्धरक्षिता ने यह भी बता दिया कि मालती अपना लक्ष्य पा चुकी है । बस यह सूचना मिलते ही मकरन्द अपना इरादा सब को साथ लेकर मालती के पास पहुंचने का बना लेता है । सब चल देते हैं ।

अष्टम अंक : दृश्य प्रथम : बौद्ध विहार की पथवीथि

अवलोकिता एकल आलाप करती कहती है कि नन्दन के आवास-भवन से लौटी कामन्दकी ने मुझे आदेश दिया है कि मैं मालती और माधव के समीप कुसुमोद्यान में पहुंचुं ।

दृश्य द्वितीय : कुसुमोद्यान, वापी तट, संध्याकाल

माधव, मालती और अवलोकिता बैठे हैं। माधव बोलता है, कितना खूबसूरत प्रेमालापों के अनुरूप अर्धरात्रि का समय है। चांदनी छिटकी है, केतकी गंध उड़ रही है। वह मालती से प्रेमालिंगन कर प्रणय करता है।[१] मालती संकोच में डूबी रहती है। अवलोकिता उसे माधव के प्रति उसके तीव्र प्रेम की उत्प्रेक्षा देती है।

मालती अपनी सखी लवंगिका को याद करती है जो मकरन्द के साथ नन्दन के आवास में फंसी है।

वास्तव में नाटककार ने इस संवाद से नन्दन के आवास पर घटित वृत्त को उघाड़ना चाहा है।

माधव कहता है, मैंने अभी-अभी तो वहां का हाल जानने के लिये कलहंस को भेजा है। अवलोकिता जी! क्या बुद्धरक्षिता का प्रयत्न मदयन्तिका के लिये सुखकारी हो सकेगा ?

हां, जैसे आपको मालती-मिलन का हर्ष मिला वैसे ही यह भी होगा। लेकिन यह तो बताइए, जब व्याघ्र द्वारा घायल किये मकरन्द की मूर्च्छा दूर होने की शुभ बात मालती ने आपको बतायी तब तो आपने अपना हृदय ही उपहार के रूप में दे दिया। अब जो मदयन्तिका परिणय का शुभ समाचार दिया तो क्या उपहार देंगे ?

माधव ने कहा, हम दोनों के प्यार की गुंथी कहानी, यह माला जो मालती ने लवंगिका जानकर मुझे पहना दी थी, वही सबसे अच्छा पुरस्कार होगा।[१]

बोलो, मालती, अब तुम्हारी प्रेममाला दूसरे के हाथों पड़ जाएगी ?

१- मालती माधव ८.६

हां, हां, मेरी प्यारी सखी, यह प्रिय समाचार तुम ही सुनाना ।

इतने में किसी के आने का पदचाप हुआ । आह, कलहंस आ गया । माधव के मुंह से निकला । बधाई हो, आपके मित्र को मदयन्तिका मिल गई । माधव ने हर्ष के साथ मालती का आलिंगन किया और वकुलमाला उसके गले में डाल दी ।

अवलोकिता ने कामन्दकी की योजना के सफल होने पर प्रसन्नता प्रकट की ।

चलो, मेरी प्रिय सखी लवंगिका भी मुझे मिल गई ।

बस इस तरह एक ओर से कलहंस, बुद्धरक्षिता और मदयन्तिका प्रवेश करते हैं ।

आगंतुक स्त्रीपात्र एक साथ चीख पड़ते हैं, श्रीमान्, सहायता कीजिये । मार्ग के बीच में नगर रक्षकों ने मकरन्द को रोक लिया । तभी उन्होंने उसी समय मिले कलहंस के साथ हम लोगों को खिसका दिया ।

शोर से मुझे लगता है, कुछ और सिपाही भी वहां आ पहुंचे थे ।

माधव ने मदयन्तिका का मित्र की वधू के रूप में स्वागत किया और मकरन्द की शक्ति पर भरोसा रखकर सबको निश्चिन्त किया । फिर भी मैं अपने मित्र के पास जाता हूं । कलहंस भी साथ चल देता है ।

अवलोकिता आदि सभी माधव और मकरन्द की सुरक्षा के लिये चिन्तित होते हैं ।

मालती के निवेदन पर अवलोकिता और बुद्धरक्षिता कामन्दकी को यह समाचार देने चल देती हैं ।

मालती के कहने पर लवंगिका माधव के पीछे-पीछे चल देती है ।

अब उद्यान में केवल मालती और मदयन्तिका रह जाती हैं ।

लवंगिका के निकलते ही मालती कुछ कदम चलकर उसी ओर देखती रहती है। वह माधव के लिये बेचैन है। इसी बीच अघोर कापालिकी कपालकुण्डला आ धमकती है और मालती का अपहरण करती कहती है, अब मैं तुझे श्रीपर्वत पर ले जाकर तिल-तिल कर मारूंगी। बुला-बुला, अघोरघण्ट वधकर्ता अपने प्रियतम को।[1]

मदयन्तिका समझती है, मालती लवंगिका के पीछे आती हुई लता-वितान में ओझल हो गई है, वह मालती, मालती पुकारती है।

इसी बीच लवंगिका आ जाती है। वह बताती है, मकरन्द के साथ माधव भी नगर के सिपाहियों से भिड़ गए हैं। लेकिन, सखि मालती कहां है ?

वह तुम्हारे पीछे ही कुछ दूर चली थी और ओझल हो गई।

(पर्दा गिरता है)

दोनों मालती, मालती पुकारती हैं। एक ओर से कलहंस दौड़ा आता है और बताता है माधव और मकरन्द की भी सिपाहियों से खुली भिड़न्त हो रही है। महाराज ने स्वयं कोलाहल सुन अटारी से यह सब कुछ देखा है, लेकिन महाराज बड़े गुणग्राही हैं। उन्होंने विरोध शान्त कर दिया और भूरिवसु तथा नन्दन से कहा,आप दोनों सुन्दर और गुणी दामादों का अभिनन्दन करें। हमारे स्वामी माधव और मकरन्द भी इधर आ रहे हैं। चलूं, मैं यह भगवती को सूचित कर दूं।

उसके जाते ही माधव और मकरन्द प्रवेश करते हैं। माधव, मकरन्द के साहस की प्रशंसा करता है। साथ ही महाराज की उदारता की भी। वह मालती को यह शुभ समाचार देने को आतुर है, लेकिन वहां तो न मालती है, न कोई और।

शायद हमारे कलह संकट से उद्विग्न इधर-उधर हों। दोनों उद्यान में खो

१- मालती माधव ८.८

जाते हैं ।

उनके पदचाप सुनकर मालती मिल गई जानकर सम्बोधन करती है ।

माधव, मकरन्द पूछते हैं, कहाँ है, मालती । हमने तो पदचाप सुनकर समझा था, हमारी सखी मिल गई । माधव बहुत बेचैन हो उठा और पूछा आखिर हुआ क्या ?

मदयन्तिका ने कहा, महानुभाव अवलोकिता और बुद्धरक्षिता को यह कलह समाचार कामन्दकी के पास पहुँचा देने के लिये भेज देने के बाद मालती ने लवंगिका को आपके पीछे भेज दिया । पीछे-पीछे खुद उतावली होकर चल दी । फिर वह अन्धकार में ओझल हो गई । हम लतावितानों में उसे ही खोज रहे थे कि आप दोनों दिखाई दे गये ।

माधव, मालती !. मालती ! चीखने लगा । दोनों सखियां मदयन्तिका, लवंगिका भी रोने लगीं ।

मकरन्द ने कहा, कहीं ऐसा न हो भगवती के समीप चली गई हो । सम्भव है, सबने सोचा और चल दिये । मकरन्द ने कहा सुख भी सौदामिनी चमक की तरह कितना अस्थिर है ।[१]

अन्तिम संवाद में नाटककार ने बड़ी चतुराई से प्रथम अंक की पहली कड़ी में सूचित की गई सौदामिनी की स्फूर्ति (प्रयत्न से) से प्रियजन का मिलन गतिशील रहेगा, यह सूचित कर दिया है । घटना की अगली कड़ी में सौदामिनी आती है ।

नवम अंक : दृश्य प्रथम : पद्मावती नगरी का सिन्धुपारा संगम

आठवें के अन्तिम संवाद की `सौदामिनी` ध्वनि पकड़कर नवें के घटनाचक्र का अवतरण होता है । मंच पर सौदामिनी बोलती है । मैं सौदामिनी हूं ।

====---------

१- मालती माधव ८.१४

श्रीपर्वत से उड़कर पद्मावती आई हूं । मैंने सुना है, मालती के विरह से दुखी माधव, मित्र मकरन्द के साथ दुर्गम नदी पर्वत छान रहे हैं । मैं उनके पास ही जा रही हूं ।

अपनी उड़ान के बीच पद्मावती परिवेश को देख हर्षित हो उठती है । पद्मावती के पास पारा और सिन्धु नदियों के परिदृश्यों का वर्णन करती है । इसी तरह माधव को खोजती गोदावरी परिसर का वर्णन करती है । मधुमती और सिन्धु के संगम का वर्णन करती है । यह सुवर्ण बिंदु महादेव विराजमान है ।

चलो अब माधव-मकरन्द को ढूंढकर कार्य पूरा करूं ।

इस विष्कंभक कथांश ने रुकी कहानी को आगे बढ़ाया । सौदामिनी सर्व-सिद्धि वाली साधिका है ।

हम पहले अंक में ही जान चुके हैं । मालती और माधव का वृत्त सौदामिनी जान गई है । उसकी बातों से पता चलता है । उसे इनसे सहानुभूति है, यह भी बात खुल गई है ।

पर्दा उठते ही मकरन्द और माधव सामने आते हैं । मकरन्द मित्र के लिये विलखता है, माधव, मालती ! मालती ! पुकार रहा है । दोनों कभी इधर कभी उधर प्रकृति दृश्यों में खो जाते हैं । माधव मालती ! मालती ! करता मूर्च्छित हो जाता है ।

माधव का जीवन बचना कठिन है । यह सोचकर मकरन्द पहले ही पर्वत की चोटी से पाटला नदी में कूद कर प्राण देने को उद्यत होता है ।[१]

तभी सौदामिनी आ पहुंचती है । वह मकरन्द को गिरने से रोक लेती है ।

१- मालती माधव ६.४१

कौन हो मां ? मकरन्द ने पूछा । उत्तर मिला, मैं योगिनी हूं । मेरे पास मालती की निशानी है । वह बकुलमाला दिखाती है ।

माधव जीवित है, यह जानकर आशा बंधी । दोनों माधव की ओर बढ़े । वह भी होश में आ गया है । अंजलि फैलाकर मलय वायु से, 'मालती की कोई वस्तु मुझे दे दो' - याचना करता है ।[१]

तभी सौदामिनी बकुलमाला हाथों में छोड़ देती है ।

अरे ! प्रिया की बकुलमाला ! आश्चर्य में डूब गया ।

माधव ने आगे बढ़कर धीरज बंधाया और बताया, यह योगेश्वरी है जो यह माला लाई है ।

क्या प्रिया जीवित है ? माधव ने पूछा । हां, सौदामिनी ने कहा ।

देवी, यह क्या घटित हुआ ? सौदामिनी ने अघोरघण्ट का वृतान्त दोहराया । माधव जान गया, कपालकुण्डला का खेल है । सौदामिनी ने भी हां, किया । माधव, मालती के लिये तड़पने लगा ।

सौदामिनी ने कहा, बस करो । वह वध कर डालती, अगर मैं प्रतिरोध न करती ।

आपने बड़ी कृपा की । अच्छा, अब मैं माधव के कल्याण के लिये अपनी सिद्धि दिखाती हूं और माधव को उड़ाकर ले चली । मकरन्द आश्चर्य से देखता रह गया । आश्चर्य में डूबा मकरन्द वन प्रदेश में माधव-मकरन्द को खोजती कामन्दकी को यह अद्भुत वृतान्त देने चल दिया ।

१- मालती माधव ६.४४

दशम् अंक : दृश्य प्रथम : श्रीशैल से दूर वन प्रदेश

मालती को खोजती कामन्दकी मदयन्तिका और लवंगिका दीख पड़ती है। सब मालती, माधव, मकरन्द के लिये विलख रहे हैं। सभी एक साथ मरने को तत्पर होते हैं। मदयन्तिका, मकरन्द! मकरन्द! पुकारती है।

तभी नेपथ्य से बिजली जैसी चकाचौंध होती है और मकरन्द दीख पड़ता है। अरे मेरा मकरन्द! लेकिन यह सब क्या जादू है? कामन्दकी के मुंह से निकला, यह सब योगिश्वरी की महिमा है, मकरन्द ने कहा।[१]

(नेपथ्य से दारुण रोदन)

आवाज आती है, मालती के पिता बेटी के वियोग में अग्नि प्रवेश कर रहे हैं।

खुशी की कड़ी में यह और आपदा।

नेपथ्य से फिर आवाज

हा तात! मुझ निर्लज्ज के लिये अग्नि प्रवेश।

मालती की आवाज सुन कामन्दकी चकित हो जाती है।

तभी मालती को धीरज बंधाता माधव आ पहुंचता है।

मकरन्द पूछता है, मित्रवत योगिनी कहां है? मैं उन्हीं योगिनी के साथ श्रीपर्वत से क्षण भर में यहां आया हूं। वह अन्तर्ध्यान हो गई।[२]

पिता के लिये मूर्च्छित मालती को देख लोग मूर्च्छित हो जाते हैं। तभी जल बरसने से सबको होश आता है। मालती भी होश में आ जाती है।

तभी नेपथ्य से सूचना। भूरिवसु को मैंने अग्निपात से रोक दिया है।

१- मालती माधव १०.८

२- वही १०.१४

सब खुश हो जाते हैं। सबका मधुर मिलन होता है।

कामन्दकी पूछती है मेरे बेटो ! यह शुभ कार्य किसने किया ? इन आर्या योगिनी ने।

तभी सौदामिनी ने कामन्दकी को प्रणाम करते हुए प्रवेश किया। सौदामिनी को कामन्दकी ने गले लगाया। मालती ने कामन्दकी को बताया कि सौदामिनी ने कपाल कुण्डला से उसके प्राणों की रक्षा की और माधव के प्राण भी बचाये। कुटीर में रखा और बकुलमाला से, माधव मकरन्द को मेरी जानकारी दी।

कामन्दकी ने बताया, भगवती, नन्दन भी प्रसन्न है और महाराज भी। उन्होंने भूरिवसु के समक्ष एक पत्र लिखकर माधव को दिया है।

कामन्दकी पत्र पढ़ती है, आपका कल्याण। महाराज का आदेश है, हम तुम्हारे श्रेष्ठ गुणों से प्रसन्न हैं। इसलिए यह मदयन्तिका भी तुम्हारे प्रिय मित्र के लिये प्रदान कर दी है।

मालती भी प्रसन्न हो जाती है।

तभी अवलोकिता, बुद्धरक्षिता और कलहंस भी खुशी से झूमते आ पहुंचते हैं और बधाई देते हैं। कामन्दकी की सराहना होती है और भरतवाक्य के साथ नाटक पूर्ण होता है।

नाटक के अन्त में मंच पर घटना के सभी पात्र हैं - माधव, मकरन्द, मालती, मदयन्तिका, नन्दन, अवलोकिता, लवंगिका, बुद्धरक्षिता, कलहंस और सौदामिनी।

उत्तररामचरितम्

भवभूति के उत्तररामचरित की कथावस्तु कोशल के सूर्यवंशी नायक राम के जीवन को उत्तरकालीन घटनाओं से सम्बन्ध रखता है। नाटककार ने कथा का मूल-स्रोत वाल्मीकि रामायण से लिया है लेकिन अपनी कल्पना से उसे नाटकीय रूप देने के लिये भवभूति ने जहां आवश्यक समझा है, नई दिशा दी है। अंकानुसार नाटक की कथावस्तु का विन्यास निम्नवत है--

प्रथम अंक : दृश्य प्रथम : अयोध्या का राजभवन, राज्याभिषेक उत्सव

नाटक की कथावस्तु का आरम्भ इस प्रकार होता है। रंगमंच पर नान्दी गान पूरा होते ही सूत्रधार, नाटककार भवभूति का परिचय देता है--

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते।।

जिस नाटककार का देवी सरस्वती वशवर्तिनी की तरह होकर अनुसरण करती है, उस महान नाटककार भवभूति के 'उत्तररामचरित' का अभिनय आज किया जा रहा है।

सूत्रधार बोलता है। राम का रात-दिन अविच्छिन्न मंगलवाला यह राज्याभिषेक का समय है, फिर यह सुनसान क्यों? नट बताता है, आर्य, राम ने निमन्त्रित महर्षि आदि सब लोगों को अपने-अपने स्थान विदा कर दिया है। राम की माताएं कौशल्या आदि अरुन्धती जी को भी साथ लेकर यज्ञ के लिये अपने दामाद ऋष्यशृंग के आश्रम गई हुई हैं। उनके अनुरोध से पूर्ण गर्भ वाली सीता को छोड़कर वसिष्ठ आदि गुरुजन भी वहां गये हुए हैं।

स्नेह से अभिनन्दन करने के लिये आये हुए इतने दिन उत्सव में बिताकर जनक भी आज मिथिला चले गये हैं, इस कारण से दुःखी सीता को सान्त्वना देने

के लिये राम राजसभा से उठकर वासभवन में पहुँच गये हैं । तभी कंचुकी सूचना लाता है, महाराज ! ऋषिशृंग के आश्रम से अष्टावक्र ऋषि आये हैं । राम और सीता दोनों नमस्कार करते हैं और सभी की कुशल पूछते हैं । अष्टावक्र कहते हैं कि वसिष्ठ ने सीता को वीरपुत्र की माता बनो, ऐसा आशीर्वाद दिया है और आपको प्रजाओं के अनुरन्जन में तत्पर हों, ऐसा सन्देश दिया है ।

अष्टावक्र के जाने पर लक्ष्मण आता है । वह खेदग्रस्त सीता के मनोविनोद के लिये अर्जुन नामक चित्रकार द्वारा चित्रवीथिका में बनाई चित्रमाला देखने का प्रस्ताव करता है । राम के पूछने पर कि चित्रमाला कहाँ तक है ? लक्ष्मण कहता है कि भाभी की अग्निशुद्धि तक । राम रोकते हुए कहता है--

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।।

जन्म से ही पवित्र सीता की पवित्रता के लिये अग्नि आदि पदार्थों की क्या जरूरत है ? तीर्थजल और अग्नि दूसरे पदार्थों से शुद्धि लाभ नहीं करते हैं ।

परिवाद खिन्न सीता को राम ने सान्त्वना दी । सीता ने चित्र देखकर कहा, ये ऊपर सटकर खड़े ये कौन आयुपुत्र की स्तुति कर रहे हैं ? लक्ष्मण ने कहा- ये मंत्र युक्त जृम्भक अस्त्र हैं, इन्हें ताटका वध के अवसर पर विश्वामित्र जी ने राम को दिया था । सीता उन अस्त्रों को नमस्कार करती हैं, तभी राम ने कहा- ये सब तुम्हारी सन्तान को भी प्राप्त होंगे । तत्पश्चात् चित्रपट में विवाह आदि के दृश्य को देखकर सब प्रसन्न होते हैं ।

चित्रदर्शन से सीता के मन में स्वभावतः अतीत के वन-दृश्य जाग उठे । उसने राम को कहा- कितना अच्छा हो, एक बार पुनः मैं इन वन दृश्यों में विहार कर सकूं । राम ने सहर्ष अनुज लक्ष्मण को सीता की दोहद इच्छा पूरी करने का आदेश दिया ।

गर्भ भार से परिश्रान्ता सीता सो जाती है, तुरन्त ही नाटकीय ढंग से राम का गुप्तचर दुर्मुख उनके पास आता है, वह बताता है कि कोसल के नागरिकजन महाराज की प्रशंसा करते हैं। राम ने यह अनुभव करते हुए कि राजकर्मचारी तो राजा की प्रशंसा की बात ही कर सकता है, स्वयं उससे पूछा कि मेरे शासन के कुछ ऐसे दोष बताओ जो कोसलजन अनुभव करते हैं। दुर्मुख ने भरे और बोझिल मन से धीरे से बताया कि कोसल के कुछ लोग सीता के रावण आवास में रहने को लेकर तरह-तरह के आशंका भरे प्रश्नों से ग्रस्त हैं। वे लोग दूर देश में हुई अग्निपरीक्षा पर विश्वास नहीं कर पा रहे हैं।

राम अग्निशुद्धा प्रिय सीता के प्रवाद की बात जानकर तड़प उठता है। वह मूर्छित हो जाता है। होश आने पर दुःखी मन से सीता का सिर अपनी गोद से हटाकर धरती पर रखते हुए राम का शासक मन सीता को लेकर अन्दर ही अन्दर कुछ निर्णय कर लेता है। वह एक असहाय की भांति सीता की रक्षा का भार उसकी माता पृथ्वी को सौंप देता है। जागकर सीता राम को ढूंढती है। इसी बीच दुर्मुख सूचना देता है कि वन यात्रा के लिये रथ तैयार है। सीता रघुकुल देवताओं को नमस्कार कर वनयात्रा के लिये चल देती है।

यहां बहुत ही कलात्मक और प्रभावी विधि से प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अंक : दृश्य प्रथम : गोदावरी तट, पंचवटी प्रदेश

द्वितीय अंक के घटनाचक्र का आरम्भ वनदेवता वासन्ती और तापसी आत्रेयी के वार्तालाप के साथ होता है। वनदेवता वासन्ती अर्घ्य आदि से तापसी आत्रेयी का स्वागत सत्कार करती है। भगवती, आप कहां से आ रही हैं और दण्डकारण्य में घूमने का क्या प्रयोजन है? आत्रेयी बताती है--

सखि वासन्ती, हमने सुना है, यहां अगस्त्य आदि कितने ही प्रमुख वेदविधा के विद्वान ऋषि रहते हैं। अत: मैं उनसे विधा अध्ययन करने वाल्मीकि आश्रम से यहां आई हूं।[१]

तापसी आत्रेयी वनदेवता वासन्ती को बताती है, वहां हमारे पढ़ने में विघ्न आ गया है। वासन्ती के पुन: यह कहने पर कि वाल्मीकि स्वयं वेदान्त विद्या के शिरोमणि हैं, उनका आश्रम छोड़कर यहां आने का क्या कारण पड़ गया? आत्रेयी उत्तर करती है। वहां पढ़ने में बड़ा विघ्न आ पड़ा है। वाल्मीकि आश्रम में किसी देवता विशेष ने अत्यन्त आश्चर्यकारी अभी-अभी मां का दूध पीना छोड़, दो बच्चों को महर्षि के हाथों सौंपा है, उन दोनों ने न केवल महर्षि का मन मोह लिया है बल्कि पशु पक्षियों का भी अन्त:करण अपनी ओर खींच लिया है।

वासन्ती ने पूछा, क्या आप उन दोनों का नाम जानती हैं? आत्रेयी ने कहा, हां, उस देवता ने ही उन दोनों का नाम लव और कुश महर्षि को बताया था तथा उनका प्रभाव भी।

प्रभाव की बात सुनकर वनदेवता वासन्ती ने पूछा, कैसा प्रभाव? आत्रेयी ने कहा, उन दोनों के लिये जन्मसिद्ध जृम्भकास्त्र प्राप्त है। वासन्ती चौंकी और बोली, यह तो सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है। इसके आगे आत्रेयी ने बताया, महर्षि वाल्मीकि ने ही उनका धाय की तरह पालन पोषण किया है और उनका चूड़ाकर्म आदि करके उन्हें वेदों को छोड़कर सारी विधाएं पढ़ा दी हैं। उन दोनों मेधावी बच्चों के साथ हमारे जैसे लोगों की बुद्धि नहीं चल पाती हैं। वासन्ती ने कहा, बस यही विघ्न था। आत्रेयी ने बताया नहीं कुछ और भी बात थी। वासन्ती ने पूछा, वो क्या? आत्रेयी ने बताया, एक दिन महर्षि मध्याह्न में स्नान के लिये तमसा के तट पहुंचे। वहां साथ विचरण करते क्रौन्चपक्षी के जोड़े

१- उत्तर० २.३

से एक को व्याघ से मारा हुआ देखा, अचानक उनके मुख से छन्दोमयी वाणी फूट पड़ी । :-

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा: ।
यत्क्रौन्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम् ।।

ओह ! यह तो वेद मंत्रों के बाद कोई नया ही छन्द का आविष्कार हो गया, वासन्ती ने कहा । इसके आगे आत्रेयी बोली, तब भगवान ब्रह्मा ने ऋषिवर को कहा, तुमको वाग्देवता का प्रत्यक्ष हो गया है, तुम रामचरित का वर्णन करो । तभी से महर्षि ने अत्यन्त अद्भुत रामायण का प्रणयन कर डाला है ।

वासन्ती बोली, सारा संसार धन्य हो गया । आत्रेयी ने कहा, इसीलिए तो कहती हूं, महर्षि की व्यस्तता से अध्ययन में बड़ी बाधा उठ खड़ी हुई है । आत्रेयी ने उससे अनुरोध किया कि वह थक चुकी है और अब शीघ्र ही अगस्त्य आश्रम पहुंचना चाहती है । वासन्ती ने कहा, यह सामने पंचवटी है । इससे गुजरते हुए गोदावरी के किनारे-किनारे चले जाइये । आत्रेयी फूट-फूट कर रोने लगी और बोली, क्या सचमुच यह वही तपोवन है ? क्या यह पंचवटी है ? क्या यह गोदावरी नदी है ? क्या यह प्रस्रवण गिरि है ? क्या तुम सचमुच जनस्थान वनदेवता वासन्ती हो ? वासन्ती ने कहा, हां ! भगवती बिल्कुल यही बात है । आत्रेयी फिर करुणा से चीख उठी, हा वत्सेजानकी । तेरी कहानी से जुड़ा यह सारा संसार तुम्ह 'नाम शेष' को भी मेरी आंखों के सामने प्रस्तुत कर रहा है ।[१]

वासन्ती ने बेचैनी से पूछा, क्या हुआ ? सीता देवी को आत्रेयी ने दु:ख से कहा । महाविपद ही नहीं, लोकापवाद भी और कान में बता दिया ।

वासन्ती ने तड़पकर कहा, दुर्भाग्य का कैसा कठोर प्रहार । और ये कहते

१- उत्तर० २.६

हुए बेचैन पूछने लगी, तो फिर सीता को वन में छोड़ लक्ष्मण के लौट जाने के बाद क्या कुछ हुआ कोई जानकारी है, कुछ नहीं, आत्रेयी ने कहा। वासन्ती ने फिर आश्चर्य प्रकट किया कि आर्या अरुन्धती और वसिष्ठ से अनुशासित राजकुल में वृद्ध राजमाताओं के रहते हुए ये सब कैसे हो गया।

आत्रेयी ने बताया, सारे गुरुजन ऋष्यशृंग के यज्ञ में पहुंचे थे वो यज्ञ पूरा हुआ। ऋष्यशृंग ने विदाई कर दी। तब भगवती अरुन्धती ने कहा, मैं वधू सीता से रहित अयोध्या में नहीं जाऊंगी। राम माताओं का भी यही निश्चय रहा और वसिष्ठ का भी यही संकल्प बना और निश्चय किया कि हम वाल्मीकि आश्रम में जाकर रहेंगे। वासन्ती ने पुन: प्रश्न किया? श्रीमान् राजा राम का क्या हाल है? आत्रेयी ने उत्तर दिया, उस राजा ने अश्वमेध यज्ञ शुरू किया है। वासन्ती ने खेद से कहा धिक्कार है, परिणाय भी कर लिया? आत्रेयी बोली, राम, राम नहीं, हर्गिज नहीं। वासन्ती ने प्रश्न किया, फिर यज्ञ की सह-धर्मिणी कौन है? सीता की स्वर्ण प्रतिमा। वासन्ती ने आश्चर्य प्रकट किया, महान लोगों का हृदय भी कितना विचित्र है जो कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर होता है।[१]

आत्रेयी ने आगे बताया, अश्वमेध का अश्व छोड़ दिया गया है और उसके पीछे-पीछे लक्ष्मण का बेटा चन्द्रकेतु सैनिकों के साथ चल रहा है।

वासन्ती प्रसन्नता से उछल पड़ी, ओह! कुमार लक्ष्मण का पुत्र, इससे मुझे जीवन मिल गया, मुझे बहुत प्रसन्नता है। इसी बीच एक ब्राह्मण ने अपने मृतक पुत्र को राजद्वार पर डालकर छाती पीटना शुरू कर दिया कि इस राज्य में ब्राह्मणों की कोई रक्षा नहीं है और राम ने सोचा, यह सब राजा के दोष का ही परिणाम है। तभी आकाशवाणी हुई। शम्बूक नाम का शूद्र मुनि घोर

१- उत्तर० २.७

तप कर रहा है । हे राम ! उसका सिर काटकर ब्राह्मण पुत्र को जीवित करो । यह सुनकर कृपाणपाणि राम पुष्पक पर सवार हो दिशा-विदिशा घूम रहे हैं ।

वासन्ती ने चट से कहा, अरे ! शम्बूक नाम का धूम्रपापी मुनि उल्टे मुंह इसी जनस्थान में तप कर रहा है, तब तो रामभद्र पुन: इस वन को सुशोभित करेंगे । आत्रेयी बोली, बहन अब मैं चलती हूं । वासन्ती ने कहा, ठीक है, सूरज सिर पर चढ़ आया है, धूप तेज है, आप चलिए ।[१]

नाटककार भवभूति ने द्वितीय अंक के आरम्भ की कथावस्तु में वासन्ती और आत्रेयी के संवाद का अंश बड़ी नाटकीय चातुरी से संजोया है । इससे हमें बहुत-सी ऐसी घटनाओं का ज्ञान हो जाता है जो मंच पर नहीं आती हैं किन्तु कथावस्तु का हिस्सा हैं । यह सूचनाएं इस प्रकार हैं--

१- सीता लक्ष्मण के द्वारा वन में अकेली छोड़ दी गई है । इसके बाद उसका क्या हुआ, अभी पता नहीं है ।

२- वाल्मीकि आश्रम में लव कुश नाम के ऐसे दो बच्चे किसी देवता ने ला दिये हैं, जिन्हें जन्मसिद्ध जृम्भकास्त्र प्राप्त हैं । इससे दर्शक और असमंजस में आते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यह अस्त्र तो राम की सन्तान को ही मिल सकते हैं । यह जानकारी नाटककार ने आलेख्य दर्शन में दे दी है ।

३- राम के जीवनवृत्त को लेकर वाल्मीकि ने रामायण इतिहास काव्य लिखा है ।

४- यह भी सूचना है कि अरुन्धती वसिष्ठ और राजमाताएं यज्ञ पूरा कर सीता रहित अयोध्या नहीं लौटी हैं, वाल्मीकि आश्रम चली गई हैं । (नाटककार ने चतुराई से अयोध्या का सारा मंच वाल्मीकि आश्रम पहुंचा दिया है ।) यह भी

१- उत्तर० २.६

सूचना है कि राम ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ कर दिया है और सीता की स्वर्ण प्रतिमा को पत्नी बनाया है, यह सूचना भी आगे के घटनाचक्र के लिये है ।

५- यह भी सूचित कर दिया कि राम शम्बूक वध के बहाने दण्डकारण्य पहुंच रहा है । इस तरह जहां घटना चल रही है वहीं सारे नाटकीय पात्रों को धीरे-धीरे पहुंचने की सूचना दे दी गई है ।

अब कृपाणपाणि राम शम्बूक वध के लिये उद्यत सामने आता है । शम्बूक वध होता है और शम्बूक के कथन से राम को पता चलता है कि वह स्थल दण्डकावन है । जहां कभी सीता के साथ उसने निवास किया था । शम्बूक की बातचीत से राम को यह भी पता चलता है कि यही जनस्थान प्रदेश है । बस फिर क्या था राम सीता की स्मृति में खो जाता है । अन्त में राम शम्बूक को अगस्त्य आश्रम जाने को विदा करता है और स्वयं कहीं प्रस्रवण गिरि और कहीं गोदावरी के माध्यम से सीता की स्मृतियों में छटपटा जाता है । कभी पंचवटी याद आती है और कभी उससे जुड़ी कहानियां । बेचारा राम छटपटा कर रहा जाता है ।[1]

इसी बीच शम्बूक पुन: सामने आता है और राम को सूचित करता है कि महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा आपको याद कर रहे हैं । हमसे मिलकर बाद में अपने पुष्पक से शीघ्र ही अश्वमेध कार्य के लिये अयोध्या लौट सकते हैं ।

नाटककार ने करुणा में डूबे राम को पंचवटी से अगस्त्य आश्रम जाने का प्रसंग पैदा कर दिया है और बड़ी कुशलता से राम के प्रस्थान के साथ कथावस्तु की दूसरी कड़ी अर्थात् दूसरा अंक पूर्ण हो जाता है ।

१- उत्तर० २.२८

तृतीय अंक : दृश्य प्रथम : वही पंचवटी प्रदेश, गोदावरी तट

घटनाचक्र का दृश्य अब गोदावरी तट का अगस्त्य आश्रम प्रदेश है । यहां के चप्पे-चप्पे से राम और सीता की स्मृतियां जुड़ी हैं । तमसा-मुरला दो नदी पात्र वार्ता करते हुए प्रवेश करती हैं । तमसा मुरला से हड़बड़ाहट का कारण पूछती है । मुरला बताती है सखि तमसे ! भगवान अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने मुझे नदियों में श्रेष्ठ नदी गोदावरी को सन्देश देने के लिये भेजा है । लोपामुद्रा का कहना है, गोदावरी ! तुम जानती हो, सीता को छोड़ने के बाद से राम का शोक गम्भीर और असह्य हो गया है । राम की हृदय करुणा एक गहरे पुटपाक के समान है । इस कारण सीता की कष्ट प्राप्ति से उत्पन्न शोक से राम बहुत दुबले हो गये हैं । उनको देखकर फूल के समान कोमल मेरा हृदय कांप गया है । इसलिए भगवती गोदावरी ! आपको होशियार हो जाना चाहिए । गोदावरी, जब-जब रामभद्र सीता वियोग में मूर्छित हों, तब-तब तुम सावधानी से उनकी रक्षा करना ।[१] मुरले ! राम को होश में लाने का उपाय तो यहीं उपस्थित है, तमसा ने कहा । वह क्या ? मुरला ने पूछा । तमसा ने तुरन्त उत्तर दिया, सुनो, लक्ष्मण से वाल्मीकि के तपोवन में छोड़ी गई सीता ने प्रसव-वेदना से युक्त अपने को गंगा के प्रवाह में फेंक दिया । उन्होंने वहां पर दो बालकों को जन्म दिया । पृथ्वी और गंगा ने अनुग्रह कर सीता को पाताल में पहुंचाया । दूध छूटने के बाद सीता के दोनों पुत्रों को गंगा ने स्वयं महर्षि वाल्मीकि को सौंपा ।

मुरला ने विस्मय से कहा, ओह ! महान लोगों के जीवन की विपदाएं भी कितनी रहस्यभरी होती हैं ? गंगा और पृथ्वी जैसे पात्र उनकी सहायता करते हैं ।[२]

१- उत्तर० ३.२

२- वही ३.३

हमें ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे मामलों में हमारा नाटककार सजग मन से कुछ कहता है। हम यह नहीं भूल सकते कि यहां पग-पग पर अनबोली वस्तुओं को मानव पात्रों की तरह से प्रयोग में लाया जा रहा है। यही इस नाटक का रहस्यात्मक पक्ष है। इस ताने-बाने में मनुष्य और देव सृष्टि के पात्र घटनाक्रम में हिस्सेदारी करते हैं।

भवभूति की कथावस्तु का यह पक्ष दूसरे नाटककारों से बहुत भिन्न है।

तमसा ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि अभी-अभी तो शम्बूक वध के उद्देश्य से रामभद्र पुन: जनस्थान पहुंच रहे हैं। यह जानकर गंगा ने भी लोपामुद्रा की तरह से ही आशंका प्रकट की और वह स्वयं भी सीता समेत किसी लोकाचार के बहाने गोदावरी से मिलने आ गई हैं।

भगवती गंगा ने अच्छा सोचा, मुरला बोली। अयोध्या में रहते तो राजनीतिक व्यस्तता में किसी तरह मन बंट जाता था किन्तु अकेले पंचवटी प्रवेश करते ही महान अनर्थ हो सकता है। चिन्ता का विषय यह है कि सीता के द्वारा रामभद्र को सहारा कैसे मिले ? तमसा ने कहा, कुछ कठिन नहीं है, भगवती गंगा ने स्वयं सीता को आदेश दिया है, बेटी सीते। तेरे कुश और लव का बारहवां जन्मदिन है, इसलिए आज अपने कुलदेवता भगवान भास्कर की पुष्पों से अर्चना करो। मेरे आशीर्वाद से तुझे वनदेवता तक नहीं देख पायेंगे, मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? गंगा ने मुझको कहा है, तमसे ! वधू जानकी तुझे बड़ा प्यार करती है, इसलिए संकट के समय तू इसकी सहचरी रहना। मैं उनका आदेश पालन कर रही हूं। ठीक है, मैं यह सूचना भगवती लोपामुद्रा को पहुंचाती हूं ताकि वे राम के बारे में निश्चिन्त हो जायें। मुरला ने कहा।

मुरले ! वो देखो, गोदावरी जलाशय से निकलकर करुणा की साक्षात मूर्ति सीता वन तट की ओर आ रही है।[१]

१- उत्तर० ३.४

इस अंक में हमारे नाटककार ने आगे पीछे के घटनाचक्र को अपने कला शिल्प से बहुत ही निपुणता के साथ जोड़ा है। घटनाचक्र बहुत तेजी के साथ एक ऐसे दौर में पहुंच गया है जहां घटनामंच से दूर जा चुकी नायिका और नायक दोनों पुन: एक ही दृश्य मंच पर ला दिये गये हैं। पिछले अंक के घटनाचक्र में जो सीता ओफल थी अथवा कहना चाहिए कि सिर्फ दु:ख भरी ये कहानी थी। वह अब नाटककार की योजना के अनुसार किसी वनदेवता अथवा मनुष्य को दिखे अथवा न दिखे किन्तु भवभूति के दर्शकों की आंखों के सामने है।

नाटक की कथावस्तु के शिल्प दृष्टि से नायक और नायिका पात्र बहुत लम्बे अर्से तक एक दूसरे से अलग-अलग और ओफल नहीं किये जा सकते। कारण इसका यह है कि कथावस्तु का पूरा घटनाचक्र उन्हीं के व्यक्तित्वों और उन्हीं की क्रियाओं से जुड़कर चलता है।

भवभूति ने लक्ष्मण द्वारा वन में छोड़ी गई सीता को जिसकी कहानी का हमें आगे कुछ पता नहीं था, फिर हमारी आंखों के सामने ला दिया है।

`पुत्र-पुत्र` सूर्य अर्चना के लिये पुष्पचयन करती हुई सीता को दूर से आ रही यह आवाज सुनाई देती है। सीता चौंककर बोलती है, `लगता है मेरी प्रिय सखि वासन्ती पुकार रही है।` फिर एक बार दूर से वही आवाज उठती है। अरे-अरे सीता देवी ने अपने हाथ से सल्लकी के नये-नये पत्तों को खिलाकर जिस नन्हें से हस्ति-शावक को पाला था...... (वाक्य अधूरा रह जाता है)।

सीता इस अधूरे वाक्य को सुनते ही चौंकती है और बेचैन होकर चीख उठती है। अरे, उस मेरे बेटे का क्या हुआ ? आवाज फिर आगे बढ़ती है। वह अस्ति-शावक अपनी वधू के साथ जल विहार करता हुआ दूसरे उद्दण्ड हाथी ने आक्रमण करके दबा लिया है। सीता घबरा जाती है और घबराकर चीख उठती है। आर्य पुत्र! बचाओ, बचाओ, मेरे बेटे को बचाओ आर्यपुत्र!

अफसोस, पंचवटी को देखकर फिर वही पुराने परिचित सम्बोधन मेरे मुंह से निकल गये। यह कहकर सीता मूर्छित हो जाती है। तुरन्त तमसा उसे पकड़कर धीरज बंधाती है। कहीं दूर से पुन: एक और आवाज! विमानराज, रुको-रुको यहीं रुको।

आवाज सुनकर सीता भौंचक्की सी सुनती है। अरे आश्चर्य यह मेघचन्द्र स्वर तो मेरे आर्यपुत्र का जान पड़ता है। तमसा उसे बोलती है, पुत्री! कहीं दूर से आ रहे अस्पष्ट स्वर से ही तू मेघ-गर्जना से मयूरी की तरह चकित हो रही है। सीता ने कहा, भगवती, क्या कह रही हो? मैं शब्द पहचान कर कह रही हूं, यह आर्यपुत्र ही बोल रहे हैं। हां सुना तो है कि इक्ष्वाकुवंश के राजा शूद्रक को दण्ड देने के लिये दण्डकावन आये हैं, तमसा ने कहा। चलो सौभाग्य की बात है कि वह राजा आज भी अपना कर्त्तव्य पथ नहीं छोड़े है।

दूर से फिर वही आवाज ओह! ये सामने गुफा कन्दरा और झरने वाले गोदावरी परिसर के वे ही गिरि तट हैं, जहां कभी वृक्ष और मृग सभी मेरे बन्धु होते थे और जहां कभी मैं अपनी प्रिया जानकी के साथ रहा था। सीता सुनते ही मूर्छित हो जाती है। होश में आकर कहती है, ओह! प्रभात् कालीन चन्द्रमण्डल से फीके रंग वाले दुर्बल शरीर मेरे आर्यपुत्र आज सिर्फ अपनी आकृति चेष्टाओं से ही पहचाने जा सकते हैं।

मूर्छित होती सीता को तमसा धीरज बंधाती है। फिर वही आवाज ओह! इस पंचवटी को देख हृदय में छिपी दु:खाग्नि के दहक उठने से पहले मोह का धुआं मेरे हृदय में छा रहा है। हा सीते! हा जानकी!

गुरुजन ने बिल्कुल ठीक ही सोचा था तमसा ने मन ही मन कहा। दूर से फिर वही आवाज हा! दण्डकारण्य सहचरी सीते! हाय, मुझ अभागन को लेकर आर्यपुत्र मूर्छित हो गये हैं। भगवती तमसे। आर्यपुत्र की रक्षा करो।

कल्याणि ! तुम ही इस जगत्पति की संजीवनी हो, तुम्हारे कोमल हाथ के स्पर्श में ही इसका जीवन निहित है । अच्छा, जो हो वह सही मैं भगवती का अदेश पालन करती हूं, कहकर सीता राम का हाथ थामती हैं ।

सीता के हाथ का स्पर्श पाकर राम उच्छ्वास लेता है । सीता को धैर्य मिलता है क्योंकि राम का जीवन लौट आया है ।

राम छायासीता का स्पर्श पाकर पुरानी स्मृतियों को दोहराता है जो सीता को सुखद लगती है । हाथ के स्पर्श के प्रति राम की आतुरता देखकर सीता सोचती है, कहीं राम मुझे देखकर कुपित न हो जायें ।

तमसा बोलती है, गंगा के प्रभाव से यह सम्भव नहीं है, सीते ! तुम्हें कोई नहीं देख सकता । राम फिर चीखता है, हा प्रिये जानकी । किन्तु आर्यपुत्र इस सम्बोधन से हमारी घटना मेल नहीं खाती भगवती तमसे ! हृदय भी कैसा विचित्र है ? मैं वज्र की होकर इस दशा में पड़े आर्यपुत्र को ताना दे रही हूं ।

इसी बीच दूर से एक आवाज - हाय रे, सीता देवी के पाले हाथी के बच्चों को मार डाला । तभी वासन्ती आ पहुंचती है । वह कहती है, महाराज ! शीघ्रता करिए । राम आश्चर्य से वासन्ती को देखते हैं । महाराज, जल्दी चलिए, सीता देवी के पुत्र की रक्षा करिये ।

राम वहां पहुंचते ही देखता है कि सीता के पाले हस्तिशावक ने बलवान हाथी को पछाड़ दिया है । सीता भी प्रसन्न होती है । राम बोलता है वासन्ती सीता का यह बेटा बहुत सयाना हो गया है । देखो, इसने सुगन्धित जल से अपनी प्रिया को स्नान कराकर सूंड से कमल की छतरी उसके ऊपर तान ली है ।

सीता को यह देखकर कुश और लव की याद आ जाती है । बच्चों को लेकर उसके और तमसा के बीच कुछ करुण संवाद होते हैं ।

वासन्ती राम को सीता की याद दिलाने वाले कुछ और दृश्य दिखा बैठती है। वह कहती है, श्रीमान् जी, यहां बैठिये। यह कभी आपका आश्रम था, जहां मृगछौने कभी सीता का साथ नहीं छोड़ते थे। सीता सोचती है, वासन्ती आर्यपुत्र को क्यों कष्ट दे रही है? वह शोक में डूब जाती है और सोचती है कि क्या किसी ने सोचा था कि आर्यपुत्र मेरे बिना और मैं उनके बिना कभी रहूंगी।

वासन्ती और राम की वार्ता चलती है। वासन्ती पूछती है, कहिये महाराज कुमार लक्ष्मण तो कुशल से हैं? राम अनसुनी करता है। वासन्ती फिर पूछती है, महाराज, मैं आपसे कुमार लक्ष्मण का कुशल पूछ रही हूं। राम सोचता है, वासन्ती का महाराज सम्बोधन और सिर्फ लक्ष्मण के विषय में प्रश्न। लगता है वासन्ती को सीता वृतान्त विदित हो गया है। हां, उच्छ्वास भरते हुए राम ने कहा। `कुमार लक्ष्मण कुशल से हैं। बड़े वज्र हृदय हो महाराज, वासन्ती फूट पड़ी। तुम मेरा जीवन, तुम दूसरा हृदय, तुम नेत्र ज्योति आदि-आदि सैंकड़ों प्रिय बातों से जिसे मुग्ध किया, उसी भोली भाली को ...... इसके आगे कहने से क्या लाभ है?

`हां वासन्ती संसार नहीं सह सका!` कहकर राम फूट कर रो पड़ा।

मेरे देशवासियों, तुम्हें राजमहिषी सीता का भवन में रहना सहन नहीं हुआ, तिनके की तरह मैंने उसे वन में ठुकरा दिया और अफसोस नहीं किया, मुझ बेसहारा को चिरपरिचित दृश्य द्रवित कर रहे हैं; तुम प्रसन्न रहो। राम रो रहा है।

वासन्ती धैर्य बंधाती है। महाराज, थोड़ा धैर्य पकड़ें। कैसा धैर्य? सीता शून्य संसार में रहते बारह वर्ष बीत गये किन्तु राम मर तो नहीं गया।

आर्यपुत्र के यह कथन मुझे सुख और करुणा दोनों दे रहे हैं, सीता ने कहा । वासन्ती ने सोचा राम बहुत गहरे डूब गया है, इसका ध्यान हटाना चाहिए । किन्तु राम परिदृश्यों में खो जाता है और बार-बार मूर्छित होता है ।

सीता पुन: अपने पाणि स्पर्श से जीवन लौटाती है । राम इधर-उधर सीता को फांकता है किन्तु सब शून्य ।

वासन्ती ने राम का ध्यान उत्तेजित करने वाले दृश्य की ओर बढ़ाया और जटायु शिखर का संकेत किया । राम फिर व्याकुल हुआ । तमसा ने कहा, सीते ! अब जन्म दिन की पूजा का समय हो गया है, आओ गंगा मां के पास चलें ।

इधर वासन्ती राम को उसके यज्ञ कार्य की याद दिलाती है । सीता और तमसा एक ओर, राम की विमान यात्रा दूसरी ओर, बस इसके साथ ही इस अंक का घटनाचक्र पूरा हो जाता है ।

नाटक की कथावस्तु पर तमसा की प्रतिक्रिया ध्यान देने योग्य है, अहो संविधानकम् ।

चतुर्थ अंक : दृश्य प्रथम : वाल्मीकि आश्रम

सौधातकि और दण्डायन नाम के दो ऋषि शिष्य परस्पर वार्ता करते सामने आते हैं । उनकी बातचीत से रहस्य खुलता है कि राजमाताएं और अरुन्धती, वसिष्ठ के नेतृत्व में वाल्मीकि आश्रम पहुंच गई हैं । इन दोनों की बात से हम यह भी जान लेते हैं कि इस आश्रम में राजर्षि जनक भी पहुंच गये हैं । यह जानकारी भी मिल जाती है कि जनक सीता के दु:ख से दु:खी होकर वानप्रस्थ ले चुके हैं और वाल्मीकि से मिलने आये हैं । वसिष्ठ के आदेश से अरुन्धती जनक की अगवानी को चल देती है । ऋषि शिष्य की बातचीत से पता चलता है कि वाल्मीकि और वसिष्ठ के साथ सत्संग कर जनक आश्रम से बाहर वृक्ष के नीचे आसन जमाये बैठे हैं ।

बस, एक बार फिर कथानक की मुख्यधारा आगे बढ़ना शुरू होती है। जनक के स्वगत संवादों से उनके हृदय में दहक रहा पुत्री का दर्द दबाये नहीं दब रहा है। इसी बीच दूर से सूचना मिलती है, दो पूजनीय नारी जनक की ओर आ रही हैं, उन्हें देखते ही जनक का दुःख फिर फूट पड़ता है।

इधर अरुन्धती और कौशल्या उलझन में पड़ी हैं। उन्हें जनक के सामने आने से बड़ा मानसिक कष्ट हो रहा है। जनक स्वयं आगे बढ़कर अरुन्धती को प्रणाम करता है।

कंचुकी दुर्भाग्यपूर्ण सीता विवासन की स्थितियां बताकर जनक को शांत करता है। अरुन्धती और कौशल्या तरह-तरह से दुःख प्रकट करती हैं। जनक का क्रोध शान्त हो जाता है। वृद्ध सम्बन्धियों के कारुणिक संवादों से घटना आगे चलती है। अरुन्धती, कौशल्या को समझाती हैं कि अपने कुलगुरु के कथन पर श्रद्धा रखो जो दुर्घटित होना था, हो गया। इसका अन्त सुखदायी होगा।

इसी बीच कुछ खिलाड़ी बच्चों का कोलाहल सुनाई देता है। एक बच्चे को देखकर कौशल्या कहती हैं, ' मेरे राम से मिलता-जुलता यह सुन्दर शिशु कौन है ? जो मेरे मन को खींच रहा है। अरुन्धती मन ही मन सोचती हैं, एकान्त में गंगा ने मेरे कान में कहा तो था किन्तु यह मुझे भी नहीं पता कि कुश और लव में ये कौन-सा है। कंचुकी और जनक बालक की क्षात्रियोचित वेशभूषा से उसे क्षात्रिय कुमार निश्चित करते हैं। सभी वृद्धजन उसके लक्षणों से आश्चर्यचकित हैं।

कंचुकी को उस बच्चे के पास बुलाने भेजा जाता है। बालक आ जाता है और अपरिचित वृद्धों को क्रमशः प्रणाम करता है। अरुन्धती प्यार से गोद में उठा लेती है। कौशल्या उसकी आकृति में कभी राम और कभी सीता की पहचान खोजती है। कौशल्या बच्चे से उसकी मां को पूछती हैं। तुम अपने पिता को जानते हो ? बच्चे ने उत्तर दिया, नहीं। ये संवाद बड़े भावुक हैं। तुम किसके हो ?

उत्तर मिला, वाल्मीकि के । आश्चर्य से कौशल्या ने पूछा, अरे बेटे । कहने की बात कहो । मुझे इतना ही मालूम है, बच्चे ने कहा ।

कहीं दूर से सैनिकों का शोर । अरुन्धती और जनक, लक्ष्मण कुमार चन्द्रकेतु का स्वर पहचानते हैं । वनवासी बालक वृद्धजन से चन्द्रकेतु का परिचय पूछता है । जनक से पता चलता है कि वह लक्ष्मण कुमार है । बालक से पता चलता है कि उसे राम के जीवन और उनके परिवार का रामायण के माध्यम से बहुत कुछ ज्ञान है किन्तु उनका यह ज्ञान केवल दूसरी पीढ़ी तक ही सीमित है । आगे की रामकथा का रामायण भाग उसके ज्ञान में नहीं है ।

हमारा नाटककार बड़ी चतुराई से यह भी सूचित कर देता है कि राम कथा का कोई अत्यन्त भाव-स्पर्शी अन्त वाल्मीकि ने नाटक के रूप में बदल दिया है, जिसका समय आने पर अभिनय होगा । इसी बीच कौशल्या प्रश्न करती है, बच्चे क्या तुम्हारा कोई भाई है ? हां, आर्य कुश मेरे भ्राता हैं । ` पता चलता है कि लव-कुश दोनों युगल बच्चे हैं ।

जनक प्रश्न माला आगे बढ़ाते हैं और जानना चाहते हैं कि वाल्मीकि की कथा का अन्त किस बिन्दु पर है । उत्तर मिलता है, राम द्वारा सीता के निष्कासन और लक्ष्मण द्वारा उसे एकाकी वन में छोड़ने तक । बालक लव वृद्धजनों का परिचय प्राप्त करता है ।

इसी बीच घबराते हुए कुछ ऋषि कुमार लव के पास आते हैं और बताते हैं कि अश्व नाम का जन्तु हमारे आश्रम में आ पहुंचा है, चलो, देखो और उसे खींच ले जाते हैं । सब वृद्ध जन वाल्मीकि की ओर प्रस्थान करते हैं । अपनी शिक्षा के ज्ञान से लव जान लेता है कि यह अश्व, अश्वमेध यज्ञ का है । अश्व के रक्षक सैनिक भी आ पहुंचते हैं और यज्ञ के अश्व को लव के अधिकार में पाकर कुछ क्रोध भरी बातें करते हैं । अन्य बालक भाग जाते हैं । लव अकेला ही युद्ध में मोर्चा लेने को तैयार हो जाता है । इसी बिन्दु पर हमारे नाटक का घटनाचक्र चतुर्थ अंक

पूरा कर लेता है ।

१- चतुर्थ अंक का वस्तुविधान कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है । प्रथम तो अयोध्या का वह गुरुजन समाज जो नाटककार ने योजनाबद्ध तरीके से पटल से हटा दिया था, बारह वर्ष बाद पुन: पटल पर ला दिया है ।

२- जनक जो नाटक की नायिका का पिता है वह भी स्वभावत: पटल पर ला दिया गया है ।

३- वाल्मीकि आश्रम के दो मेधावी बच्चे जो द्वितीय अंक से ही रहस्य बने हुए हैं और जिनके बारे में प्रेक्षक तो जान चुके हैं कि सीता के लव और कुश दो पुत्र हैं, किन्तु पूरा कोसल देश इन्हें नहीं जानता और वे दोनों अपने माता पिता तक को नहीं जानते । आमने-सामने आ जाने पर भी सभी आपस में अनजाने हैं ।

नाटककार की दृष्टि से कहा जाये तो वाल्मीकि के उन शब्दों में कहना होगा जो कंचुकी ने जनक और अरुन्धती आदि को सूचित किये हैं । भगवान वाल्मीकि राह: ज्ञातव्यं एतद अवसरे भवद्भि: इति समय आने पर आप सब जान लेंगे ।

पंचम अंक : दृश्य प्रथम : वाल्मीकि का तपोवन प्रदेश

इस अंक की कथावस्तु की भूमिका चतुर्थ अंक के अन्त में ही सूचित हो चुकी है । हम जान चुके हैं कि राम के अश्वमेध का रक्षक चन्द्रकेतु और उसका अश्व वाल्मीकि आश्रम पहुंच गया है । साथ ही यह भी कि अश्वमेध की वीर घोषणा से लव ने प्रतिरोध करने का एक क्षात्रियोचित निश्चय कर लिया है ।

इस अंक की कथावस्तु का दृश्य परिवर्तन नहीं है, वाल्मीकि आश्रम ही है । सेना नायक चन्द्रकेतु अश्व रक्षा को स्वयं आ पहुंचा है । वह और उसका

सारथि सुमन्त्र साहसी और पराक्रमी लव को देखकर मुग्ध होते हैं। चन्द्रकेतु लव को ललकारता है और अश्व से दूर रहने को कहता है। युद्ध का शोर शुरू होता है। लव चन्द्रकेतु से मोर्चा लेने के लिये जृम्भकास्त्र का प्रयोग कर देता है। एक बार पुन: लव के राम की सन्तान होने का विचार सामने उठता है, किन्तु निश्चय कुछ नहीं है। सुमन्त्र सोचता है कि कृशास्व से कौशिक और कौशिक से जृम्भक अस्त्र राम को मिले थे। राम से केवल यह उनकी सन्तान को मिल सकते हैं।[1] वाल्मीकि से इन अस्त्रों के मिलने की कोई सम्भावना नहीं है, किन्तु चन्द्रकेतु का यह कथन कि और भी कितने सारे विज्ञानी मंत्र दृष्टा हैं, क्या कहा जा सकता है? फिर असमंजस पैदा कर देता है।

नाटक के पात्र एक दूसरे में अपनों को निहारते हैं पर सब कुछ सन्देह के जाल में।

अन्त में लव और चन्द्रकेतु के उत्तेजक वाद-संवाद तथा संग्राम का आरम्भ बस, इतना ही इस अंक की कथावस्तु है।

कथावस्तु का यह अंश भवभूति ने पुन: नाटकीय ढंग से अपनाया है, क्योंकि इस युद्ध की विभीषिका को रोकने के बहाने राम सहज ही वाल्मीकि आश्रम ला दिये जाते हैं।

षष्ठ अंक : दृश्य प्रथम : वाल्मीकि आश्रम प्रांत, लवकुश का संग्राम क्षेत्र

छठे अंक के आरम्भ का बीज पंचम अंक के अन्त में बोया जा चुका है। नाटककार ने विद्याधर और विद्याधरी के वार्तालाप से यह सूचित कर दिया है कि दोनों सूर्यकुल के कुमार हैं। दोनों के बीच घोर युद्ध का वर्णन आरम्भ होता है।

१- उत्तर० ५.१५

अन्तत: जब घोर प्रलय का दृश्य सामने आता है तो विद्याधर के संवाद से सूचना मिलती है कि राम शम्बूक-वध से लौटकर युद्ध भूमि में पुष्पक से उतर रहे हैं और शान्त होने का आदेश देते हैं। बस इस विष्कंभक योजना से नाटक का नायक राम हमारे सामने आ जाता है। राम चन्द्रकेतु को हृदय से लगाते हैं और लव के व्यक्तित्व सौन्दर्य में खो जाते हैं। लव भी राम के व्यक्तित्व से अभिभूत होता है। राम का मन बार-बार लव की ओर खिंचता है। लव, चन्द्रकेतु से राम का परिचय प्राप्त करता है किन्तु राम के लिये लव अपरिचित है। चन्द्रकेतु, राम को सूचित करता है कि लव ने जृम्भकास्त्र से उसकी सेना को सुला दिया है। राम लव से जृम्भक अस्त्र उपसम्हित करने को कहते हैं। वैसा ही होता है। राम स्वयं सन्देह में पड़ जाते हैं कि लव को ये अस्त्र कैसे प्राप्त हो गये ? इसी बीच दूर से बड़ा भाई कुश आता दिखाई देता है। राम के कहने से लव उसे बुला लेता है। कुश भी रघुवंशियों के पराक्रम को ललकारता आता है। आते ही लव से उग्र शैली में पूछता है, `ये क्या युद्ध-युद्ध का शोर है ? लव बताता है, कुछ नहीं हमारे सामने रघुकुल के नायक बैठे हैं। कुश प्रणाम करता है। राम दाण-प्रतिदाण दोनों भाइयों की ओर खिंचते हैं।

अत्यधिक मानसिक द्वन्द्व का घटनाक्रम है राम के लिये। पुरानी सब बातों की संगति से राम को लगता है कि दोनों कुमार सीता के ही तो नहीं हैं ? राम के इस सन्देह की जड़ें इन स्मृतियों के गर्भ में छिपी हैं। राम सोचता है यही वो वाल्मीकि वन है जहां सीता को छोड़ दिया गया था, उसी कालावधि से मेल खाती इन दोनों की उम्र है और सीता से मिलती-जुलती ही इन दोनों की आकृति तथा हावभाव हैं। इन्हें जृम्भक अस्त्र भी स्वत: प्राप्त हैं। मुझे याद है, चित्रदर्शन के दाण। मैंने सीता की संतान के लिये इनकी अनुमति प्रदान कर दी थी। यह अस्त्र बिना परम्परा के कभी नहीं मिलते। यह दोनों बच्चे जुड़वां हैं, ये भी बात मेल खाती है, क्योंकि सीता के कुछ ऐसे ही लदाण थे।

नाटककार का यह वस्तु-विधान चातुर्य है कि अपनी वस्तु-योजना की सारी कड़ियां एक ही संवाद में गिना डाली और घटनाचक्र को असाधारण रूप से असमंजस और तनाव की स्थिति में ला खड़ा किया है । इसी सारी उधेड़बुन में न कुछ राम को पूछे बनता है और न कहे बनता है, आंसू और आंसू ।[१]

राम की यह दशा देखकर दोनों बच्चे लव और कुश चकित रह जाते हैं । विधि का वज्रपात । दोनों ही सीता-परित्याग तक की रामायण कथा जानते हैं ।

कथा का नायक राम उनके सामने हैं और उन्हें जन्म देने वाली सीता उनके लिये केवल एक व्यथा भरी कथा है और कुछ नहीं, अर्थात् सारी घटना के बारे में दोनों किशोर एकदम तटस्थ हैं तभी तो राम को रोता देख कुश कहता है, प्रिय लव सीता देवी के बिना कौन सा वह दु:ख है, जो राम नहीं भोग रहे ।

प्रिया के नष्ट होते ही सारा जगत शून्य वन हो जाता है । कहां इन दोनों का वह स्नेह और कहां कभी अन्त न होने वाला वियोग ।[२] बोलो, क्या तुम रामायण का इतिवृत्त नहीं जानते ।

दोनों किशोरों का राम के साथ यह तटस्थ आलाप नाटकीयतापूर्ण घटनाचक्र की पराकाष्ठा है और यही वस्तु विधान की असाधारण सफलता है ।

राम ने सोचा मन के सन्देहों को बच्चों के मुंह से राम कथा सुन कुछ दूर करें । बस उन्होंने बच्चों से कुछ अंश प्रस्तुत करने को कहा । बाल-हृदय किशोरों ने राम-सीता के स्नेह से सिंचित दो श्लोक प्रस्तुत कर दिये और राम का शोकनद फूट पड़ा ।

१- उत्तर० ६.२६

२- वही ६.३०

ओह ! लव ने शोकधारा को अनदेखा कर चित्रकूट पथ पर मन्दाकिनी स्नान के क्षण सीता को सम्बोधित कर राम का यह श्लोक सुना डाला, जिसका भाव है - सीते ! यह शिला पर मैंने तुम्हारे लिये ही बिछाया है । देखो, प्रिये ! चारों ओर से इसके ऊपर केशर फूल बरसा रहा है ।[1] बच्चों के भोलेपन पर राम की करुणा और बढ़ गई । बस तभी वाल्मीकि आश्रम की ओर से आवाज-- वसिष्ठ, वाल्मीकि दशरथ की रानियां और जनक, अरुन्धती के साथ बच्चों का युद्ध सुनकर बूढ़े शरीरों को ढोते जैसे-तैसे चले आ रहे हैं ।[2] राम ने सुना और सोचा, मैं दोषी किस मुंह से देखा पाऊंगा गुरुजनों को । दूर से फिर आवाज, अस्थि-पंजर घट रह गये राम को निहार राजमातायें मूर्छित हो रही हैं ।[3]

इधर राम की वेदना ! जिसने जनक वंश, रघुवंश की एकमात्र श्री को नष्ट कर दिया । उस अकरुण अपराधी के लिये आप लोगों का दुःखी होना व्यर्थ है । करुणा से भरा राम, कुश-लव के साथ उधर ही चल देता है । बस यहीं इस अंक की कथावस्तु पूरी होती है ।

हमने देखा कि इस बिन्दु तक आते-आते भवभूति की कथावस्तु अब केवल उस बिन्दु की ओर झुकने की प्रतीक्षा कर रही है, जहां पहुंच कर सन्देहों के पर्दे में छिपे सारे रहस्य खुलकर सामने आ जायेंगे । जहां निर्दोष विजयी होगा, अनुचित राजदण्ड को पछताना होगा, लोकमत को न्याय के आगे सिर झुकाना होगा और लोकसत्ता की स्वीकृति से एक राजसत्ता अपना दण्ड विधान वापस लेगी ।

सप्तम अंक : दृश्य प्रथम : अयोध्या का सरयू तट : राम कथा का नाट्य मंच

सातवें अंक का वस्तु-विधान एक प्रकार से नाटक के अन्दर एक अन्य नाटक है । हम यह देख चुके हैं कि पिछले अंक के घटनाचक्र तक नायक राम नायिका सीता और फिर सारा रघुवंश तथा जनक सभी वाल्मीकि आश्रम के पात्र बन गये हैं । अब नये नाटक की दिशा एक प्रकार से वाल्मीकि के हाथ में है । वाल्मीकि ने

१- उत्तर० ६.३६
२- वही ६.३८
३- वही ६.४१

आज्ञा प्रसारित कर दी है कि सरयू तट के प्रेक्षागृह में उनके द्वारा प्रणीत नाटक का अभिनय होगा । लक्ष्मण ने प्रेक्षागृह तैयार कराया है । वहां नायक राम भी वाल्मीकि के आदेश से पहुंच गये । लव, कुश, चन्द्रकेतु आदि अपने-अपने स्थान पर बैठ गये । राजाज्ञा प्रसारित और नाटक के आरम्भ घोषणा । वाल्मीकि ने जनता के सभी वर्गों और सभी चराचर शक्तियों को एक जगह इकट्ठा कर दिया है, इस अभिनय को देखने के लिये ।

नाटक आरम्भ होते ही दूर से एक आवाज, हा आर्य पुत्र ! हा कुमार लक्ष्मण ! मुझ असहाय गर्भिणी को वन्यपशु खा लेना चाहते हैं, ओह ! मैं अभागिन स्वयं को गंगा में फेंकती हूं । बस सीता का गंगा में प्रपात राम के मन में आकुलता और घबराहट लक्ष्मण बोलता है आर्य ये नाटक है । राम की करुणा का प्रवाह बढ़ता है । तब गोद में एक-एक शिशु लिये गंगा और पृथ्वी सामने आती है तथा उनके साथ में सीता । यह दृश्य देख, राम निराशा में डूब जाते हैं । गंगा और पृथ्वी, सीता को बधाई देती हैं, उसने दो पुत्रों को जन्म दिया है ।

इधर लक्ष्मण राम को बधाई देता है । होश में आकर सीता पूछती है, आप दोनों देवी कौन हैं ? पृथ्वी बताती है यह तुम्हारी कुल देवता गंगा है । गंगा बताती है यह तुम्हारी मां पृथ्वी है ।

सीता की करुणा दशा देख पृथ्वी व्यथित हो उठती है और गंगा को बोलती है देवी तुम्हारे बेटे राम ने यह अच्छा नहीं किया । उसने जो पाणिग्रहण किया उसका कोई सम्मान नहीं, मेरा कोई सम्मान नहीं, जनक का कोई ध्यान नहीं, अग्नि भी कोई प्रमाण नहीं, सीता के चरित्र का कोई मूल्य नहीं, यहां तक कि अपनी सन्तान के स्नेह का भी कोई मूल्य नहीं समझा ।[१] गंगा कहती है, पृथ्वी

१- उत्तर० ७.५

तुम सब समझती हो, जिस कारण यह दारुण घटनाचक्र हुआ है। तथापि मैं क्षमा चाहती हूं। सीता दु:ख के आवेग में विलीन हो जाना चाहती है, यह दृश्य देखकर राम टूट जाता है, इसी बीच दूर से कलकल सुनाई देता है, जृम्भकास्त्र उपस्थित हो जाते हैं और सीता को बोलते हैं, देवि! राम के पूर्व अनुमति के अनुसार हम तुम्हारे बेटों की सेवा में आ गये हैं।[१] फिर भी सीता सोच में डूबती है, कौन मेरे बच्चों के क्षात्रियोचित संस्कार करेगा? दृश्य देखकर राम व्यथित होता है, ओह! वसिष्ठ के शिष्यों की वंश लक्ष्मी सीता! आज अपने बेटों के संस्कार कर्ता को तरस रही है।[२] पुत्रि यह दायित्व महर्षि वाल्मीकि निभायेंगे राम और लक्ष्मण को इससे सन्तोष मिलता है।

शेष अवधि के लिये सीता पृथ्वी के गर्भ में समा जाती है। राम और लक्ष्मण नाटक के कारुणिक दृश्य से व्यथित हो जाते हैं और बोलते हैं महर्षि वाल्मीकि बहुत हो चुका, अब हमें बचाइये। बस आतोद्य बन्द हों, वाद्य बन्द हो घोषणा हुई। नाटक रुका। वाल्मीकि के आदेश से गंगा और पृथ्वी की गोद से सीता उभरती है और अरुन्धती को सौंप दी जाती है। राम करुणा में चेतना खो बैठता है। अरुन्धती की आज्ञा से सीता राम को चेतना में लाती है।

इधर अरुन्धती मंच से घोषणा करती है, कोशल-पौर जानपदों। यह देखा, पृथ्वी और गंगा के द्वारा पोषित की गई सीता मुझे सौंपी गई है। इसके पुण्य चरित्र का पवित्र अग्नि ने पहले ही सत्यापन कर दिया है। सभी ऋषि-महर्षि इसकी प्रशंसा कर रहे हैं। बोलो तुम्हारा अब क्या अभिमत है?

अरुन्धती की इस घोषणा के साथ कोशल के सभी पौर जानपद सीता के चरणों में आनत हो जाते हैं।

इधर वाल्मीकि लव और कुश को राम के लिये सौंप देते हैं। बस यही आदि से अन्त तक पग-पग पर एक घनीभूत व्यथा भरा नाटकीय वस्तु-विधान अन्ततः

१- उत्तर० ७.१०
२- वही ७.१३

अध्याय - 3

मालती-माधवम् वस्तुविधान

१. नाट्य शास्त्रीय दृष्टि

2. रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य

३

मालती माधवम् : वस्तु-विधान

भवभूति की तीन अमर नाट्यकृतियों में कालक्रम की दृष्टि से कौनसी नाटक रचना पहली और कौनसी बाद की है, इस प्रश्न को लेकर भवभूति के अध्येताओं में एक दीर्घकालीन विवाद देखा जाता है । इस बिन्दु पर सामान्यत: तीन प्रकार की धारणाएं सामने आती हैं--

१- मालती माधव सर्वप्रथम रचना

'संस्कृत-ड्रामा' ग्रन्थ के लेखक प्रो० ए०बी०कीथ,[१] एस०के०दे०[२] तथा एम० आर० काले[३] आदि विद्वानों का विचार रहा है कि भवभूति की सर्वप्रथम रचना मालती-माधव है ।

२- महावीर चरित सर्वप्रथम रचना

एस० रे०,[४] ए०बरुआ,[५] कृष्णाकांत त्रिपाठी[६] तथा हिरियन्ना[७] आदि का विचार है कि महावीर चरित नाटककार की सर्वप्रथम रचना है । इन लोगों के अनुसार रचनाओं का कालक्रम इस प्रकार है- महावीर चरित, उत्तर रामचरित, मालती माधव ।

१- ए० बी० कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० १६२

२- दास गुप्ता और दे, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २८४

३- एम० आर० काले, मालती-माधव, भूमिका, पृ० ८-११

४- एस० रे०, उत्तर रामचरित, भूमिका, पृ० १२-२०

५- ए० बरुआ, भवभूति एण्ड हिज़ प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर, पृ० २६

६- कृष्णाकांत, महाकवि भवभूति और उनका उत्तर रामचरित, पृ० ४२-४६

७- हिरियन्ना, संस्कृत स्टडीज़, पृ० २६

३- महावीर चरित के बाद मालती माधव

आर० जी० भण्डारकर,[१] एस० के० बेलवल्कर,[२] टोडरमल,[३] आर० डी० करमारकर,[४] गंगासागर राय[५] और एस० वी० दीक्षित[६] आदि विद्वानों के अनुसार भवभूति की रचनाओं का क्रम इस प्रकार है- महावीर चरित, मालती माधव, उत्तर-रामचरित।

उपर्युक्त तीनों धारणाओं से जुड़े विद्वान अपने पक्ष में तरह-तरह के तर्क प्रस्तुत करते पाये जाते हैं। डा० विमला गेरा ने माइंड एण्ड आर्ट आफ भवभूति ग्रन्थ में इन सभी पक्षों के तर्कों पर गम्भीरता से विचार किया है और अंत में उनका निष्कर्ष यह रहा है कि तथ्यों की सतर्क छानबीन करने के उपरांत 'हमारे पास यह निश्चयात्मक निर्णय निकालने के पर्याप्त साक्ष्य हैं कि भवभूति की रचनाओं का क्रम इस रूप में है-[७] महावीर चरित, मालती माधव, उत्तररामचरित।

भवभूति के नाटकों का अध्ययन करने के उपरान्त तथा नाटककार की रचनाओं से जुड़े सभी मनोवैज्ञानिक पक्षों का गहन अनुशीलन करने के उपरांत हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मालती माधव ही भवभूति की सबसे पहली रचना होनी चाहिए। हमारी दृष्टि से इसका कारण बहुत साफ है। भवभूति हों अथवा कोई

१- आर० जी० भण्डारकर, मालती माधव, भूमिका, पृ०६

२- एस० के० बेलवेल्कर, उत्तररामचरित, प्रस्तावना, पृ० ४७

३- टोडरमल, महावीरचरित, प्रस्तावना, पृ० ३०

४- आर० डी० करमारकर, भवभूति, पृ० ६

५- गंगासागर राय, महाकवि भवभूति, पृ० ३५

६- एस० वी० दीक्षित, भवभूति हिज़ लाइफ एण्ड लिटरेचर, पृ० २२

७- विमला गेरा, माइंड एण्ड आर्ट आफ भवभूति, पृ० ४३

दूसरा नाटककार मनोवैज्ञानिक दृष्टि यही तर्कसंगत प्रतीत होता है कि एक युवा नाटककार सर्वप्रथम एक श्रृंगार प्रधान मुक्त प्रेमकथा पर आधारित नाटक रचना को ही अपनी लेखनी से सबसे पहले जन्म दे। भवभूति के मालतीमाधव को पढ़कर जो प्रभाव मिलता है वह केवल यही कि हमारे युवा नाटककार भवभूति ने भगवान काल प्रिया नाथ की यात्रा के उत्सव में एकत्रित हुए दिग्दिगन्त से आये देशवासियों के विनोदनार्थ मुक्त प्रेम-कथा पर आधारित मालती माधव नाटक ही सर्वप्रथम प्रस्तुत किया था। स्वाभाविक रूप से उसके युवा नाटककार के मन पर उन आदर्शवादी मूल्यों की कोई छाप नहीं थी जो उसके राम कथामूलक महावीर चरित नाटकों में छाये हुए हैं। एक युवा नाटककार के रूप में स्वभावत: उसका मानस रोमांटिक भावनाओं में रंगा प्रतीत होता है।

मालतीमाधव की प्रस्तावना से प्रतीत होता है कि नाटककार का वह युवा मन जिसके ऊपर पारिवारिक परम्परा से प्राप्त विविध प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान का लबादा बोझा बना हुआ था, उस बोझ को वह एक रोमांटिक नाटक रचना को जन्म देकर हलका कर देना चाहता था। उसके युवा मन का यह भाव प्रस्तावना के इस कथन से ध्वनित होता है--

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि तत: कश्चिद् गुणो नाटके।
यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवम्[१]
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पांडित्यवैदग्ध्ययो ।।

नाटककार की प्रस्तावना से यह भी विदित होता है कि उसके अन्दर का युवा नाटककार इस तथ्य के बारे में भी बहुत कुछ जागरूक था कि आदर्शवादी

१- मालती माधव १.८

रूढ़ियों के विरुद्ध एक रोमांटिक प्रेम कथा पर आधारित नाटक रचना के प्रदर्शन से उसे एक अल्हड़ और नौसिखिया नाटककार जैसे अवज्ञापूर्ण अपवाद मिलने की भी अधिक संभावना थी, किन्तु उसके युवा कलाकार मन ने इन बातों की कोई चिन्ता नहीं की । नाटककार भवभूति की इस प्रकार की आशंकाओं की अभिव्यक्ति हम मालती माधव की प्रस्तावना में बहुत साफ-साफ देखते हैं--

ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्न: ।
उत्पस्यते मम तु को पि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।[१]

भवभूति का उपर्युक्त कथन यह बता देने के लिये पर्याप्त है कि युवा नाटककार की मालती-माधव-रचना आदर्शवादी नाट्य रूढ़ियों के विरुद्ध एक साहसपूर्ण कदम था । इस साहसपूर्ण कदम को उठाने में उसने व्यक्तिगत निन्दाओं और स्तुतियों की कोई चिन्ता नहीं की । उसने यह अच्छी तरह जान लिया था कि यदि उसके समाज के रूढ़िवादी प्रेक्षकगण उसकी इस पहली नाटक-रचना को उच्छृंखल कहकर तिरस्कार देंगे तो भी उसके समानधर्मा कुछ न कुछ तो युवा पीढ़ी के वे प्रेक्षकगण भी होंगे जो नाटक को देखकर वाह-वाह कर उठेंगे ।

मालती माधव नाटक के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण बात यह भी प्रतीत होती है कि इस नाटक रचनामें ताना-बाना और वस्तु-योजना भले ही नाट्यशास्त्रीय सन्धियों और कार्य अवस्थाओं से समन्वित हो परन्तु इतना अवश्य है कि इसके ऊपर रंगमंचीय दृष्टि से लोक-नाटकों और नौटंकियों का प्रभाव ही अधिक जान पड़ता है । यदि ऐसा न होता तो नवीं-दसवीं शताब्दी का भवभूति आधुनिक

१- मालती माधव, १.६

रोमांटिक फिल्म की तरह मुक्त यौन-प्रेम तथा हिंसा और मारधाड़ से भरी नाटक-रचना कभी नहीं दे सकता था । उसे अन्य लोक-नाटक प्रयोगों की तरह अपनी नई नाटक-रचना के रोमांटिक चरित्र की लोकप्रियता पर पक्का भरोसा था । इसीलिए उसने नाटक की प्रस्तावना में अपने सर्वप्रथम नाटक की ऐसी ही विशेषताओं को खुले रूप में रेखांकित किया है--

> भूम्ना रसानां गहना: प्रयोगा: सौहार्द हृद्यानि विचष्टितानि ।
> औद्धत्यमायोजितकामसूत्रं चित्रा: कथा वाचि विदग्धता च ।।[१]

`मालतीमाधव` की उपर्युक्त प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए हमने भवभूति की इस नाट्य रचना को अन्य दोनों नाटकों की अपेक्षा प्राथमिकता प्रदान की है अर्थात् हम उसे नाटककार की प्रथम रचना मानकर चले हैं । इससे आगे हम भवभूति के इस प्रकरण नाटक के वस्तुशिल्प विधान के नाट्यशास्त्रीय और रंगमंचीय मूल्यांकन की ओर बढ़ना उचित समझते हैं ।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि

मालतीमाधव : एक प्रकरण रचना

धनंजय ने अपने दशरूपक भेदों में रूपक का एक प्रमुख भेद `प्रकरण` नाम से बताया है । धनंजय के अनुसार प्रकरण का इतिवृत्त सामान्यत: इतिहासमूलक न होकर कवि कल्पित होता है । दशरूपककार का यह भी विचार है कि प्रकरण रूपक का नायक कोई अमात्य, ब्राह्मण अथवा श्रेष्ठी वणिक होना चाहिए । प्रकरण का नायक धीर, प्रशान्त और अध्यवसायी होना चाहिए । सबसे महत्वपूर्ण बात प्रकरण को लेकर दशरूपक यह सूचित करता है कि इसमें नायक की कार्यसिद्धि तरह-तरह के

१- मालतीमाधवम् १.४

विघ्नों से युक्त प्रदर्शित की जाती है।[१] इसका तात्पर्य सम्भवत: यही लिया जा सकता है कि प्रकरण रूपक में द्वन्द्व और संघर्ष प्रचुर मात्रा में होता है। अतिरिक्त रूप से कहने की आवश्यकता नहीं कि भवभूति ने `मालतीमाधव` की रचना करते हुए प्रकरण की इन सारी विशेषताओं को ध्यान में रखा है। उसका मालतीमाधव सूत्रधार के शब्दों में नाना रसवृत्तियों से युक्त, प्रेम क्रियाओं से भरपूर, स्वच्छंद यौन-सम्बन्ध तथा उद्धत क्रियाओं से युक्त प्रकरण रचना है।[२]

कल्पना प्रसूत कथानक

मालतीमाधव प्रकरण की कथावस्तु किसी भी अंश में इतिहासमूलक इतिवृत्त पर आधारित नहीं है। यह पूरी तरह भवभूति के युवा नाटककार की कलात्मक कल्पना की देन है। यह बात बहुत अलग है कि नाटककार को इसकी प्रेरणा किसी लोककथा अथवा कथासाहित्य की किसी कहानी से मिल गई हो। भवभूति के एक समीक्षक ने कुछ इसी तरह की धारणाएं मालतीमाधव की वस्तु योजना को लेकर प्रगट की हैं। इस बारे में डा० गंगा सागर राय का कथन है--

`समग्र दृष्टि से विचार करने पर इसकी कथावस्तु भी भवभूति की प्रतिभा-प्रोद्भूत ही है तथापि बहुत संभव रूप में भवभूति ने अपनी कथा का आधार गुणाढ्य की वृहत्कथा से लिया है। जैसाकि वृहत्कथा मंजरी तथा कथासरित्सागर से हमें ज्ञान है, वृहत्कथा में छद्म विवाह तथा मंदिर मार्ग से भगाने के तीन पृथक्-पृथक् आख्यान उपलब्ध हैं। संभव है भवभूति ने इन्हीं आख्यानों से प्रेरणा लेकर अपनी कथावस्तु का निर्माण किया हो।`[३]

१- दशरूपक - धनंजय, ३.३६-४०

२- मालतीमाधव १.४

३- डा० गंगा सागर राय, महाकवि भवभूति, पृ० ६६-६७

कोई भी नाटककार चाहे जितना प्रतिभा-सम्पन्न हो और चाहे जितना कल्पनाशील हो, वह अपनी पूर्व-परम्परा के प्रभावों से सर्वथामुक्त कभी नहीं रह पाता है । यह बात भवभूति के नाटककार पर भी लागू होती है । भवभूति से पूर्व भास और कालिदास जैसे प्रख्यात नाटककारों की परम्परा मौजूद थी । अत: किसी न किसी अंश में भवभूति की नाट्य वस्तु-योजना पर उनके प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता । भवभूति के मालती माधव की वस्तु-योजना पर परम्परा के प्रभावों की छानबीन करते हुए डा० गंगा सागर राय ने लिखा है--

'यद्यपि प्रकरण का कथावृत्त भवभूति की प्रतिभाप्रोद्भूत है पर विभिन्न वर्णन-परम्परा से ग्रहण किया गया है । उदाहरणार्थ उन्मुक्त सिंह द्वारा उपद्रव के प्रसंग को लीजिये । ठीक ऐसा ही प्रसंग भास के अविमारक नाटक में है । अन्तर इतना ही है कि जहां अविमारक में हाथी उपद्रव करता है वहां मालतीमाधव में सिंह । अविमारक में भी राजा कुन्तिभोज की युवती कन्या की उद्यान से लौटते समय उन्मत्त हाथी से भेंट हो जाती है । अविमारक उस हाथी को पराक्रमपूर्वक प्रकृतिस्थ कर देता है । इस घटना के बाद कुरंगी तथा अविमारक में प्रेम हो जाता है इत्यादि । ठीक यही अवस्था है मकरन्द तथा मदयन्तिका की प्रणय-वृद्धि की । माधव का प्रणय-विलाप व विरह भी पूर्व कवियों के विरह वर्णनों से अनुप्राणित प्रतीत होता है । उदाहरण के लिये कालिदास के विक्रमोर्वशीय के पुरूरवा तथा इस नाटक के माधव के विरह-वर्णना की साम्यता दर्शनीय है । नवम् अंक में माधव द्वारा पवन को दूत बनाने की कल्पना भी मेघदूत से प्रभावित प्रतीत होती है । कुछ लोगों का तो कहना है कि यह सारा विरह वर्णन ही पीछे कालिदास के अनुकरण पर भवभूति द्वारा किया गया परिष्कार है । पर यह संगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि ऐसी स्थिति तो है नहीं कि कालिदास ने अपना नाटक मालतीमाधव की रचना के बाद बनाया हो और उसे देखकर भवभूति ने अपने नाटक में पुन: परिष्कार-परिवर्धन किया हो । कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य भवभूति के सामने

था अत: यह मानने पर कि भवभूति प्रथम बार ही उससे प्रेरणा ग्रहण कर सकते थे, यह मानने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि मालतीमाधव के इतिवृत्त में दुबारा परिष्कार-परिवर्धन हुआ है। कल्पना की कोई सीमा नहीं है।[१]

सुसंबद्ध अवयवी के रूप में वस्तु विधान

भवभूति का 'मालतीमाधवम्' नाट्यशास्त्रीय भाषा में प्रकरण रूपक है। इसकी सारी कथावस्तु को दश अंकों में संजोया गया है। पूरा घटनाचक्र प्रेम और उसके विरोधीभय के उतार-चढ़ाव के साथ चला है। कथावस्तु नाटककार के तरुण मन की है और वृहत् कथा में पाई जाने वाली लोककथा को लेकर चली लगती है। इसमें इतिवृत्त का कोई बन्धन नहीं है।

वस्तुविधान नाटकीय दृश्यों की विविधता से भरा पूरा है। राजमहल, सड़क, नगर, उद्यान, देवी मन्दिर, श्मशान भूमि, पर्वत गुफा जैसे विविध दृश्यों का संयोजन है।

मालतीमाधवम् के घटनाचक्र में पुरुष पात्र कम नारी पात्र अधिक हैं। प्रमुख पुरुष पात्र माधव नायक, मकरन्द नायक का मित्र, कलहंस माधव का सेवक, अघोरघण्ट कपालिक अनाम पुलिस मैन है। नारी पात्रों में कामन्दकी, अवलोकिता, बुद्धरक्षिता, मालती, मदयन्तिका, लवंगिका और मंदारिका, कपालकुण्डला और सौदामिनी आते हैं।

नन्दन के विवाह से मालती को बचाने के लिये यहां तक रोमांटिक कल्पना है कि कामन्दकी चालाकी से मकरन्द को मालती बनाकर नन्दन से विवाह करा देती है। जब भेद खुलता है तो बेचारा नन्दन उपहास का पात्र रह जाता है और उसकी बहन अपने प्रेमी मकरन्द के साथ हो लेती है।

१- डा० गंगासागर राय, महाकवि भवभूति, पृ० ७७

किसी उद्यान में जाते मकरन्द और मदयन्तिका से राजपुलिस के सिपाहियों का सामना हो जाता है और कहासुनी के साथ फिल्मी ढंग की मारपीट भी। माधव भी इस मारपीट में उतर आता है। यह भी एक तरह का फिल्मी रोमांस है। बहादुरी के बल पर दोनों नायक अपनी प्रेयसियों के लिये राजा का भी समर्थन पा लेते हैं।

खुशी में एक और बाधा। कपालिनी कपालकुण्डला द्वारा मालती का अपहरण अर्थात् नायक और नायिका का वियोग। एक और रोमांटिक कल्पना।

अन्त में कामन्दकी की एक शिष्या सौदामिनी द्वारा मालती की रक्षा और प्रेम कहानी का सुखद अंत। सारी कठिनाइयां पार करके प्रेमीजन चमत्कारपूर्ण ढंग से मिल जाते हैं।

कहानी का यही ताना बाना भवभूति ने १० अंकों में विभिन्न दृश्यों के माध्यम से रूपायित किया है।

'मालती माधव' की वस्तुयोजना पर प्रभाव चाहे जहां-कहीं से हो सकते हैं परन्तु मूलत: वह नाटककार की कलात्मक कल्पना की देन ही है।

इस प्रकरण की कथावस्तु दो जोड़ों के प्रेम की कहानी है। यह प्रणय कथा सीता और राम का प्रणय नहीं और न ही दुष्यन्त और शकुन्तला का, जो इतिहास पुराण काव्यों में प्रसिद्ध है और लोक में प्रसिद्ध है। यह पूरी तरह कल्पना प्रसूत है और लोककथा जैसा है। दो पुरुष प्रेमियों को दो नारी प्रेयसियों से मिलाने में बौद्ध सन्यासिनों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई गई है। इसमें खलनायक और खलनायिका भी प्रेम के प्रतिबंधक होकर आए हैं। मारधाड़ की घटनाएं भी आई हैं। इस तरह से सारा तानाबाना आधुनिक युग की रोमांटिक फिल्म की तरह भवभूति के कल्पनाशील नाटककार ने बुन डाला है।

नाटक की यह रोमांटिक कहानी इस तरह से सामने आती है। दक्षिणापथ के पद्मावती और विदर्भ दो छोटे राज्यों के दो मंत्री हैं भूरिवसु और देवरात। दोनों साथ पढ़े लिखे हैं। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि एक के पुत्री और दूसरे के पुत्र हुआ तो दोनों का विवाह कर देंगे।

पद्मावती राज्य के भूरिवसु के यहां पुत्री होती है, जिसका नाम मालती किया जाता है, देवरात का पुत्र होता है, नाम किया जाता है माधव। दोनों के विवाह की बात आती है लेकिन एक बाधा आ जाती है। पद्मावती के राजा का मुंह लगा एक सचिव नन्दन मालती से विवाह चाहता है और राजा का दबाव भूरिवसु पर डलवा देता है, एक बौद्ध सन्यासिनी कामन्दकी इस बाधा को दूर करती है। वह पद्मावती में अध्ययन को आए माधव से मालती की मुलाकात करा देती है। दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं।

इसी तरह कामन्दकी के प्रयत्न से ही माधव के एक मित्र मकरन्द का प्रेम हो जाता है नन्दन की बहिन मदयन्तिका से। बस यह दूसरी प्रेम कथा पहली प्रेम-कथा की आद्योपान्त सहकथा हो जाती है, दोनों जोड़ों के प्रेम का विकास बहुत ही रोमान्टिक घटनाओं से होता है। दोनों नायिकाएं अपने प्रेमियों द्वारा मृत्यु के मुंह से बचाई जाती हैं। मालती की रक्षा माधव एक वाममार्गी द्वारा उसकी बलि दिये जाने से करता है तथा मदयंतिका को माधव सिंह से बचाता है।

आधिकारिक और प्रासंगिक कथांशों का समानुपाती संनिवेश

प्राचीन नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से वस्तु समीक्षा के अनेक मानदण्ड स्वीकृत हैं। इनमें से आधिकारिक एवं प्रासांगिक घटनाओं का संतुलन एवं सामंजस्य नाटकीय क्रिया व्यापार की अवस्थाएं, प्रकृतियां एवं सन्धियां सर्वस्वीकृत मानक हैं।

धनंजय ने फल के भोक्ता को `अधिकारी` कहा है, अत: अधिकारी की कथा आधिकारिक कथा है ।[१] पिष्टपेषण से बचने के लिये यहां हम इतना लिख सकते हैं कि भूरिवसु की कन्या मालती का वाक्दान विवाह से पूर्व ही देवरात के पुत्र माधव से हो चुका था । चित्रदर्शन से परस्पर प्रेमानुभूति का पल्लवन होता है । राजा द्वारा मालती का विवाह नन्दन से कराये जाने के साथ घटना व्यापार कुछ वक्र दिशा में बढ़ता है ।

एक ओर प्रतिबंधक अघोरघंट और कपालकुण्डला द्वारा मालती के अपहरण से पैदा होता है । माधव का साहसपूर्ण उद्योग एवं अन्त में प्रेमी और प्रेयसी का मिलन इस नाटक की आधिकारिक कथा है । इस घटना में कौतूहल असम्भाव्य घटना सुश्रंखलता, सघनता एवं प्रगाढ़ता है । कथा सीधी सादी रूप में प्रवाहित न होकर नदी की भांति कुटिल गति से प्रवाहित हुई है । कपालकुण्डला द्वारा मालती का अपहरण माधव का छद्म वेशधारण कर नन्दन से विवाह पुन: अपहृत मालती का विद्याधरी द्वारा आनयन की घटनाएं आकस्मिक संयोग ही नहीं उत्पन्न करती सामाजिक को धक्का देकर उसके कौतूहल को जाग्रत उद्दीप्त भी करती हैं, इससे एक तानता और प्रभविष्णुता की अभिव्यंजना बहुत दूर तक हुई है ।

मालतीमाधव की प्रासंगिक घटनाएं

जिस प्रकार बड़ी नदी में छोटे-मोटे नदी नाले आकर मिलते हैं एवं नदी के मूल प्रवाह को और विस्तारित कर देते हैं, उसी प्रकार आधिकारिक कथा के साथ होता है । मुख्य पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्रों से सम्बन्धित घटनाएं प्रासंगिक घटनाएं कहलाती हैं । नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इन्हें पताका और प्रकरी कथाओं के रूप में विभक्त किया गया है । मालतीमाधव में मकरन्द और मदयन्तिका का प्रेम, विरह पुन: प्रेम प्रकट करने वाली घटनाएं प्रासंगिक घटनाएं हैं । अघोरघण्ट

१- दशरूपक १.१२

और कपालकुण्डला की घटना भी इसी प्रकार की है। मकरन्द और मदयन्तिका की प्रासंगिक घटना कुछ स्थलों पर अधिक स्थान घेरती है। सम्भवत: नाटककार ने मूल आधिकारिक पात्र - मालती और माधव - के बीच आकस्मिक संयोगजन्य दूरी दिखाने के लिये मकरन्द की घटना का विन्यास किया है, अथवा सहनायक-नायिका के प्रेमपूर्ण दृश्यों को दिखाकर आधिकारिक कथा के प्रभाव का विस्तार नाटककार को अपेक्षित रहा हो सकता है। अस्तु, इतना तो निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि इन प्रासंगिक कथाओं ने सामाजिकों को बाँधकर रोक नहीं रखा है। चंचल ऊर्मियों की भाँति कथा में नाटकीयता लाने के लिये इनका उपयोग भवभूति ने किया है। आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथा को श्रृंखलाबद्ध करने के लिये भवभूति ने अनेक नाट्यरूढ़ियों का प्रयोग किया है। प्रेमप्रादुर्भाव हेतु गुण श्रवण चित्र दर्शन, रूपदर्शन लता-कुन्जों के मध्य प्रेमी प्रेमिकाओं के मिलन, प्रकृति के कोमल-कठोर क्रियात्मक बिम्ब, जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, ऐन्द्रजालिक क्रियाओं एवं घटनाओं का संयोग आदि कुछ ऐसी ही नाट्यरूढ़ियां हैं।

कहना नहीं होगा कि भारतीय नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से विभक्त कथावस्तु को दृष्टिगत कर जब हम भवभूति की मालतीमाधवम् के वस्तु-विधान पर दृष्टि डालते हैं तो यह हमें सहज ही पता लग जाता है कि भवभूति ने उत्पाद्य कथा की रचना कर उसे दश दृश्यबन्धों में उपनिबद्ध किया है, जिसमें आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का संयोग समानुपातिक रूप में हुआ है।

कथावस्तु के वैशिष्ट्य के निरूपण हेतु भारतीय नाट्यशास्त्र में अवस्थाओं प्रकृतियों एवं सन्धियों का महत्वपूर्ण योगदान निरूपित हुआ है। अत: हम उपर्युक्त दृष्टि से कथावस्तु की सम्यक् समीक्षा कर मालतीमाधवम् के एतद् सम्बन्धी विशेषताओं का उल्लेख यथावसर कर भवभूति की वस्तु-विधान सम्बन्धी दृष्टिकोण को विश्लेषित करने का यतकिन्चित प्रयास करेंगे।

वस्तु-योजना में अर्थप्रकृतियों का विनिवेश

मालतीमाधव के इतिवृत्त का विवेचन करते हुए हम यह देख चुके हैं कि इसमें संस्कृत नाटक की उस परम्परा को पुन: जीवित करने का सफल प्रयास है जो शूद्रक के बाद क्षीण सी हो गई थी । विधा एवं नाटकीय दृष्टि से मालतीमाधव भवभूति के शेष नाटकों से भिन्न हैं । इसे प्रकरण के अन्तर्गत मानकर तदनुरूप ही कथावस्तु उल्लेख किया गया है । यहां उसकी समीक्षा अर्थप्रकृतियों की दृष्टि से की जा रही है ।

बीज प्रकृति

मालतीमाधव के प्रथम अंक में कामन्दकी द्वारा यह बतलाया गया है कि मालती के पिता भूरिवसु और माधव के पिता देवरात के बीच अपने अध्ययन काल में कामन्दकी और सौदामिनी के सामने ऐसी प्रतिज्ञा हुई थी कि यदि उनमें से किसी एक के कन्या तथा दूसरे के कोई पुत्र हुआ तो वे उन दोनों को वैवाहिक सूत्र में आबद्ध करेंगे । यह प्रतिज्ञा ही मालतीमाधव की कथावस्तु का बीज है जिसका पल्लवन सम्पूर्ण नाटक में हुआ । कामन्दकी का यह कथन 'बीज' की सूचना देता है--

> किं न वेत्सि (यदेव नौ विद्यापरिग्रहाय नानादिगन्तवासिनां साहचर्यमासीत्-
> देवास्मत्सौदामिनीसमक्षमनयोर्भूरिवसुदेवरातयो: प्रवृत्तेयं प्रतिज्ञा[1]
> अवश्यमावाभ्यामपत्यसम्बन्ध: कर्तव्य इति ।

बिन्दु प्रकृति

वास्तव में बीज कार्य व्यापार की आरम्भिक अवस्था है जिसका पल्लवन बिन्दु में होता है । मालतीमाधव के चतुर्थ अंक में मालतीमाधव एवं मकरन्द-मदयन्तिका पारस्परिक प्रणय में आबद्ध हो जाते हैं कि सहसा दूत प्रविष्ट होकर मदयन्तिका को सूचित करता है कि मालती का विवाह नन्दन से निश्चित हो

१- मालतीमाधव, अंक १, विष्कंभक

गया है । इस कथन से माधव निराश हो जाता है । उसकी मनोव्यथा चरम सीमा को पहुंच जाती है । तभी कामन्दकी उसे आश्वस्त करती है और समागम के लिये पुन: प्रेरित करती है । कामन्दकी का यह आश्वासन ही बिन्दु कहा जा सकता है क्योंकि दूत के सन्देश प्रेषण के समय मूलकथा की धारा विच्छिन्न हो जाती है । कामन्दकी के आश्वासन से कार्य की धारा पुन: फैल जाती है और घटना आगे बढ़ती है । कामन्दकी के प्रेरणावाक्य 'बिन्दु' प्रकृति के सूचक है ।

कामन्दकी - न तर्हि प्रागवस्थाया भूरिवसु: परिहीयते ।

मकरन्द - दत्तपूर्वेत्याशंकयते ।

कामन्दकी - जानामि तां वार्ताम् । इदं तावत्प्रसिद्धमेव यथा नन्दनाय मालतीं प्रार्थ्यमानं भूरिवसुर्नृपतिमुक्तवान् 'प्रभवति निजकन्यकाजनस्य महाराज:' इति ।[1]

पताका प्रकृति

पताका सहकथा का नाट्यशास्त्रीय नाम है ।

'मालती-माधव' के पंचम् अंक में श्मशान के निकट करालायतन का मन्दिर है जहां कपालकुण्डला के गुरु अघोरघण्ट अपने तांत्रिक अनुष्ठान की पूर्ति हेतु मालती को पकड़कर बलि देने हेतु खड़ग प्रहार का प्रयत्न करता है । तभी कापालिक को ललकारता हुआ माधव उससे द्वन्द्व युद्ध करता है । यह कथा मूल कथा से हटकर एक गौण सहकथा के रूप में प्रयुक्त हुई है । इसे हम पताका कथा कह सकते हैं क्योंकि इसके द्वारा माधव की अप्रतिम साहसिकता एवं मालती के प्रति हार्दिक प्रेम की सूचना मिलती है ।[2] वास्तव में तो मकरन्द और मदयन्तिका की प्रेमकथा ही 'पताका' है जो मुख्य कथा के साथ चलती है ।

१- मालतीमाधवम्, अंक-४

२- द्रष्टव्य मालती माधव, करालायतन दृश्य,

प्रकरी प्रकृति

पताका के साथ ही प्रकरी सम्बद्ध रहती है । मालतीमाधव के षष्ठ अंक में मकरन्द द्वारा देवी के मन्दिर में मालती के वस्त्रों को धारण कर घर जाने का जो कथानक आया है, उसे हम निर्भ्रान्त रूप से प्रकरी कह सकते हैं । इसी प्रकार के अन्य छिटपुट कथांश जो नाटकीय घटनाचक्र को गतिशीलता देते हैं, 'प्रकरी' कोटि में ही आते हैं । नवम् अंक में कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी द्वारा मालती को कपालकुण्डला से बचा लेने, मकरन्द एवं माधव को उस समाचार की सूचना देने का वृतान्त भी प्रकरी के अन्तर्गत ही आयेगा,[१] क्योंकि मुख्य कथानक को फल की ओर अग्रसर करने का कार्य सम्पादित हुआ है ।

कार्य प्रकृति

दशम् अंक में मालती और माधव का स्थायी मिलन इस नाटक का कार्य है । इसमें विरह विगलित प्रणयी का प्रेम पुष्ट एवं राग की दशा तक पहुंच गया है । सौदामिनी के कथन में यह स्थिति द्रष्टव्य है--

इदमत्र रामणीयकं यदमात्यभूरिवसुदेव-
रातयोश्चिरात्संपूर्णो यमितरेतरापत्यसंवन्धरूपो
मनोरथः ।[२]

कार्य अवस्थाओं का उचित सन्निवेश

दस अंकों में विभक्त प्रकरण की वस्तुयोजना को सुसंबद्ध तथा रोचक और औत्सुक्यपूर्ण बनाये रखने के लिये भवभूति नाट्यशास्त्रीय कार्य अवस्थाओं और संधियों

१- द्रष्टव्य मालतीमाधवम्, अंक ६,

२- मालतीमाधवम्, अंक १०,

का सार्थक प्रयोग किया है । इस प्रकरण की वस्तुयोजना में हम इन मानकों का प्रयोग इन रूपों में देख सकते हैं ।

आरम्भ अवस्था

नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रचुर फल की प्राप्ति के लिये उत्सुकता मात्र होना ही आरम्भ है । मालतीमाधव के प्रथमांक में मदनोद्यान के उत्सव में माधव वकुलवृक्ष के नीचे बैठकर पुष्पहार बनाने में तन्मय दीखता है । उसी समय सुन्दरी मालती अनेक अनुचरण एवं सहेलियों से परिवृत होकर वहां उपस्थित होते हैं । मालती के अनुपम सौन्दर्य को इतने निकट से देखकर माधव का हृदय अनायास ही उसमें आसक्त हो जाता है । दूसरी तरफ मालती ने माधव को देख तो उसका प्रेमभाव भी स्तम्भ, स्वेद, रोमांच इत्यादि सात्त्विक भावों से फलक पड़ता है । इस प्रकार प्रथम दृष्टि के दाण में उत्पन्न प्रेम का वर्णन भवभूति ने नाटकीय कार्य की `आरम्भ` अवस्था में किया है । माधव मन ही मन कहता है--

तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेत: कथंकथमपि व्यपवर्तते मे ।
लज्जां विचित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मन्थरविवेककृकाण्ड एव ।।[१]

प्रयत्न अवस्था

फल की प्राप्ति के लिये अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक उद्योग करना ही `प्रयत्न` अवस्था कहलाती है ।

१- मालतीमाधवम् १.१६

फल प्राप्ति के अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण कार्य की 'प्रयत्न' अवस्था होती है । तृतीय अंक में माधव के अनेक प्रयत्नों का वर्णन किया गया है । इस कार्य में उसका मित्र मकरन्द तथा कामन्दकी उसके सहयोगी हैं । इन्हीं स्थानों में प्रयत्न अवस्था के दर्शन होते हैं । माधव की इस अवस्था का कामन्दकी के इस कथन से मिलता है ।

कामन्दकी - असौ विद्याशाली शिशुरपि विनिर्गत्य भवनादिहायात:
संप्रत्यविकलशरच्चन्द्रवदन: । यदालोकस्थाने भवति
पुरमुन्मादतरलै: कटाक्षैर्नारीणां कुवलयितवातायनमिव ।।[१]

प्राप्त्याशा अवस्था

आशा और निराशा में फूलना कार्य की 'प्राप्त्याशा' अवस्था होती है । मालतीमाधव के चतुर्थांक में एक पुरुष मालती के साथ नन्दन के विवाह की सूचना देता है, जिसे सुनकर माधव निराश होकर मांस विक्रय में तत्पर हो जाता है । भवभूति ने कथानक का सीधे-सीधे वर्णन न करके आरोहावरोह एवं घटनाओं के व्याघात के संयोग से किया है । यहां यह द्रष्टव्य है कि प्रेमी अपने प्रिय का सम्बन्ध अन्यत्र सुनकर अपने को हतभाग्य अनुभव करता है । अघोरघण्ट द्वारा कराला देवी के मन्दिर में मालती को संकटापन्न देखकर माधव के साथ सामाजिक को भी मालती के प्राप्त हो जाने की सन्देहपूर्ण आशा बंधती है ।

माधव - हन्त, संप्रति निरस्त एवं मे संदेह, तदपि नाम जीवन्तीमेनां
संभावयेयमिति ।[२] (झटिति परिक्रामति)

१- मालतीमाधवम् २.११

२- वही अंक ४

नियताप्ति अवस्था

फल की निश्चित रूप से प्राप्ति ही नियताप्ति है। अष्टम अंक में कपालकुण्डला मालती को पकड़ ले जाती है तथा नवम् अंक में कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी द्वारा उसे बचा लिया जाता है। सौदामिनी माधव को खोजती हुई मकरन्द को प्राप्त कर लेती है। उसे माधव मूर्छित अवस्था में मिलता है। माधव को होश में लाकर मालती कुशलता की सूचना सम्प्रेषित करती है। अब मालती और माधव का मिलन निश्चित सा लगता है। यही कार्य की नियताप्ति अवस्था है।

फलागम अवस्था

पूर्णरूप से अभिप्रेम फल की प्राप्ति ही 'फलागम' है। दशम् अंक में माधव एवं मकरन्द को यह जानकर आश्चर्य मिश्रित आनन्द होता है कि उनका कल्याण करने वाली योगिनी सौदामिनी कामन्दकी की अन्तेवासी है। कामन्दकी माधव को जो एक पत्र देती है कि राजा ने उसके परिणाय सम्बन्ध पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर दी है। इस प्रकार नायक और नायिका के स्थायी मिलन से 'फलागम' नाम की कार्य अवस्था आ जाती है। कामन्दकी का यह कथन इसी कार्य अवस्था का सूचक है।

> यत्प्रागेव मनोरथैर्वृतमभूत्कल्याणमायुष्मतो-
> स्तत्पुण्यैर्मद्‌पक्रमैश्च फलितं क्लेशैश्च मच्छिष्ययोः।
> निष्णातश्च समागमो पि विहितस्त्वत्प्रेयसः कान्तया[1]
> संप्रीतो नृपनन्दनो यदपरं प्रेयस्तदप्युच्यताम्॥

१- मालतीमाधवम्, १०:२४

वस्तुयोजना में पंचसंधि समन्वय

सन्धियों का सैद्धान्तिक विवेचन करते समय लिखा जा चुका है कि सन्धि अर्थप्रकृतियां और अवस्थाओं के मेल से बने हुए कथानक के चमत्कारी अंशों को कहा जाता है । यहां आलोच्य नाटक में प्राप्त सन्धियों का संक्षेप में विवेचन किया जा रहा है । --

मुखसन्धि

नाट्यदर्पण[१] के अनुसार बीज की उत्पत्ति तथा रस का आश्रयभूत मुख्य कथाभाग का अंश मुख सन्धि कहलाता है--

मुखं प्रधानवृत्तांशो बीजोत्पत्ति रसाश्रय: ।

इस प्रकार कथाभाग प्रारम्भावस्था के साथ होने के कारण प्रधान वृत्त का सबसे पहले दृश्य होने के कारण मुख सन्धि कहलाता है । जहां आरम्भ कार्यावस्था और बीज अर्थप्रकृतियां मिलती हैं वहां मुख सन्धि होती है । मालतीमाधव में भूरिवसु और देवरात के मध्य यह शर्त निश्चित हुई थी कि उनके पुत्र और पुत्री आगे चलकर दम्पत्ति बनेंगे । इस प्रकार प्रतिज्ञा एवं मालतीमाधव के प्रथम दर्शन के मध्य मुख सन्धि को देखा जा सकता है ।[२]

प्रतिमुख सन्धि

इसमें बीज अंकुरित होकर कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य रूप विकसित होता हुआ दिखाई देता है । नाट्यदर्पणकार ने लिखा है--

----

१- नाट्यदर्पण ३८,४४

२- मालतीमाधवम्, १,२७

प्रतिमुखं क्रियल्लक्ष्यबीजोद्घाटसमन्वितम्।[1]

प्रयत्न और बिन्दु मिलकर ही प्रतिमुख सन्धि बनाते हैं। मालतीमाधव के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थांक में प्रतिमुख सन्धि कही जा सकती है।[2]

गर्भसन्धि

रामचन्द्र गुणाचन्द्र ने लिखा है कि लाभ और अलाभ के अनुसन्धान के द्वारा बीज की फलोन्मुकता से युक्त गर्भ सन्धि है--

बीजस्यौन्मुख्यवान् गर्भो लाभालाभगवेषणैः।

अर्थात् उत्पत्ति तथा उद्घाटन रूप दो अवस्था से युक्त बीज का जो फल जनन के प्रति उन्मुख होना है, उससे युक्त गर्भ सन्धि होती है। मालतीमाधव के चतुर्थ अंक के अन्त से पंचम् अंक की कथा गर्भ सन्धि के अन्तर्गत आयेगी। पंचम अंक में मालती का अपहरण उसके बध के लिये उद्यत अघोरघण्ट के साथ माधव के द्वन्द्व युद्ध में गर्भ सन्धि का समापन देखा जा सकता है।[3]

विमर्श सन्धि

मुख प्रतिमुख तथा गर्भ सन्धि में बीज की उत्पत्ति उद्घाटन तथा फलोन्मुखत रहती है जबकि विमर्श सन्धि में पूर्ण होने के लिये प्रस्तुत साध्य में व्यवधान आने के स्थल विमर्श सन्धि के अन्तर्गत आते हैं। इसमें नियताप्ति अवस्था और प्रकरी अर्थ-प्रकृति का योग रहता है। विघ्नों के बार-बार बाधित होने पर भी नायक फल-प्राप्ति के लिये अधिक सक्रिय दिखाई देता है। इसी कारण नाटककार अपने नाटकों

१- नाट्य दर्पण ३८,४५

२- मालतीमाधवम्, अंक २

३- वही अंक ५, करालायतन दृश्य

में सामाजिकों को शिक्षा देने के लिये विमर्श सन्धि में विघ्नों के कारणों को अवश्य प्रदर्शित करता है।[१]

मालतीमाधव के अष्टम् अंक में कपालकुण्डला मालती को बलात श्रीपर्वत पर मारने के लिये ले जाती है। असहाय मालती का विलाप एवं नवम् अंक के अन्त तक विमर्श सन्धि को देखा जा सकता है।[२]

निर्वहण सन्धि

नाट्यदर्पणकार ने लिखा है, बीज और उसके विकारों एवं अवस्थाओं के सहित नाना प्रकार के भाव तथा मुख आदि सन्धियां जहां पहुंच कर फल से युक्त होते हैं, वह निर्वहण सन्धि है।

> सबीजविकृतावस्था:, नानाभावा मुखादय: ।
> फलसंयोगिनो यस्मिन्, असौ निर्वहणो ध्रुवम् ।।[३]

इसमें फलागम अवस्था और कार्य अर्थ प्रकृति का योग रहता है। मालती माधव के दशम् अंक में जहां नायक-नायिका का मिलन होता है। इस सन्धि को देखा जा सकता है।[४]

रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य

प्रथम अध्याय में नाटक और रंगमंच तथा रंगमंच का विशिष्ट व्यक्तित्व निरूपित करते हुए यह कहा जा चुका है कि रंगमंच बहुत प्राचीन शब्द नहीं है।

१- नाट्य दर्पण, ३६.४७

२- द्रष्टव्य - मालती माधवम्, अंक ६

३- नाट्य दर्पण ४०.४८

४- द्रष्टव्य - मालतीमाधव अंक १०,

अपने सीमित अर्थ में यह नाट्यशास्त्र में वर्णित रंगपीठ रंगशीर्ष दोनों का मिला-जुला रूप है। नाट्यमण्डप को दो भागों में विभक्त कर क्रमश: रंगशीर्ष, रंगपीठ एवं नेपथ्य के रूप का उल्लेख किया गया है। इसी रंगमंच पर अभिनय किया जाता है जिसमें बैठकर प्रेक्षकगण नाटक का आनन्द लेते हैं।

यहां मालतीमाधव की कथा का रंगमंचीय दृष्टि से विश्लेषण किया जायेगा। क्योंकि अभिनय, नाटक और रंगमंच का एक अपरिहार्य उपादान है जिसके बिना न तो नाटक की पार्थिव अभिव्यक्ति एवं व्याख्या सम्भव है और न ही रंगमंच की प्राण प्रतिष्ठा इसके अभाव में हो सकती है।

अभिनय शब्द का अर्थ है रंगस्थल में कथापात्रों का अनुकरण कौशल द्वारा उपस्थापन। प्रश्न यह है कि नाटक के अभिनेयत्व के लिये नाटककार को किन विशिष्ट तत्वों का पालन करना चाहिए। सफल नाटककार को मंच की सीमा और सामर्थ्य का ऐसा उपयोग करना चाहिए कि अभिनेतागण अपने अभिनय द्वारा कथा का, मनोभावों, हावभाव, मुखमुद्रा का प्रदर्शन कर सकें। अतएव अभिनयशीलता के लिये निम्न महत्वपूर्ण कारक तत्व सिद्धान्त रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं।

१- नाटक की कथावस्तु में प्रवाह कौतूहल का समावेश कार्य व्यापार की तीव्रता, उसे रंगमंच पर अधिक आकर्षक बनाता है। अत: उपयुक्त नाटकीय स्थिति का चुनाव करके उसकी गति चरमसीमा की ओर जानी चाहिए ताकि दर्शक विस्मय विमूढ़ होकर अभिनीत दृश्यों को देखते रहें। सार यह है कि नाटक की कथावस्तु लगभग चार पांच घण्टे की समय सीमा में नाटककार को फैलानी चाहिए।

२- रंगमंच में पात्रों की अधिक भीड़ न हो, अधिक भीड़ होने पर कुछ पात्र सक्रिय तो कुछ निष्क्रिय रहेंगे। यह अभिनय की प्रभावशीलता में बाधक सिद्ध होता है।

३- नाटक के संवाद छोटे संक्षिप्त प्रवाहमान होने चाहिए। अत्यन्त दीर्घ या भावुकता से बोझिल संवाद नीरस प्रतीत होते हैं।

४- अभिनय के चतुर्विध रूप - आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य का उल्लेख होना चाहिए ।

५- दृश्य-विधान नाटक को सफल बनाता है, अत: नाटककार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक दृश्य से दूसरे दृश्य का हृदयंगम दर्शक आसानी से कर लें ।

उक्त मानक स्थापित मानदण्डों के आधार पर मालतीमाधव के वस्तु-विधान का रंगमंचीय अनुशीलन प्रस्तुत किया जा रहा है । नाटककार भवभूति ने मालतीमाधव की प्रेमकथा का विन्यास दस अंकों में किया है । यह कथा मूलत: मालती और माधव के प्रथम दर्शन परस्पर आशक्ति, मालती का अन्यत्र वाक्दान, माधव का नैराश्य एवं मांस विक्रय, हताश, निराश मालती का अघोरघण्ट एवं कापालिक द्वारा बलपूर्वक बलिदान करने का प्रयत्न, माधव द्वारा मालती की रक्षा पुन: मालती का अपहरण और अनेक विघ्न बाधाओं के बाद प्रणयी युगल का पूर्ण मिलन इस नाटक की मुख्य आधिकारिक कथा है, जो कुछेक अपवादों को छोड़कर रंगमंच में पूर्ण अभिनीत हो सकती है । क्योंकि नाटककार ने घटना का प्रवाह, उसमें आकस्मिक परिवर्तन इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि दर्शक कभी `आह` तो कभी `वाह` करता है । सुश्रृंखलित कथा प्रवाह का ऐसा वर्णन हुआ है जिसे कुशल नट मंच पर बिना किसी व्याघात के प्रस्तुत कर सकते हैं ।

प्रथम अंक के प्रस्तावना में सूत्रधार, नट, तदुपरान्त मिश्रविष्कम्भक में कामन्दकी, अवलोकिता एवं मुख्य मंच पर कलहंस, मकरन्द, माधव । द्वितीयांक के प्रवेशक में चेटीद्वै तथा उसके बाद मालती, लवंगिका, प्रतिहारी । तृतीय अंक के प्रवेशक में बुद्धरक्षिता, अवलोकिता तदुपरान्त कामन्दकी, मालती, लवंगिका माधव । चतुर्थ अंक में मदयन्तिका, मकरन्द, मालती, बुद्धरक्षिता, माधव । पंचम अंक के प्रारम्भ में शुद्धविष्कम्भक में कपालकुण्डला का स्वगत एवं तदुपरान्त माधव, मालती, अघोरघण्ट । षष्ठांक के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक में कपालकुण्डला तदुपरान्त कलहंस माधव, मकरन्द, मालती, प्रतिहारी, लवंगिका, कामन्दकी । सप्तम् अंक के प्रवेशक

में बुद्धरक्षिता, मकरन्द, लवंगिका, मदयन्तिका । अष्टम् अंक के प्रवेशक में अवलोकिता तदुपरान्त माधव, मालती, कपालकुण्डला, लवंगिका, कलहंस, मकरन्द । नवम् अंक के शुद्ध विष्कम्भक में सौदामिनी, मकरन्द, माधव एवं अन्तिम अंक में कामन्दकी, लवंगिका, मदयन्तिका, माधव, मकरन्द, मालती, सौदामिनी इत्यादि प्रमुख पात्र मंच पर उपस्थित हुए हैं ।

निष्कर्ष यह है कि नाटककार ने मंच पर पात्रों की अनावश्यक भीड़ नहीं लगाई है । प्रवेशक या विष्कम्भ में एक या दो पात्रों के पश्चात् नये पात्रों का आगमन उनके कथोपकथन से कथा का विस्तार या परिस्थिति की सूचना दी गई है । नाटककार ने बड़ी कुशलता से निष्क्रिय पात्रों के गमन और नूतन पात्रों का अवतरण दिखाया है ।

जैसे - प्रथम अंक में मिश्रविष्कम्भक के अन्तर्गत कामन्दकी, अवलोकिता भूरिवसु और देवरात की पूर्व प्रतिज्ञा का उल्लेख कर मालती के यौवनागम एवं कामावेग का वर्णन करती है, तदुपरान्त पात्र का प्रवेश इस प्रकार दिखाया गया है ।

(ततः प्रविशति गृहीतचित्रफलकोपकरणः कलहंसः)

कलहंस - क्वेदानीं तुलितमकरध्वजावलेपरूपविभ्र-
माक्षिप्तमालतीहृदयमाहात्म्यं नाथं माधवं
पश्यामि । परिश्रान्तो स्मि (परिक्रम्य)
यावदिहोद्याने मुहूर्तं विश्रम्य मकरन्दसहचरं
नाथं माधवं प्रेक्षिष्ये । (प्रविश्य उपविशति) । [1]

(ततः प्रविशति मकरन्दः)

१- मालतीमाधवम्, प्रथमांक

संवाद नाटक के प्राण हैं। नाटक की अपेक्षा अन्य विधाओं में साहित्यकार को यह सुविधा प्राप्त रहती है कि वह अपने भावों को पाठकों तक सम्प्रेषित कर सकता है जबकि नाटककार को कथावस्तु का विकास पात्रों का चरित्र रसात्मकता परिस्थिति की सूचना संवादों से ही देना पड़ता है। अत: नाटकों के संवाद सरल, सुबोध, सजीव प्रभावोत्पादक होने चाहिए। व्यंग्यमयता एवं पटुता से युक्त संवाद अत्यन्त प्रभावी होते हैं। नाटककार को यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसके संवाद न तो इतने अधिक लम्बे हों जिससे दर्शक ऊबने लगे, न ही अधिक काव्यात्मकता हो जिससे पाठक घटना प्रवाह को ही भूल जायें।

भवभूति के सम्बन्ध में यहां यह कह देना नितान्त प्रासंगिक है कि नाटककार ने काव्यमयता के लिये दो आधार प्रस्तुत किये हैं। नाटककार ने नाटक में काव्यमयता संवादों और गीतों से ही नहीं दिया अपितु घटना प्रवाह का रोचक विन्यास संवादों से ही प्रस्तुत किया है। यद्यपि कुछ स्थलों पर लम्बे दीर्घ समास बहुत क्लिष्ट भाषा के प्रयोग से अभिनेयता में बाधा उत्पन्न हुई है। इसका विश्लेषण करते हुए संक्षेप में कहा जा सकता है कि उस युग की यह रूढ़ि थी कि नाटक में काव्यात्मकता लाने का प्रधान माध्यम भाषा ही है। यहां हम पहले भवभूति के उन विशिष्ट संवादों का उल्लेख करेंगे जिसके लिये भवभूति परवर्ती नाटककारों द्वारा स्मरण किये गये हैं।

प्रथम अंक के प्रारम्भ में सूत्रधार और नट द्वारा मूल कथा का बीजारोपण उत्सुक्यपूर्ण पद्धति से किया गया है। सूत्रधार और नट का संवाद इस दिशा में कितना प्रभावी है, दृष्टव्य है--

सूत्रधार - तत: किम् ?

नट - प्रकरणनायकस्य मालतीवल्लभस्य माधवस्य वर्णिकापरिग्रह: कथम् ?

सूत्रधार - मकरन्दकलहंसयो: प्रवेशावसरे तत्सुविहितम्।

नट - तेन हि तत्प्रबन्धप्रयोगादेवात्रभवत: सामाजिकानुपास्महे।

सूत्रधार - बाढम्। एषोऽस्मि कामन्दकी संवृत्त:।

नट - अहमप्यवलोकिता ।[१]

संक्षिप्तता प्रभविष्णुता और चपलता मालतीमाधव के संवादों की मौलिक विशेषता है । इन संवादों में कथा की सूचना और प्रवाहमयता सामाजिकों में अभीष्ट प्रभाव छोड़ती है ।

कलहंस - (उपसृत्य) एतच्च । (चित्रंदर्शयति) ।

(उभौ पश्यत:)

मकरन्द- कलहंसक, केनेदं माधवस्य रूपमभिलिखितम् ?

कलहंस - येनैवास्य हृदयमपहृतम् ।

मकरन्द - अपि नाम मालत्या ?

कलहंस - अथ किम् ?

माधव - वयस्य मकरन्द, प्रसन्नप्रायस्ते तर्क: ।

मकरन्द - कुतो स्याधिगमस्ते ?[२]

पात्रों के चरित्र-चित्रण के अलावा परिवेश या प्रकृति का चित्रण नाटककार ने बड़ी तन्मयता से किया है । नवम् अंक में माधव कहता है--

> अलमनेनाप्यायासिलेन । (सानन्दम्) एष सानन्दसहचरी-
> समाकर्ण्यमानमधुरगम्भीरकण्ठगर्जितध्वनिरपरो पि
> मत्तमातंगवर्गपालक: प्रत्यग्रविकसितकदम्बसंवादिसुरभिशी-
> तलामोदबहुलसंवलितमांसलकपोलनिष्यन्दकर्दमिततीरं
> समुद्धुतकमलिनीखण्डप्रकीर्णकेसरमृणालकन्दांकरनिकरम-
> नवरतप्रवृत्तकमनीयकर्णतालताण्डवप्रचलकर्णजर्जरिततरल-
> तरंगविततनीहारवित्रस्तकुररसारसं सरो वगाह्य क्रीडति ।
> भवतु । एनमाभाषे । महाभाग नागपते, श्लाघ्ययौवन:

१- मालतीमाधवम्, प्रथम अंक,

२- वही,

खल्वसि । कान्तानुवृत्तिचातुर्यमप्यस्ति भवतः । (साधवादम्)[1]

भवभूति ने संवादों को मंच की सीमा के अनुरूप ही व्यवस्थित किया है। उनके संवाद प्रायः नातिदीर्घ हैं न ही अभिनेयता में बाधा उत्पन्न करते हैं। दीर्घ संवाद अवश्य विचारणीय हैं। एक कुशल मंच निर्देशक आधुनिक युग में ऐसे संवादों को संक्षेप कर सकता है, क्योंकि इस प्रकार के लम्बे संवाद कथा के लिये अनावश्यक होते हैं। तृतीय अंक में लवंगिका का एवं माधव का लम्बा संवाद संक्षिप्त कर देने पर मंचोपयोगी अधिक हो सकेगा।[2]

नाट्यशास्त्र में जनान्तिक स्वगत भेद संवाद के रूढ़ के अनुसार किये गये हैं। बात यह है कि प्रेक्षागृह में बैठे सामाजिकों को कथा और पात्र के चरित्र विकास को दृष्टि में रखकर इस प्रकार के संवाद रखे जाते हैं जिसे मंचस्थ अन्य पात्र नहीं सुन पाता, अंगुली की आड़ से जनान्तिक जैसे संवाद बोले जाते थे। जनान्तिक का एक उदाहरण देखिए--

मालती - (सानन्दं जनान्तिकम्) सखि लवंगिके, श्रुतं महाकुलप्रसूतो महाभाग इति।

लवंगिका - (जनान्तिकम्) सखि, कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गमः।[3]

इसके विपरीत अपवार्य ऐसे संवाद होते हैं जिन्हें मंचस्थ पात्र को ही सुनाना होता है। सामाजिक ऐसे पात्रों को नहीं सुन पाते हैं। जैसे--

मालती - (अपवार्य) कथमुपहारीकृतास्मि राज्ञस्तातेन।
राजाराधनं खलु तातस्य गुरुकम्, नः पुनर्मालती।
(सास्रम्) हा तात, त्वामपि मम नामैवमिति सर्वथा जितं भोगतृष्णया।
(सानन्दम्) कथं महाकुलप्रसूतः स महाभागः। सुष्ठ भणितं प्रियसख्या

१- मालतीमाधवम्, नवमांक

२- देखिये -वही- तृतीयांक, लवंगिका का दीर्घ संवाद।

३- देखिये -वही- द्वितीयांक,

कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गम इति ।

अपि नाम तं पुनरपि प्रेक्षिष्ये ।[1]

भवभूति ने स्वगत संवादों का भी खुलकर उपयोग किया है । ऐसे संवाद पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करते हैं । कहीं स्वगत संवाद गीत रूप में तो कहीं गद्य रूप में तो कहीं गद्य, पद्य दोनों रूपों में हैं ।

मकरन्द - (स्वगतम्) अमात्यभूरिवसोरात्मजेत्यपर्याप्तिर्बहुमानस्य । अपि च ।
माततीं मालतीति मोदते भगवती कामन्दकी । तां च राजा नन्दनाय
याचत इति किंवदन्ती श्रूयते । (प्रकाशम्) ततः ?[2]

- - -

माधव - (स्वगतम्)

तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेतः कथंकथमपि व्यपवर्तते मे ।
लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्यं-
मुन्मथ्य मन्थरविवेकमकाण्ड एव ।।[3]

- - -

मकरन्द - (स्वगतम्) अहो अभिषंग । तत्किं निषेधयामि प्रियसुहृदम् । अथवा -

मा भूमुहुत्खलु भवन्तमनन्यजन्मा
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत् ।

१- मालतीमाधवम्, द्वितीयांक

२- -वही- प्रथमांक

३- -वही- १.१९

इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव यस्मिन्
कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवन च ।।[१]

गीत योजना

संवादों के साथ ही रंगमंच में अभिनय को काव्यात्मक सार्थक, भावप्रवण बनाने के लिये गीतों की सार्थक भूमिका मानी जाती है । यह एक प्रकार की नाट्य रूढ़ि भी है । इन गीतों से मंच की काव्यात्मकता मूर्त रूप हो उठती है । किन्तु गीतों की अधिकता अभिनेयता में बाधक भी होती है । यहां हम मालती माधव के अंकानुसार गीतों का प्रयोग बताकर विश्लेषण करेंगे ।

१- प्रथम अंक - ४२	२- द्वितीयांक - १३
३- तृतीयांक - १८	४- चतुर्थांक - १०
५- पंचमांक - ३४	६- षष्ठांक - २०
७- सप्तमांक - ५	८- अष्टांक - १४
९- नवमांक - ५४	१०- दशमांक - २५

तात्पर्य यह है कि प्रथमांक, पंचमांक, नवमांक और दशमांक में गीत बाहुल्य है । मूल रूप में इन्हें गीत न कहकर पद्यात्मक संवाद कहना चाहिए । यदि कुशल मंच निर्देशक इन गीतों का समायोजन या अपमार्जन परिस्थिति के अनुसार कर ले तो मालतीमाधवम् के सभी पद्यात्मक संवाद अत्यन्त आकर्षक, अभिनेय, काव्यात्मक और रसपेशल हैं, कहना नहीं होगा कि मालतीमाधवम् के संवाद चपल, सरल, कौतूहल घटनाव्यापारवर्धक हैं । यत्र-तत्र जनान्तिक या स्वगत प्रयुक्त संवाद आज के युग में अनावश्यक और अनभिनेय माने जाते हैं । कुछ अपवादों को छोड़कर गीत-योजना अभिनेयता में बाधक नहीं हैं । इनसे दर्शक रसाप्लावित हो उठता है ।

१- मालतीमाधवम् १.३३

दृश्यविधान एवं अभिनेयता

मालती माधव की कथा का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए हमने पूर्वपृष्ठों में लिखा है कि यह एक प्रेम प्रधान नाटक है जिसमें मालती और माधव, मकरन्द और मदयन्तिका के प्रेम के अनेक चित्र सोपानबद्ध रूप में अंकित हैं। नाटककार ने कथा में घात-प्रतिघात उपस्थित करने के लिये अनेक विरोधी तत्वों का समावेश किया है। एक दो अपवाद स्थलों को छोड़कर मालती और माधव का मिलन-समागम नहीं हो पाया जिसके कारण पूर्वानुराग के रूप में अंकुरित प्रेम वियोग के दाहकता में पर्यवसित होता रहा है। यहां उसके अभिनय पक्ष से सम्बन्धित क्रिया-व्यापार मंच व्यवस्था संकलनत्रय की दृष्टि से अभिनेयता या अनभिनेयता की यत्किंचित चर्चा करके इस निष्कर्ष में पहुंचने का प्रयास किया जायेगा कि क्या इस प्रकार के नाटकों का मंचन यथार्थ रूप में हुआ होगा।

मालती माधव दशांक, बद्ध प्रकरण है जिसके प्रथम अंक में तीन दृश्य हैं। भूरिवसु देवरात की प्रतिज्ञा, माधव और मकरन्द की मदनोद्यान में भेंट और परस्पर प्रेम प्रकरण की जिज्ञासा चित्रित है। जो क्रमश: दो स्थानों में घटित दिखाया गया है। समय की दूरी यहां विशेष रूप से द्रष्टव्य है जिसको लेखक ने सूच्य रूप देकर नाटकीय व्यापार की रक्षा की है क्योंकि माधव इस समय पूर्ण युवा हो चुका है और मालती से उसके विवाह की प्रतिज्ञा दोनों के जन्म से पहले की है। लगभग २० वर्ष के इस अन्तराल को पूरा करने के लिये भवभूति ने घटनाओं का विन्यास वर्तमान काल के रूप में करके शेष सूच्य रूप में वर्णित कर पाठकों की कल्पना के लिये छोड़ दिया है। द्वितीय अंक में तीन दृश्य हैं जिसमें मालती लवंगिका से अपने मन की उदात्ताकांक्षा एवं नन्दन से अपने विवाह की असमर्थता बताती है। दोनों घटनाएं मालती के भवन में ही अभिघटित होती हैं, अत: दोनों अंकों के बीच समय कार्य और स्थल का संयोजन बड़ी कुशलता से हुआ है। यहां यह उल्लेख

कर देना अप्रासंगिक न होगा कि इस अंक की कथावस्तु सूक्ष्म है, घटनाएं विरल हैं। हृदय की प्रेमानुभूति को संवादों के माध्यम से व्यक्त किया गया है, इससे कथावस्तु रुक-सी गई है। यद्यपि इस प्रकार के आरोपों की चर्चा हम अभिनय प्रकरण में करेंगे, जहां दीर्घ समास बहुला भाषा के प्रयोग के साथ एकान्तिक प्रेम की चर्चा दो या तीन पात्रों के माध्यम से की जाती है। जिससे जहां अभिनेयता में रस-व्याघात् तो होता ही है, सहृदय सामाजिक इनसे विरत हो बैठता है। तृतीय अंक में दो दृश्य भूरिवसु के भवन और मदनोद्यान से सम्बन्धित हैं। उद्यान में माधव छिपकर मालती के अपरूप सौन्दर्य का दर्शन कर मुग्ध हो रहा था कि अचानक बाघ की उपस्थिति से मालती व्याक्रांत हो मर्मन्तुद शब्दों के द्वारा माधव से रक्षा की प्रार्थना करती है। नाटककार ने अत्यन्त क्षिप्रतापूर्ण घटनाओं का संयोजन कर प्रतिघात रूप में हिंसव्याघ्र का आगमन मालती की भयातुरा अवस्था, मकरन्द की मूर्छा आदि घटनाओं का प्रस्तुतीकरण अत्यन्त क्षिप्रता से किया गया है। चतुर्थ अंक में मदनोद्यान से सम्बन्धित एक ही दृश्य है जिसमें माधव, मकरन्द एवं मालती तथा मदयन्तिका की भेंट वर्णित है। निराश माधव श्मशान में मांस बेचने को तत्पर हो जाता है। इसका अभिनय अत्यन्त सरलतापूर्वक हो सकता है। पंचम अंक में तीन दृश्य हैं जो क्रमशः श्मशान और कराला देवी से सम्बद्ध हैं। षष्ठ अंक में दो दृश्य हैं जो भूरिवसु के भवन के निकट और नगर से बाहर मन्दिर से सम्बद्ध हैं जिसमें माधव, मकरन्द, मालती, लवंगिका इत्यादि के प्रेम प्रसंग चित्रित हैं। सप्तम् अंक दो दृश्यों का है, दोनों दृश्य नन्दन भवन से सम्बन्धित हैं। नाटककार ने घटना व्यापार को चरम सीमा में पहुंचाने के लिये अत्यन्त नाटकीय व्यापार युक्त घटनाओं का विन्यास किया है। स्त्री के रूप में छद्म वेशधारी मकरन्द और नन्दन की बातचीत तथा अत्यन्त नाटकीयता से मालती माधव मकरन्द एवं मदयन्तिका से मिलने के प्रस्थान की घटनाएं कही गई हैं। सामाजिक में कौतूहल उत्पन्न करने के लिये नाटककार ने जिन घटनाओं का विन्यास किया है वे उन्हें बांधने में पूर्ण समर्थ हैं। अष्टम् अंक में तीन दृश्य हैं, तीनों कामन्दकी के विहार

का निकटवर्ती उद्यान है । सीमित परिसर में घटनाक्रम आगे बढ़ता है । कपाल-कुण्डला द्वारा मालती का अपहरण अत्यन्त जिज्ञासा कौतूहलपूर्ण एवं घात-प्रतिघात से युक्त घटनाएं हैं । नाटककार ने बड़ी कुशलता से कार्य, समय और स्थल की एकता का निर्वाह किया है । नवम् अंक में पद्मावती और उसके आसपास के स्थल से सम्बन्धित दो दृश्य बन्ध हैं । आकर्षणी सिद्धि के द्वारा सौदामिनी के साथ माधव का गमन नाटककार ने बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है । दशम अंक में एक ही दृश्य है जो पद्मावती के समीपवर्ती वनांचल से सम्बन्धित है । कामन्दकी मदयन्तिका लवंगिका अपनी सखि मालती के वियोग में पर्वत से कूदकर इहलीला समाप्त करना चाहती है । पुत्री के वियोग में भूरिवसु का अग्नि प्रवेश का संकल्प, सौदामिनी के प्रयास एवं राजा द्वारा मालती माधव के परिणय की स्वीकृति के साथ मकरन्द और मदयन्तिका के विवाह की शुभ घटनाएं विन्यस्त हैं ।

सारांश यह है कि मालती माधव में घटना व्यापार सुश्रृंखलाबद्ध आरोहावरोह से युक्त है । एकाध स्थल अपवाद स्वरूप छोड़कर कथावस्तु का अभिनय रंगमंच पर कुशलता से हो सकता है । यहां यह स्मरण है कि नाटक में अतिशय काव्यात्मकता हृदय की भावनाओं के उच्छ्वसन, लम्बे संवाद अनभिनेय होते हैं । समस्त कार्य-व्यापार बीस पच्चीस वर्षों का है जिसे नाटककार ने दश अंकों में फैलाया है । घटनाओं के बाहुल्य ने पाठकों के साथ दर्शकों को बांध रखा है । इसके लिये रंगमंच में तीन पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी । यदि प्राचीन नाट्यशास्त्रीय रंगमंच पर इसे अभिनीत होना हो तो नियमानुसार त्र्यस्र रंगमंच का विधान करना पड़ेगा । सीमित पात्र योजना के कारण यह नाटक रंगमंच में अधिक प्रभावी नाटक सिद्ध हो सकता है ।

मालतीमाधवम् में चतुर्विध अभिनय

अवस्था या कार्य व्यवहार की अनुकृति ही नाटक का मूल प्राण है । इस अनुकृति में अभिनय के चारों अंग विद्यमान रहते हैं । आंगिक अभिनय में शरीरज, मुखज चेष्टाकृत सिर, हाथ, ऊरु पार्श्व, कटि एवं मुद्राओं का, वाचिक अभिनय में संवाद एवं भाषा आहार्य अभिनय में तत्तत् पात्र के योग्य वेशभूषादि ग्रहण कर एवं सात्विक अभिनय के अन्तर्गत स्तम्भ, रोमांच आदि अभिनयों का उल्लेख किया गया है ।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि रंगमंच स्थित नट या पात्र मूल पात्र के क्रिया व्यापारों भावनाओं की अनुकृति कर अपने अभिनय से उसकी ऐसी व्याख्या करता है कि दर्शकों या सामाजिकों के नेत्रेन्द्रिय के समक्ष वर्णित घटना या क्रिया व्यापार का प्रत्यक्षीकरण होता है ।

यहाँ रंगमंच की सीमा और सामर्थ्य के अनुसार मालतीमाधवम् के घटना व्यापार पात्र योजना संवाद प्रसार की विधि और प्रकार का विश्लेषण कर हमने देखा है कि कुछ अपवादों अथवा कुछ संवादों को छोड़कर उसकी कथा रंगमंचीय और अभिनेय है । यहाँ उक्त कथा व्यापार को प्रत्यक्षीकरण करने वाले पात्रों की कायिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य सम्बन्धी जो सूचनाएं नाटककार द्वारा दी गई हैं, उनका विश्लेषण किया जा रहा है । ज्ञातव्य यह है कि उस युग में न तो आज के युग के समान प्रभावकारी प्रकाश व्यवस्था ही थी, न ही संवादों के उच्चारण के गति हेतु कोई ध्वनि विस्तारक यन्त्रों का अविष्कार ही नहीं हो पाया था । इसलिए यह मानकर चला जाये कि उस युग के नाटक राज्याश्रित प्रश्रय पाकर रंगमंच बनते थे जिनका दर्शक विशिष्ट उच्चवर्ग का होता था क्योंकि प्रेक्षागृह में अधिक संख्या होने पर पीछे बैठा सामाजिक न तो भली-भांति नट के सात्विक अभिनयों को देख सकता है, न ही संवादों के उच्चारण से उत्पन्न नाटकीयता का रसास्वादन कर सकता है । ऐसी स्थिति में नट को इतने उच्च स्वर से संवादों को प्रसारित करना पड़ेगा कि उसका सारा आकर्षण ही समाप्त

हो जायेगा । अत: उक्त तथ्यों के आलोक में नाटककार द्वारा उल्लिखित चतुर्विध अभिनय प्रकारों का उल्लेख कर रंगमंचीय प्रत्यक्षीकरण की दृष्टि से मालतीमाधव की समीक्षा की जा रही है ।

कायिक अभिनय

आचार्य भरत ने नृत्य और नाट्यविधा को केन्द्र में रखकर शरीर के अंगों द्वारा अभिव्यक्त क्रियाओं का उल्लेख किया है । उन अभिनय प्रकारों में एक प्रकार की लयात्मकता का आग्रह है, जबकि नाटक के नटों में ऐसा आग्रह नहीं होता है । भवभूति ने कायिक अभिनयों के अन्तर्गत नेत्र, मुख, हाथ, चरण, सिर, शस्त्रधारण करना पीछे देखना प्रवेश करना इत्यादि क्रियाओं का उल्लेख किया है । पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान का यथावसर भी उल्लेख किया है ।

वाचिक अभिनय

आचार्य भरत, धनंजय एवं आचार्य विश्वनाथ ने वाचिक अभिनय के अन्तर्गत शब्द शक्तियां अलंकार, रस इत्यादि का विस्तृत विवेचन किया है । उस युग में नाटककार पात्रों के वाचिक अभिनयों का उल्लेख नहीं करता था, सम्भवत: उस युग में कृतिकार और उसकी रचना का मंचन दो अलग-अलग वस्तुएं थीं । नाटक को सामूहिक कला मानकर अभिनय करने की क्षमता पर वह विश्वास करता था, इसलिए संवादों के प्रसारण में क्षिप्रता, आरोहावरोह बलाघात या इससे उत्पन्न नवीन अर्थ की छवियां देने का प्रचलन अभिनेता पर छोड़ दिया गया था । नाट्य निर्देशक जैसे कोई विशिष्ट व्यक्ति की अवधारणा न के बराबर थी । नट को ही उस परिस्थिति में अपने को ढालकर संवादों के प्रसारण के सम्बन्ध में कल्पना करनी पड़ती थी । फिर भी मालतीमाधव के उच्च स्वर में हंसने, मन्द स्मिति, वाचन और पढ़ना इत्यादि वाचिक क्रियाओं का विवरण भवभूति ने दिया है ।

सात्विक अभिनय

जिस मन में रजोगुण और तमोगुण का स्पर्श नहीं होता वही सत्व है। ऐसे सत्व मन के भावों को सात्विक भाव कहा जाता है। दशरूपक[१] में स्तम्भ, प्रलय, रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु और वैस्वर्य आठ सात्विक भाव कहे गये हैं। रंगमंच में इनका प्रदर्शन बड़ी सूक्ष्मता से किये जाने का उल्लेख है क्योंकि स्थाई भाव और व्यभिचारी भावों के साथ सात्विक भावों के अभिनय से ही रस की निष्पत्ति सम्भव होती है। मालतीमाधव में प्रेम कथा विन्यस्त की गई है। अत: नाटककार भवभूति ने मूल नायक के सात्विक भावों का अनुमान कर उस परिस्थिति में किस प्रकार के सात्विक भावों का अभिनय सम्भव है, यह स्पष्ट रूप से नाटक मालतीमाधव में किया है। नाटककार ने सात्विक भावों के सैद्धान्तिक विवेचन पर अधिक विश्वास नहीं किया है। उसने तत्तत् परिस्थिति को रसगम्य बनाने के लिये अभिनेता द्वारा अभिनीत सात्विक भावों का उल्लेख स्वमति से किया है।

आहार्य अभिनय

आहार्य का अर्थ वेशभूषा से है। नाटक को प्रामाणिक बनाने के लिये आहार्य या वेशभूषा की अत्यन्त उपादेयता है। तत्तत् पात्र की अवस्था के अनुरूप वस्त्रादि धारण कर अभिनेता सामाजिकों के नेत्रेन्द्रिय के समक्ष मूल पात्र का हेत्वाभास उत्पन्न करता है, सामाजिक आहार्य अभिनय के साथ कायिक, वाचिक, सात्विक अभिनयों को देखकर मूल अनुकार्य के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अत: नाटककार पात्रोचित वेशभूषा का यथास्थान उल्लेख करता है। भवभूति ने मालतीमाधव में पात्रोचित वेशभूषा का कम उल्लेख किया है। सम्भवत: इसका कारण यह है कि मंच में नाटक को उपस्थित करने वालों का अपना एक अलग दल, वर्ग या समूह उस समय होता था, जिन्हें एतद् सम्बन्धी पूर्ण शिक्षा

१- दशरूपक, ४.५-६

दी जाती थी । भवभूति ने यत्र-तत्र आवश्यक पात्रों की वेशभूषा का निदर्शन कराया है ।

भीषणोज्ज्वलवेषा, कृतवध्यचिन्हा, चीरान्चलेन नेत्रे परिसृज्य आदि उल्लेख मालतीमाधव में मिलते हैं ।

मालती-माधव के वस्तु-विधान पर एक मुक्त विचारदृष्टि

अब तक हम भवभूति के मालतीमाधवम् की कथावस्तु का अंक वा परिचय पा चुके हैं । जहां कहीं आवश्यक समझा है वहां उपयोगी टिप्पणियां भी की गई हैं । आइए, इस नाटक की कथावस्तु के बारे में अब कुछ खुली चर्चा कर ली जाये ।

सामान्यत: संस्कृत नाटक के बारे में यह आग्रह रहा है कि नाटक की कथावस्तु इतिहासपुराण प्रसिद्ध होनी चाहिए । इसका उद्देश्य सम्भवत: यही होगा कि ऐसी कथा से प्रेक्षकों का कुछ न कुछ परिचय पूर्व से ही होगा और जब किसी नाटक में वह कथा मंच पर अभिनीत होगी तो उसे समझने में और उसके साथ-साथ चलने में नाटक के प्रेक्षकों को समझने में अधिक सुविधा होगी, लेकिन यह धारणा कि `नाटकं ख्यात वृत्तं स्यात्` नाटक का एक पक्ष है । इसे अनिवार्य शर्त नहीं बनाया जा सकता । नाट्यकला का चातुर्य तो वास्तव में ऐसी नाटक रचना करने में ही है जहां पहले से गढ़ी-गढ़ाई कोई कहानी न हो, जहां नाटककार किसी साधारण-सी लोककथा को पकड़कर अथवा अपनी कल्पना से वैसी कोई कहानी उपजाकर नाटक रचना करता है । ऐसे नाटक में उसे सारा ताना-बाना स्वयं बुनना पड़ता है और आदि से अन्त तक उसे पार ले जाना होता है । ऐसा चातुर्य-पूर्ण वस्तु-विधान कोई ऊंचा नाटककार ही कर सकता है । हम जान चुके हैं कि मालती माधव की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध नहीं है । इसलिए ज्यों ही नाटक मंच पर उतरता है, हम उसकी कथावस्तु के बारे में रंचमात्र भी नहीं जानते । सारी कहानी पात्रों के संवादों से धीरे-धीरे पर्त-दर-पर्त खुलती जाती है । नाटक रचना

में ऐसा कर पाना कोई साधारण बात नहीं है ।

'मालतीमाधवम्' की कथावस्तु अब हम अच्छी तरह जान चुके हैं । कुल मिलाकर कहानी इतनी है कि विदर्भराज का देवरात नाम का मंत्री पड़ोसी पद्मावती राज्य का मंत्री भूरिवसु और कोई बौद्ध भिक्षुणी कामन्दकी किसी गुरुकुल में कभी साथ-साथ पढ़े थे । दोनों भूरिवसु और देवरात ने छात्र जीवन में परस्पर कभी प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि किसी के पुत्र और दूसरे के पुत्री का जन्म होगा तो उन दोनों का विवाह सम्बन्ध करेंगे । आगे दोनों मित्र अलग-अलग राज्यों के मंत्री बन गये । बात कुछ भूली बिसरी-सी रह गई । कामन्दकी आगे जाकर सन्यासनी हो गई और पद्मावती के बौद्ध विहार में रहने लगी ।

संयोग की बात देवरात ने अपना पुत्र माधव पद्मावती में अध्ययन करने भेज दिया । कामन्दकी उसे पहचानती थी, उसे छात्र जीवन में की गई अपने दोनों सहाध्यायियों की प्रतिज्ञा भी याद थी, वैसे भी भूरिवसु तो पद्मावती का ही मंत्री था, अत: अपने साथ पढ़ने वाले मंत्री परिवार में कामन्दकी की अच्छी खासी घुसपैठ थी । कामन्दकी नाम की इस बौद्ध सन्यासिनी ने देवरात के पुत्र माधव और भूरिवसु की पुत्री मालती के विवाह का बीड़ा उठा लिया और सारी विघ्नबाधाओं को बड़े ही नाटकीय ढंग से दूर कर दोनों का विवाह करा दिया ।

कहानी तो सच कहा जाये मुख्य यही है, लेकिन नाटककार ने इसके साथ ही माधव के मित्र मकरन्द और पद्मावती के राजा के नर्म सचिव नन्दन की बहन मदयन्तिका के परिणय की कहानी भी इसके साथ जोड़ दी ।

इन दोनों कथाओं के अलावा एक बहुत छोटी-सी प्रेमकथा माधव के सेवक कलहंस और विहार दासी मन्दारिका की भी जुड़ गई, लेकिन नाटक की दृष्टि से उसका केवल संकेत मात्र ही रहा है, उसका अपना कोई नाटकीय घटनाचक्र तनिक भी नहीं है ।

नाटककार ने शायद यह अंश पूरी योजना में काम आने वाले दो लघु पात्रों के बीच समीपता लाने के लिये सृजित किया है।

इन कथांशों के अलावा जो कुछ कथांश मिलते हैं, जैसे- मकरन्द के साथ व्याघ्र की भिड़ंत कापालिक का मालती अपहरण, अघोरघण्ट का बलि देते बध, माधव मकरन्द से पुलिस मुठभेड़, कपालकुण्डला द्वारा मालती का दुबारा अपहरण, श्रीपर्वत पर उसकी बलि देने का प्रयत्न, सौदामिनी द्वारा उसकी रक्षा और अन्त में सबका सुखद मिलन यह नाटककार भवभूति की कलात्मक कल्पनाएं हैं।

वस्तु-विधान की सबसे आश्चर्यकारी बात यह है कि कथा सोपान दर सोपान स्वयं खुलती है और आगे चलती है।

हम थोड़ा ध्यान दें तो देखेंगे कि भूरिवसु, पद्मावती का राजा, नर्म सचिव नन्दन देवरात कहीं भी और कभी भी मंच पर सामने नहीं आते, परन्तु नाटककार भवभूति हैं कि उनसे जुड़ा कोई सवाल अनबूझा नहीं छोड़ता ताकि नाटक देखने के बाद कोई यह कह सके कि अमुक-अमुक पात्र तो ऐसा सोचता था, ऐसा करता था, उसका क्या हुआ ?

उदाहरण के लिये पद्मावती के राजा मालती को नन्दन के लिये चाहता है। वैसा न होने पर उसने क्या किया ? इस सवाल को नाटककार ने अनुत्तरित नहीं रहने दिया। माधव और मकरन्द दोनों के शौर्य से प्रसन्न होकर दोनों कुमारियों से उसने उनका विवाह सहर्ष अनुमत कर दिया।

ऐसे ही भूरिवसु और नन्दन दोनों की इन गन्धर्व विवाहों को लेकर क्या प्रतिक्रिया रही ? यह सवाल भी अनुत्तरित नहीं छोड़ा। नाटक के अन्त में सौदामिनी द्वारा सबके मिलन पर एक पत्र पेश कर दिया गया जिसमें पद्मावती के राजा का आदेश था कि मेरे परामर्श से भूरिवसु ने माधव और नन्दन ने मकरन्द को सहर्ष दामाद स्वीकार किया।

इस नाटक के वस्तु-विधान की एक विशेषता यह भी है कि इसमें नाटकीय घटनाचक्र के स्थान की अन्विति (एकात्मता) बखूबी निभ गई है, सारा घटनाचक्र पद्मावती में चल रहा है ।

समय की अन्विति के लिये नाटककार ने 'उत्तररामचरितम्' की तरह बारह वर्ष तक की सीमा रेखा अपनाने को विवश होना आवश्यक नहीं माना है । सारी घटना कुछ दिनों, कहना चाहिए कि एकाध महीने की अवधि रखती है । घटना की एकता से समय की एकता स्वयं बन जाती है, कथावस्तु की एकता हम पहले ही जान चुके हैं ।

अब हम कुछ वे सवाल उठायें जिनका या तो हम स्वयं भवभूति बनकर यह सोचें कि क्या वैसा करना सम्भव था और सम्भव था तो कैसे और भवभूति ने वैसा नहीं किया तो क्यों ? ऐसा एक सवाल है कि क्या नाटककार इस नाटक को माधव-मालती और मकरन्द-मदयन्तिका के गान्धर्व विवाह होते ही पूरा नहीं कर सकता था अर्थात् क्या यह नाटक सात अंकों में ही पूर्ण नहीं हो सकता था । हम समझते हैं कि ऐसा किया जा सकता था ।

कुसुमाकर उद्यान में यह सम्भव था फिर क्यों नहीं किया गया । संक्षेप में यही कि शायद नाटककार के मन में यह शंका रही कि लोग पूछेंगे कि क्या कपालकुण्डला खामोश ही रह गई ? सम्भवत: अब सोचें कि क्या कपालकुण्डला पात्र के बिना घटनाचक्र पर कोई असर पड़ता, हम समझते हैं शायद नहीं, उस तरह का अपहरण मंत्र तंत्र से अघोरघण्ट स्वयं ही कर सकता था । न कपालकुण्डला हो और न विवाह के उपरान्त फिर नये सिरे से अपहरण काण्ड, तलाश और तब पुन: मिलन का घटनाचक्र चले । इस नाटक के बारे में एक बात और कि यह नाटक किन्हीं अभिजातीय मूल्यों पर टिका नहीं है, यह एक मनोविनोद की फिल्म, बहुरंगी फिल्म-सा मध्यवर्गीय नाटक है ।

स्पष्ट रूप से ऐसे नाटक की सफलता अधिक से अधिक अनहोनी बातों और रोमान्टिक योजनाओं में है । भवभूति ने ऐसा ही किया है ।

जो कुछ कहा है उस दृष्टि से कुछ और सोचें कि क्या एक रोमांटिक नाटक का वस्तु-विधान करने में भवभूति पूरी तरह सफल हैं अथवा उनके ऊपर कहीं कोई सवाल खड़े किये जा सकते हैं, इनका उत्तर इस तरह है--

१- मालती-माधव की घटना योजना की चातुरी को चुनौती नहीं दी जा सकती । कहीं कोई अधूरापन नहीं छोड़ा है । पात्र मंच पर कौन आते हैं, कैसे आते हैं, कैसे बुलाये जाते हैं, कौन घटना और पात्र नेपथ्य में सिकोड़ दिये जाते हैं । भवभूति का नाटककार अच्छी तरह जानता है ।

२- क्या दृश्य-विधान घटनाओं के अनुकूल है ? हम कहते हैं, ऐसा है । नाटक में घटना के अनुकूल दृश्यों की विविधता है ।

बौद्ध भिक्षुणियों जैसे पात्रों की चर्चा के लिये विहार या विहार का मार्ग । प्रणय प्रसंगों के लिये प्राकृतिक रम्य स्थलियां अर्थात् मदनोद्यान कुसुमाकर उद्यान, बलि देने के लिये श्मशान चामुण्डा मन्दिर और उड़ान देने के लिये ऊंचे पर्वत शिखर जैसे श्रीपर्वत आदि सभी नाटकीय दृश्य हैं ।

अब प्रश्न ये कि नाटक-कार नाट्यकला की दृष्टि से कहीं-कहीं चूक भी कर बैठा है अथवा नहीं । हम कहते हैं ऐसा हुआ है । भवभूति के नाटककार में कई भटकाव मिलते हैं ।

नाटककार के भटकाव

१- प्रथम तो अनेक गद्य संवादों को भाषायी दृष्टि से नाटकीय संवाद स्वीकारना एकदम असम्भव है । इन संवादों की रचना में भवभूति भूल गया है कि वह कादम्बरी जैसी कोई गद्य कथा नहीं लिख रहा है वह एक रोमांटिक नाटक लिख रहा है ।

ऐसे संवाद न केवल लम्बे हैं बल्कि भाषा रचना की दृष्टि से अत्यन्त क्लिष्ट और लम्बे-लम्बे समास वाक्यों वाले हैं, अप्रसिद्ध शब्दों वाले हैं । सबसे बड़ा दोष ये कि संयुक्ताक्षरों वाले हैं जिन्हें लवंगिका जैसे साधारण नारी पात्र की बात ही क्या, किसी प्रौढ़ पण्डित पात्र द्वारा भी मंच पर संवाद शैली से बोला जाना कठिन लगता है । संवाद रचना की यह गम्भीर चूकें भवभूति का कोरा पाण्डित्य प्रदर्शन है और ये चूकें उसके 'उत्तररामचरितम्' में भी कम नहीं हैं ।

२- गीत वा श्लोकात्मक संवाद नाटक में वे ही स्वागत योग्य कहे जा सकते हैं जो गद्य संवाद की तुलना में कुछ अधिक चुस्ती रखते हैं या फिर गहरी अनुभूतियों वाले हैं । अधाधुंधी से इनका प्रयोग नाटककार का कविता कौशल तो बता सकता है लेकिन नाटककार को कवि से पीछे धकेल देता है ।

इसी प्रकार कहीं-कहीं हम यह भी देखते हैं कि भवभूति के मंच पर किसी पात्र को आवश्यकता से अधिक लम्बे दौर तक मूक रहना पड़ता है, जैसा कि अट्टालिका पर तीसरे अंक के दृश्य में अवलोकिता के साथ होता है ।

अस्तु, समग्र रूप से विचार करने पर यह निष्कर्ष लिया जा सकता है कि मालतीमाधव का वस्तुशिल्प असाधारण है और यह युवा नाटककार भवभूति की एक चिरस्मरणीय नाट्य रचना रहेगी ।

अध्याय - 4

महावीर चरितम् वस्तु विधान

1. नाट्य शास्त्रीय दृष्टि

2. रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य

४

महावीर चरितम् : वस्तु विधान

महावीरचरित नाटककार भवभूति के तीनों नाटकों में उसकी सबसे पहले की गई नाट्य रचना मानी जाती है। इस नाटक की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण की रामकथा का नाटक रूपान्तर ही कहा जा सकता है। कथावस्तु की यह वास्तविकता नाटककार भवभूति ने स्वयं इन शब्दों में स्वीकार की है--

> प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथम: कवीनां यत्पावनं रघुपते: प्राणिनाय वृत्तम्।
> भक्तस्य तत्र समरंसत मे पि वाचस्तत्सुप्रसन्नमनस: कृतिनो भजन्ताम्।।[१]

इस श्लोक-संवाद में यह स्वीकृति वचन किया गया है कि मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने रघुवंशी राम के जिस, आदर्श चरित्र का उपनिबन्धन रामायण काव्य में किया है वह नाटककार के रूप में मुझे बहुत आकर्षणपूर्ण लगा है। अतएव मैंने उसे अपनाकर 'महावीरचरित' नाम की यह नाट्यकृति प्रस्तुत की है।

केवल इतना ही नहीं नाटककार भवभूति ने महावीरचरित की प्रस्तावना में यह भी बहुत स्पष्ट रूप से सूचित कर दिया है कि रामायण के अनुसार यों तो रघुवंशी नायक राम के चरित्र में कितने ही आदर्श और श्रेष्ठ गुण वर्णित किये गये हैं, किन्तु महावीरचरित नाटक की रचना करने के लिये राम के महान चरित्र का एक विशिष्ट पक्ष ही सामने रखा गया है, वह विशिष्ट पक्ष राम का शौर्यपूर्ण व्यक्तित्व है जिसने अपने महावीरोचित कर्मों से लोक का उत्पीड़न करने वाली राक्षस-शक्तियों का समूल विनाश किया था।[२] नाटककार के इस प्रस्तावना कथन से नाटक की एक विशेष दिशा का स्वत: बोध हो जाता है। नाटक की वह विशेष दिशा उसमें किये जाने वाले राम के शौर्यपूर्ण कार्यों का प्रदर्शन है। इसका

१- महावीर० १.७

२- वही १.६

अर्थ यह हुआ कि हमारा यह नाटक नाट्यशास्त्रीय भाषा में वीर-रस का नाटक होगा ।

जैसाकि प्रत्येक नये नाटककार के बारे में हो सकता है वैसा ही भवभूति के बारे में भी सोचा जा सकता है । किसी भी नये नाटककार के लिये यह सम्भव नहीं होता कि वह सहसा अपनी कल्पना से पैदा करके किसी ऐसी नाट्य-कथा को जन्म दे सके, जिसे मंच पर अभिनीत होता देखकर लोग वाह-वाह कर उठें । हरेक नये नाटककार को पहले अपने से पूर्व में पैदा हुए साहित्यकारों द्वारा तैयार की हुई धरती पर पैर रखकर ही चलना होता है । भवभूति ने ऐसा ही किया है ।

यहां एक विशेष बात यह भी ध्यान देने की है कि कोई भी नया नाटककार अपने से पूर्व की साहित्य-परम्परा से प्राप्त विषय-वस्तुओं में से अपनी नई रचना के लिये जब किसी एक वस्तु का चयन करता है तो उसे न केवल अपनी अभिरुचि का ही ध्यान रखना होता है बल्कि उसे यह भी देखना होता है कि अपनी ओर से वह जिस विषय-वस्तु का चयन करना चाह रहा है, उसके बारे में लोक-मानस की क्या स्थिति है । हमारे कहने का आशय यह है कि कोई भी नाटक रचना लोक-धर्मी साहित्य-रचना होने से अंतत: लोक के लिये ही अर्पित की जाती है । इसलिए एक नये रचनाकार के लिये यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि वह परम्परा से प्राप्त विषय-वस्तुओं से भी जब किसी विषय-वस्तु का चयन करे, तो यह देखले कि उस पर आधारित नाट्य-रचना लोक-मानस को अपने साथ-साथ बांधकर ले चलने में समर्थ हो सकेगी अथवा नहीं । एक नए किन्तु कुशल नाटककार के रूप में भवभूति अच्छी तरह जानता था कि वाल्मीकि के रामायण काव्य का नायक रघुवंशी राम एक ऐसा चरित्र है जिसके आख्यान और चारित्रिक मूल्यों के साथ लोक-मानस पूरी गहराई से जुड़ा हुआ है । वह यह भी जानता था कि ऐसे लोकप्रिय चरित्र को अपनाकर एक नये नाटककार के रूप में वह अपने पैर जमा सकता है ।

भवभूति द्वारा वीर-रस प्रधान महावीरचरित को पहल दिये जाने का एक यह कारण भी समझा जाना चाहिए कि वीर और शृंगार दो इस प्रकार के मनोभाव होते हैं जिनके साथ प्रेक्षकगण बहुत ही सरलता से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। एक नये रचनाकार को अपनी पहली नाट्यरचना के साथ प्रेक्षकगण के तादात्म्य का स्वभावत: एक बहुत बड़ा चाव रहता है।

पूर्व अध्याय में महावीरचरित नाटक के कथानक का अंकवार सर्वेक्षण करते हुए हम यह देख चुके हैं कि इस सात अंक के नाटक में नाटककार भवभूति को रामायण महाकाव्य में वर्णित सम्पूर्ण राम कथा को अपने नाटकीय दृष्टिकोण को प्रधानता देते हुए समेटना पड़ा है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि रामायण में वर्णित राम के आख्यान में जन्म से लेकर उसके विश्वामित्र यज्ञ-रक्षा, ताटकादि वध, शिव धनुर्भंग, सीता-विवाह, परशुराम-विवाद, राज्याभिषेक और वनवास घोषणा, वनगमन, भरत-मिलन, शूर्पणखा कर्ण नासाच्छेद, खर-दूषण आदिवध, सीताहरण, सुग्रीव मैत्री, बालि-वध, विभीषण मैत्री, लंका-युद्ध, रावण वध और सीता को पुन: प्राप्त कर अयोध्या गमन तक घटनाओं का एक विशाल अम्बार खड़ा हुआ है। रामायण जैसे महाकाव्य के विविधतापूर्ण और जटिल घटनाचक्रों से नायक राम के शौर्यपूर्ण कार्यों का चयन करके उन्हें एक नाटक में रूपायित कर सकना कोई सरल कार्य नहीं है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि राम के वे शौर्यपूर्ण कार्य जो रामायण के अनुसार ताटका वध से लेकर रावण-वध तक फैले पड़े हैं केवल उन्हीं को चुनकर एक नाटक के रूप में मंच पर उतार देना नाट्यकला की दृष्टि से बहुत कठिन कार्य है। भवभूति ने इस कठिन कार्य को कर दिखाने का बीड़ा उठा लिया है। यह दुस्साध्य कार्य पूरा करने में भवभूति ने महावीरचरित नाटक के वस्तु-विधान में कौन-कौन से चातुर्यपूर्ण प्रयोग किये, नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उसकी इतिवृत्त योजना कितनी सफल और कितनी प्रभावी हो सकी तथा रंगमंचीय दृष्टि से 'महावीरचरित' की क्या स्थिति है, इन बिन्दुओं पर बहुत ही खुली दृष्टि के साथ विचार यहां किया जायेगा।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि

नाटक का इतिहासमूलक आख्यान

संस्कृत-नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटक का मुख्य आधार उसकी कथावस्तु होती है। यह कथावस्तु मुख्यत: तीन रूपों में ही उपलब्ध हो सकती है। इतिहास प्राप्त, कल्पनाप्रसूत, मिश्रित।[१] सामान्यत: नाटककार परम्परा से प्राप्त इतिहास पुराण से किसी ऐसे आख्यान का चयन कर लेता है जिसे आधार बनाकर वह नाटक के रूप में एक अच्छी दृश्य-रचना प्रेक्षकगण के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है। इतिहास आख्यान के अपनाने में नाटककार को सबसे बड़ी एक सहूलियत यह रहती है कि ऐसा आख्यान तथा ऐसे आख्यान से जुड़े पात्रों और स्थानों का काफी कुछ परिचय प्रेक्षकगण के पास पहले से ही सुरक्षित होता है। इस तरह के सुपरिचित आख्यान पर आधारित नाटक जब मंच पर उतरता है तो प्रेक्षकगण तक नाटक के सन्देशों का सम्प्रेषण करने में कोई कठिनाई नहीं आती है। प्रेक्षकगण पूरी विश्वसनीयता के साथ नाटकीय दृश्य-विधान और घटनाक्रम के साथ सरलता से जुड़ते चले जाते हैं।

नाट्यशास्त्रीय-दृष्टि से कथावस्तु का दूसरा रूप इतिहासमूलक न होकर नाटककार की अपनी कल्पना की सृष्टि हो सकता है। जहां कहीं नाटक का इतिवृत्त कवि कल्पनाप्रसूत होता है वहां नाटककार पूरी तरह से स्वयंप्रभु होता है। वह अपनी योजना के अनुसार एक निश्चित आरम्भ बिन्दु से एक निश्चित अन्तिम बिन्दु तक स्वयं नाटकीय कथानक का निर्माण करता है, जहां और जैसे आवश्यक समझता है वहीं मुख्य कथानक की सहयोगी कथायें संजो देता है। जैसे दृश्य-विधानों में अभिरुचि रखता है, घटना के अनुरूप वैसे ही दृश्य-विधान भी स्वतंत्रता से कर देता है। इतिहासमूलक नाटकीय वस्तु-विधान की तरह उसके सामने यहां देश, काल और स्थान के प्रतिबंधों का दबाव नहीं रहता। यहां तो केवल

१- दशरूपक १.१५

एक बात की सबसे बड़ी आवश्यकता होती है और वह यह कि पूरी की पूरी वस्तु योजना में घटनाओं, पात्रों और घटना-दृश्यों के बीच एक तर्कसंगति होनी चाहिए। यह तर्कसंगति नाटककार किस तरह प्राप्त करता है, इसे हम भवभूति के 'मालती-माधव' के वस्तु-विधान की समीक्षा करते हुए अच्छी तरह जान सकेंगे।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटकीय कथावस्तु का एक तीसरा रूप इतिहास और कवि कल्पना का मिश्रण हो सकता है।

नाट्यशास्त्रीय कथावस्तु के जिन तीन रूपों की हमने चर्चा की है, उनको दृष्टिगत करते हुए जब हम भवभूति के महावीरचरित की कथावस्तु की ओर ध्यान देते हैं तो अतिरिक्त रूप से यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि इस नाटक का इतिवृत्त अंशत: नहीं पूरी तरह इतिहासमूलक है। यह इतिहासमूलक आख्यान नाटककार ने घोषित रूप से वाल्मीकि के रामायण नामक इतिहास-काव्य से प्राप्त किया है। परन्तु कथानक को इतिहासमूलक कह देने का यह अर्थ नहीं लिया जा सकता कि ऐसा करके नाटककार भवभूति ने नाट्यवस्तु का कलात्मक विधान करने में तथा उसे कलात्मक रूप देने में नाटककार की कलात्मक कल्पना के अधिकार को ही पूरी तरह खो दिया है। महावीरचरित नाटक के इतिहासमूलक इतिवृत्त की नाटकीय वास्तविकता बहुत कुछ विपरीत है। रामायण से प्राप्त किये गये मौलिक कथानक में नाटककार ने अपनी वस्तुयोजना का नाटकीय आवश्यकता के अनुरूप विधान करने के लिये जिस तरह से नि:संकोच परिवर्तन कर डाले हैं, वह एक नये नाटककार का दुस्साहस ही कहा जायेगा। वाल्मीकि रामायण के सुस्थिर कथानक में मनमाने ढंग से नाटकीय परिवर्तन पैदा कर देने वाले हमारे इस नाटककार को अपने प्रेक्षकगण तथा नाटकों के समीक्षक महानुभावों से कुछ अवज्ञाएं भी मिली हों तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। परन्तु भवभूति का नाटककार तो अपनी धुन का पक्का है। वह जानता है कि प्रत्येक कलाकार के अपने कुछ विशेष अधिकार होते हैं। वह अपनी जिस कृति योजना को लेकर चलता है, उस योजना और योजना के लक्ष्य तक पहुंचने

के लिये किस उपकरण का उसे कहाँ और कैसे प्रयोग करना है, यह वही जानता है और यह उसका ही अधिकार है। भवभूति ने महावीरचरित नाटक का वस्तुविधान करने में कलाकार के इस विशेष अधिकार का बिना किसी निंदा और आलोचना की चिंता किये प्रयोग किया है। उसके लिये वाल्मीकि रामायण से राम की शौर्यगाथाएं अवश्य मिली हैं परन्तु उन सबका रचनाविधान, उन सबका देश-काल और उन सबका आगे-पीछे का ताना-बाना, यह सब नाटककार भवभूति ने अपनी नाटकीय दृष्टि और नाटकीय आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया है।

महावीरचरित नाटक लिखते हुए भवभूति के नाटककार के मस्तिष्क में यह बात पूरी तरह छायी रही लगती है कि वह एक रघुवंशी नायक के महावीरोचित ऐतिहासिक कार्यों को चमकाने वाला नाटक लिख रहा है अर्थात् एक वीर रस का नाटक लिख रहा है। अत: उसकी वस्तुयोजना से उन स्थानों और भावुक प्रसंगों को यथासम्भव दूर रखा जाये, जो वीर रस के अनुकूल नहीं हो सकते। इस उद्देश्य के लिये यदि कुछ कथांश, पूरी तरह परिष्कृत न किये जा सकें तो कम से कम उन्हें गौणस्थिति में डालकर उनका विस्तार रोक दिया जाये।

भवभूति के महावीरचरित का वस्तुविधान नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से सोचें तो प्रयोगधर्मी कहा जायेगा। नाटककार ने रामायण से इतिवृत्त तो अवश्य ग्रहण किया है परन्तु उसमें इतने सारे नये-नये प्रयोग और परिवर्तन कर दिये हैं कि देखते ही बनता है। नाटककार द्वारा रामायण के मूल कथानक में किये गये नाटकीय परिवर्तनों का यह परिणाम है कि महावीरचरित केवल एक वीररस नाटक ही नहीं बल्कि एक कूटनीतिक नाटक भी बन गया है।

नाटककार के द्वारा रामायण के मूल कथानक में जो प्रयोगात्मक नाटकीय परिवर्तन किये गये हैं, वे इस प्रकार हैं--

१- रावण के प्रधान अमात्य माल्यवान द्वारा सर्वमाय दूत को भेजकर सीरध्वज जनक और कुशध्वज से सीता की मंगनी का प्रस्ताव[1] नाटककार की नवीन कल्पना है। नाटक की दृष्टि से देखा जाये तो सीता-मंगनी के इस प्रस्ताव का तिरस्कार हो जाना ही राम-रावण के बैर का 'बीज' बो जाना है।[2]

२- राम और सीता के विवाह से खिन्न, ताटका वध से संत्रस्त और राम को दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति से भयभीत माल्यवान् कूटनीति के बल पर राम जैसे सबल प्रतिपक्षी से निबटना चाहता है।[3] वह शिवधनुष के भंग करने के राम के पराक्रम को एक अपराध बताकर परशुराम को महेन्द्र द्वीप जाकर उकसाता है। परशुराम राम का वध करने का निश्चय करके राम के विवाह उत्सव में मिथिला जा धमकते हैं। रामायण के मूल कथानक में ऐसी कोई कूटनीतिक योजना नहीं है। यह भवभूति की अपनी नाटकीय सूझबूझ है।

३- भवभूति ने राम के वनप्रेषण के मूल वृतांत में भी असाधारण मौलिक उद्भावना कर डाली। उसने राम के वन जाने की कैकेयी की मांग को भी माल्यवान् की कूटनीति की झोली में डाल दिया। महावीरचरित के अनुसार यह कैकेयी नहीं, माल्यवान् की कूटनीति है जो राम का वनवास करती है। माल्यवान एक कापटिक गुप्तचर के रूप में शूर्पणखा का प्रयोग करता है।[4] वह कैकेयी की सेविका मन्थरा के रूप में मिथिला के विवाह उत्सव में जाकर कैकेयी की ओर से एक जाली पत्र सीधे राम तक पहुंचा देती है। इस पत्र के द्वारा भरत को अयोध्या का राज्य और राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास मांग लिया जाता है।

१- महावीर० १.३०

२- वही १.५६

३- वही २.१-४

४- वही ४ विष्कंभक

केवल इतना ही नहीं रामायण की मूलकथा से हटकर महावीरचरित का नाटककार राम को विवाह होते ही मिथिला से सीधा वन भेज देता है । चित्रकूट का भरतमिलन भी जो रामायण का सबसे अधिक संवेदनशील प्रसंग है, चलते-चलते मिथिला में ही करा दिया गया है । भरत के लिये राम की पादुकाएं वहीं मिल जाती हैं ।[१]

४- महावीरचरित में रामायण के बालि-वृतांत को भी एक अद्भुत नाटकीय मोड़ दे दिया गया है । इस नाटक में बाली-सुग्रीव के शत्रु होने के कारण राम द्वारा वृक्ष की आड़ लेकर नहीं मारा जाता । उल्टे बाली रावण का मित्र होने के नाते माल्यवान् की कूटनीति के अन्तर्गत राम का वध करने के लिये राम से खुला युद्ध करने को आगे आता है ।[२]

५- विभीषण के मैत्रीप्रसंग में भवभूति ने नाटकीय परिवर्तन कर दिखाया है । यह मैत्री सुग्रीव के ऋष्यमूक पर्वत पर रामसुग्रीव मैत्री के साथ ही सम्पन्न होती है, लंका के सागर तट पर नहीं । इस मैत्री का चरित्र भावात्मक नहीं, पूरी तरह से राजनीतिक है ।[३]

भारतीय जनमानस में एक-एक घटना और देशकाल आदि को लेकर इतिहास की तरह रूढ़ हो चुकी राम की रामायणी कथा में इस तरह के प्रयोगधर्मी परिवर्तन भवभूति जैसा रूढ़ितोड़ नाटककार ही कर सकता है । इस तरह के क्रांतिकारी परिवर्तनों से एक बार को भवभूति के युग के रूढ़ियों से बंधे प्रेक्षकगण खीस उठें हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । कदाचित् रूढ़िवादियों की खीस से पाला पड़े भवभूति को उद्विग्न होकर अपने बाद के नाटक मालतीमाधव की प्रस्तावना में

१- महावीर० ४.४१

२- वही ५.४३

३- वही ५.६०

यह कहना पड़ा था--

ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्न: ।
उत्पत्स्यते मम तु को पि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।[१]

प्रश्न उठता है कि भवभूति ने रामायण के मूल कथानक के विरुद्ध जाकर इस तरह के परिवर्तन नाटकगत किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किये ? इस बारे में सामान्यत: भवभूति के नाटक समीक्षकों की धारणा है इन परिवर्तनों का मुख्य उद्देश्य तो कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों के चरित्र का उत्कर्ष स्थापित करना है । कैकेयी के स्तर की एक राजमाता के लिये यह अनुचित था कि वह राजपरिवार को विनाश के मुंह में धकेल देने वाले घिनौने वर अपने पति से मांगे । वह भी ऐसे कठोर वर जो प्रत्यक्षत: उसके वैधव्य को आमंत्रित कर रहे हों । नाटककार भवभूति के लिये एक माता के चरित्र का ऐसा पतन स्वीकार्य नहीं था, अत: उन्होंने इस कुकृत्य को माल्यवान की कूटनीति का प्रयोग बना दिया ।

इसी प्रकार राम जैसे वीर और आदर्श नायक के द्वारा धोखे से बाली का वध करना भी नाटककार भवभूति को वीरोचित चरित्र के विरुद्ध प्रतीत हुआ । अत: अपने नायक का चरित्र इस कलंक से मुक्त रखने के लिये उसने माल्यवान् की कूटनीति के अन्तर्गत बाली को रावण की मित्रशक्ति के रूप में खुले युद्ध में उतार दिया ।[२]

इसी प्रकार माल्यवान द्वारा कूटनीतिक विधि से राम के विरुद्ध उत्तेजित करने का नाटकीय वस्तुविधान भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपना औचित्य रखता है ।

१- मालतीमाधव १.६

२- डा० गंगासागर राय - महाकवि भवभूति, पृ० ४५

यदि ऐसा न किया जाता तो दक्षिण के महेन्द्रगिरि से परशुराम का अचानक मिथिला आ पहुंचना बड़ा ही अस्वाभाविक होकर रह जाता ।[१]

हमें लगता है कि इस तरह के परिवर्तन कुछ विशेष प्रकार की नाटकीय रचनागत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये किये गये हैं । मंथरा प्रविष्ट शूर्पणखा से वनवास काण्ड पूरा हो जाने से नाटकीय इतिवृत्त को अयोध्या से पूरी तरह छुटकारा मिल जाता है अर्थात् अप्रासंगिक विस्तार से बच जाता है । अयोध्या से राम के किसी वीरोचित पराक्रम का कोई घटनासम्बन्ध नहीं है ।

दूसरी परिवर्तनों से भी कूटनीतिक प्रतिस्पर्धा दो विरोधी राजनीतिक शक्तियों के बीच युद्ध जैसे शौर्य कार्यों की दृढ़ मनोभूमि बनाती है । महावीरचरित का नाट्यविधान इसी मनोभूमि पर किया गया है ।

रामायण से प्राप्त इतिहासमूलक इतिवृत्त में उपर्युक्त प्रकार के प्रमुख परिवर्तनों से भिन्न भी कुछ और परिवर्तन और नये प्रयोग भवभूति ने महावीरचरित की कथा-वस्तु में किये हैं । वे परिवर्तन क्या हैं और उनमें निहित नाटककार का क्या उद्देश्य हो सकता है ? इस बारे में भवभूति की नाट्यकला के अध्येता ने प्रकाश डालते हुए लिखा है[२]--

१- भवभूति ने राम और लक्ष्मण के साथ सीता और उर्मिला का मिलन मिथिला के बजाय विश्वामित्र के सिद्ध-आश्रम में दिखाया है । इसके पीछे नाटककार का उद्देश्य मिलन के प्रथम क्षण में ही प्रेम का उदय दिखाना हो सकता है ।

२- रावण की ओर से सर्वमाय के द्वारा सीता मंगनी का प्रस्ताव पूरी तरह से भवभूति का नया आविष्कार है । सर्वमाय, कुशध्वज और विश्वामित्र से लंकेश

१- डा० गंगासागर राय - महाकवि भवभूति, पृ० ४६,

२- विमला गेरा, माइंड एण्ड आर्ट आफ भवभूति, पृ० ५३-५४,

के लिये सीता की मंगनी करता है । मंगनी का यह प्रस्ताव तो स्वीकार नहीं होता उल्टे सर्वमाय को ताटका और सुबाहु का वध देखना पड़ता है । वह यह भी देखता है कि इस राक्षस-वध के बदले में विश्वामित्र राम को दिव्य `जृम्भकास्त्र` प्रदान करता है । इन सब घटनाओं का संयोजन करने में नाटककार का उद्देश्य लंकेश रावण के दूत को राम के पराक्रम से अच्छी तरह परिचित करा देना रहा है । सीता-मंगनी का ठुकराया जाना ही महावीरचरित की दृष्टि से राम-रावण युद्ध का द्वार खोल देता है ।

३- महावीरचरित के वस्तु-विधान में नाटककार का एक नया प्रयोग माल्यवान और शूर्पणखा की उस गुप्त मंत्रणा में मिलता है जहां वे दोनों राम और रावण की पक्ष-प्रतिपक्ष शक्ति का विचार करते हैं । इस प्रयोग से ऐसा लगता है जैसे नाटककार ने अपने युग की राजनीति को नाटकीय अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

४- नाट्यशास्त्रीय अनुशासन के दबाव से भवभूति ने राम और परशुराम, राम और बाली तथा राम और रावण परिवार के मध्य हुए किसी भी युद्ध को मंच पर नहीं आने दिया है । रामायण के इतिवृत्त के अनुसार तो ये सब खुले युद्ध हैं ।

सुसंबद्ध अवयवी के रूप में वस्तु विधान

संस्कृत की नाट्यशास्त्रीय परम्परा नाटकीय वस्तु-योजना को एक सुसंबद्ध अवयवी के रूप में देखने की पक्षधर रही है । भरत का `नाट्यशास्त्र` हो चाहे धनंजय का `दशरूपक` अथवा विश्वनाथ का `साहित्यदर्पण` सभी का यह आग्रह रहा है कि नाटक का वस्तु-विधान पंचसंधि समन्वित होना चाहिए । वस्तु योजना में जिन्हें मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण सन्धियां बताया गया है, वे वास्तव में नाटक की कथावस्तु के क्रमिक विकास की मनोवैज्ञानिक कड़ियों के अलावा और कुछ नहीं हैं । ये कड़ियां जब एक दूसरे से सही-सही मिली होती हैं तभी नाटक का वस्तु विधान एक सुसंबद्ध अवयवी के रूप में चमक सकता है ।

वस्तु योजना को एक सुसंबद्ध अवयवी के रूप में ग्रथित करने के उद्देश्य से ही हमारे नाट्यशास्त्र में नाटकीय वस्तुविधान के लिये पांच कार्य अवस्थाओं का आविष्कार किया गया है । इनके बारे में ग्रन्थकारों के और चाहे जो मतभेद हों परन्तु तात्पर्यार्थ सबका एक ही जान पड़ता है । तात्पर्य केवल इतना है कि कोई भी नाटक रचना जिस कार्य-विशेष अर्थात् घटना विशेष को केन्द्र में रखकर चल रही है, उस घटना का आदि से अंत तक एक क्रमबद्ध और अन्वितिपूर्ण विकास नाटक में प्रदर्शित किया जाना चाहिए । कार्य की ये पांचों अवस्थाएं नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम नामों से बताई गई हैं । अनेक बार नाट्य-शास्त्र के व्याख्याता लोग इनके बारे में नायक के सापेक्ष सोचते पाये जाते हैं । वे सोचते हैं कि नाटक के घटनाचक्र में यह देखा जाये कि नायक के द्वारा संचालित होने वाला नाटकीय कार्य व्यापार आरम्भ, यत्न आदि पांच सोपानों से क्रमश: विकसित होकर एक सुसंबद्ध अवयवी हो सका है अथवा नहीं ।

हमारा अपना विचार है कि वस्तु-विधान के बारे में कार्य-अवस्थाओं के नाट्यशास्त्रीय विचार को कुछ अधिक व्यापक दृष्टि से लिया जाना चाहिए । यहां सवाल नायक द्वारा संचालित घटनाचक्र का ही नहीं है, असली सवाल नाटककार द्वारा सृजित किये जा रहे नाटकीय घटनाचक्र का है । हमें यह देखना चाहिए कि नाटककार अपनी नाट्यकृति में प्रस्तुत किये जा रहे घटनाचक्र का आकर्षणपूर्ण और तर्कसंगत आरम्भ कर सका है अथवा नहीं, आरम्भ के बाद उसके तर्कसंगत विकास का सही प्रयत्न हो सका है अथवा नहीं, नाटकीय घटनाचक्र में आशा और निराशा का द्वन्द्व बना सका है या नहीं, नाटकीय घटनाचक्र को असमंजस से निकालकर सामंजस्य की ओर बढ़ा सका है या नहीं, साथ ही, सभी क्रमिक सोपानों से गुजरकर घटनाचक्र को उस वांछित मंजिल तक प्रभावी ढंग से पहुंचा सका है अथवा नहीं, जिस मंजिल का अपनी नाट्यरचना के लिये उसने स्वयं चयन कर रखा है ।

वस्तु विधान के बारे में उपर्युक्त प्रकार की खुली नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो स्थिति इस प्रकार खुलकर सामने आती है। महावीर-चरित के नायक राम को जब हम नाटकीय कार्य अर्थात् 'एक्शन' की दृष्टि से देखते हैं तो लगता है कि उसकी ओर से न तो नाटकीय कार्य अर्थात् 'एक्शन' का स्वत: कोई आरम्भ ही किया जाता है और न ही कोई प्रयत्न विस्तार। सारे का सारा कार्य आरम्भ यदि सही दृष्टि से देखा जाये तो घटनाचक्र के सूत्रधार विश्वामित्र के द्वारा किया जा रहा है। यह विश्वामित्र ही हैं जिसके अपने संकल्प में नाटक का सारा घटनाचक्र घूमता प्रगट होता है--

रक्षाध्वानि च मंगलानि सुदिने कल्प्यानि दारक्रिया
वैदेह्याश्च रघूद्वहस्य च कुले दीक्षाप्रवेशश्च न: ।
आस्थेयानि च तानि तानि जगतां क्षेमाय रामात्मनो
दैत्यारेश्चरिताद्भुतान्यथ खलु व्यग्रा: प्रमोदामहे ।।[१]

विदेहपुत्री सीता के साथ राम का विवाह, यज्ञसम्पादन और ताटकादि-वध तथा शस्त्र दीक्षा तथा लोक कल्याण के लिये राम द्वारा रावण आदि दैत्यों का विनाश, ये ही सब तो मिलकर महावीरचरित नाटक के कार्य अथवा घटनाचक्र हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महावीरचरित नाटक की दृष्टि से ये सारे नाटकीय कार्य किये तो नाटक के नायक राम द्वारा ही जाते हैं किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि सारे कार्य-व्यापार का सूत्रधार विश्वामित्र ही ज्ञान पड़ता है।

विश्वामित्र के अलावा, यदि प्रतिपक्षी नायक रावण के अवलोकनबिन्दु से देखें तो सूत्रधार माल्यवान् सामने आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महावीर-चरित नाटक में घटनाचक्र का संचालन सूत्र नायक और प्रतिनायक किसी के हाथ में नहीं है। सूत्रसंचालन तो दूसरे ही हाथों में है। इस दृष्टि से भी भवभूति के

१- महावीरचरित १.१२

महावीरचरित का वस्तुविधान बहुत कुछ प्रयोगधर्मी हो जाता है। कार्य-व्यापार का नेता नायक स्वत: न होकर एक संचालित पात्र की तरह पूरे कार्य-व्यापार का वहन करने वाला हो जाता है।

अब वस्तु-विधान के बारे में थोड़ा-सा नाटककार के अवलोकन बिन्दु से देखें तो हम कह सकते हैं कि विश्वामित्र और माल्यवान के अलावा नाटकीय कार्य व्यापार का आरम्भ से लेकर निर्वहण बिन्दु तक क्रमबद्ध संचालन करने वाला यदि कोई है तो स्वयं नाटककार भवभूति ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उसने नाटक के घटनाचक्र का आरम्भ विश्वामित्र के सिद्ध आश्रम में बहुत ही नाटकीय कौशल के साथ किया है। उसने लंकेश रावण के अमात्य माल्यवान की ओर से अपने स्वामी के लिये सीता मंगनी का प्रस्ताव कराके तथा उसका तिरस्कार कराके नाटकीय कार्य व्यापार में आदि से अंत तक चलने वाले राजनीतिक द्वन्द्व का सही-सही आरम्भ कर दिया है।

महावीरचरित नाटक के वस्तु-विधान में हम यह भी साफ-साफ देखते हैं कि कार्य की आरम्भ-अवस्था में पैदा किया गया राजनीतिक द्वन्द्व ही कार्य की प्रयत्न अवस्था को बढ़ा रहा है। दिव्यास्त्र प्राप्त राम को प्रबल शक्ति से निबटने के लिये माल्यवान अपने कूटनीतिक यत्न-जाल का विस्तार कर देता है। पहले वह परशुराम के गुरू शिव का धनुष तोड़ दिये जाने के बहाने 'महेन्द्रगिरि' पर बसे परशुराम को उकसाकर राम का वध करा देने का कूटनीतिक यत्न जाल फैलाता है और फिर ऐसा ही प्रयत्न राम का वध करा देने के लिये बाली को उकसाकर करता है।

महावीरचरित नाटक के कार्य अर्थात् 'एक्शन' की तीसरी अवस्था जिसे नाट्यशास्त्र की भाषा में प्राप्त्याशा कह सकते हैं वह राम के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर सीताहरण के बाद सम्पन्न हुई सुग्रीव, विभीषण की राजनीतिक मैत्री में

देखी जा सकती हैं । यहां भी नाटक के नायक राम का घटनाचक्र में, सीधा कोई उद्योग नहीं है । यह घटनाओं के नाटकीय संयोजन का योजनाबद्ध परिणाम है ।

महावीरचरित नाटक के एक्शन की नियताप्ति अवस्था तब आरम्भ हो जाती है, जब सुग्रीव और विभीषण की मैत्री पाये राम के पक्ष की ओर से लंका-दहन जैसी घटनाएं हो जाती हैं, माल्यवान कूटनीतिक मात स्वीकार लेता है, आतंकित लंका के सैनापति सुरक्षा के लिये द्वारों की अर्गलाएं डाल देते हैं और लंका के राजा रावण को यह तक पता नहीं कि पानी सिर से उतर चुका है । नाटक के नायक राम की दृष्टि से देखें तो घटनाचक्र फलागम की ओर झुक चुका है और नाटककार भवभूति की दृष्टि से देखें तो एक सुसंबद्ध अवयवी के रूप में सारा वस्तु-विधान अपनी मंजिल की ओर बढ़ चुका है ।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से जिसे, कार्य या एक्शन की 'फलागम' अवस्था कहा जाता है वह वास्तविक अर्थ में तो प्रतिद्वन्द्वी रावण का विनाश होते ही सीता-प्राप्ति के साथ पूरी हो जाती है परन्तु भवभूति के नाटककार ने इसे खींच-तान करके राम के अयोध्या राज्याभिषेक तक पहुंचा दिया है ।

उपर्युक्त प्रकार से जब हम महावीरचरित के वस्तु-विधान पर एक खुली और गंभीर नाट्यशास्त्रीय दृष्टि डालते हैं तो निष्कर्ष यही हाथ आता है कि घटनाओं का इतना बड़ा ताना-बाना अन्वित करने में नाटककार भवभूति को बहुत आयास मोल लेना पड़ा है ।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से जिन्हें, हम वस्तु योजना को सुसंबद्ध करने वाली सन्धियां कहते हैं उन्हें महावीरचरित के घटनाचक्र में हम अलग-अलग मोड़ों पर देख सकते हैं । मुख? प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहार नाम के ये सभी मोड़ महावीर चरित नाटक के वस्तु-विधान में प्रत्येक कार्य-अवस्था के समानान्तर देखे जा सकते हैं ।

आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथांशों का समानुपातिक संयोजन

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से वस्तुविधान शिल्प की सुसंबद्धता का विचार एक दूसरे परिप्रेद्य से भी किया जाता है । वह दूसरा परिप्रेद्य नाट्यशास्त्रीय भाषा में 'अर्थप्रकृतियों' का समानुपातिक संयोजन कहलाता है । अर्थप्रकृतियों के अवलोकन बिन्दु से जब हम महावीरचरित के वस्तु-विधान शिल्प पर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि इसमें आधिकारिक इतिवृत्त के रूप में तो मुख्यत: राम-सीता विवाह, परशुराम वृत्त, बाली-वध तथा राक्षस कुल विनाश आदि वे घटनाएं ही ली जा सकती हैं जिनका राम के महावीरोचित शौर्य-कर्म से सीधा-सीधा सम्बन्ध है । इस आधिकारिक इतिवृत्त में राम और सीता का विवाह 'बीज' नामकी अर्थप्रकृति कहा जा सकता है । इसी से जुड़ा ताटका, सुबाहु और मारीच का वध भी बीज नाम की अर्थप्रकृति का ही हिस्सा है । महावीरचरित के विश्वामित्र के कथन से यदि हम नाटकीय वस्तु की इस बीज प्रकृति को पहचानना चाहें तो कहना होगा--

विश्वामित्र - (स्वगतम्) एष तावदोंकार: सकलराक्षससंहारनिगमाध्ययनस्य ।[1]

इसका सीधा-सीधा अर्थ निकलता है कि ताटका वध करके राम ने 'सकल राक्षस संहार' के वेद पाठ का आरम्भ करते हुए ओउम् का प्रथम उच्चारण कर दिया है । इस सन्दर्भ में वस्तु-विधान शिल्प की दृष्टि से हम यह कहना चाहते हैं कि नाटककार ने नाटकीय वस्तु के बीज का प्रथम आरोप कर दिया है । अब इससे आगे हम महावीर चरित के वस्तु-विधान में स्वयं देखते हैं कि सुबाहु, मारीच वध, परशुराम पराभव के रूप में राम का यही शौर्य-कर्म पानी पर डाले तैलबिन्दु की तरह उत्तरोत्तर फैल जाता है । और इसका फैलाव इस सीमा तक होता है कि स्वयं परशुराम ही अस्त्र त्यागकर महेन्द्र द्वीप में तपस्या के लिये बढ़ जाते हैं और ब्रह्म द्रोही राक्षसों के दमन का अधिकार एकमात्र राम को सौंप देते हैं--

----

१- महावीरचरित, प्रथम अंक

पुण्यानामृषयस्तदेषु सरितां ये दण्डकायां वने

भूयांसो निवसन्ति तेषु सततं लंकासदो राक्षसा: ।

विध्वंसाय चरन्ति तत्प्रमथने त्वस्योपयोगो भवे-

त्संप्रत्येष सहामुनैव धनुषा वत्से धिकार: स्थित: ।।[1]

आधिकारिक कथावस्तु की तीसरी अर्थप्रकृति महावीरचरित नाटक में राम के उन शौर्य-पूर्ण कार्यों में देखी जा सकती है जो सीता-हरण से पूर्व 'दनु', 'कबन्ध', खर-दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसों के वध तथा सीता-हरण के उपरान्त बाली-वध और रावण कुल के विनाश के रूप में सामने आते हैं ।

आधिकारिक कथावस्तु को गतिशीलता और दिशा देने के लिये महावीर-चरित नाटक में प्रासंगिक कथा के रूप में सुग्रीव-मैत्री को नियोजित किया गया है । शेष बहुत सारे ऐसे कथांश जो आधिकारिक कथा को टूटन से बचाते हैं और जिन्हें नाटककार ने विष्कंभक आदि के माध्यम से सूचित कर देना भर पर्याप्त समझा है 'प्रकरी' कथांश कहे जा सकते हैं । इन कथांशों को हम माल्यवान-शूर्पणखा, माल्यवान-त्रिजटा, सम्पाति-जटायु तथा लंका और अलका के संवादों में देख सकते हैं ।

भवभूति के महावीरचरित नाटक के वस्तु-विधान शिल्प में सामान्य रूप से आधिकारिक और प्रासंगिक वस्तु-योजनाओं में समानुपातिक संतुलन ही प्रतीत होता है परन्तु इस संतुलन का कहीं अतिक्रमण बिल्कुल न हुआ हो, ऐसा नहीं है । नाटक-कार ने परशुराम वृत्त को बहुत विस्तार के साथ प्रदर्शित कर दिया है । इस अंश में भवभूति का नाटककार शायद यह भी भूल गया कि उसके नाटक का नायक भार्गव परशुराम नहीं राघव राम है । इस प्रासंगिक पक्ष पर टिप्पणी करते हुए भवभूति की नाट्यकला के एक समीक्षक का कथन है कि 'यह घटना (परशुराम वृत्त) रामायण कथा में एक साधारण-सा इतिवृत्त है, किन्तु भवभूति ने इसमें अपनी नाटक रचना के दो अंक से अधिक लगा दिये हैं । इसके पीछे नाटककार का उद्देश्य यह प्रतीत होता

१- महावीरचरित ४.३८

है कि वह इसके माध्यम से राम के धीरोदात्त चरित्र को अधिक महत्व प्रदान करना चाहता है। राम इस घटना के बहाने पर शौर्य प्रशंसक वीर नायक के रूप में चित्रित हो सका है।[१]

परशुराम के प्रासंगिक इतिवृत्त पर उपर्युक्त टिप्पणी की भावना का स्वागत करते हुए भी नाटकीय-दृष्टि से प्रासंगिक वृत्त का ऐसा उत्कर्ष जो आधिकारिक वृत्त को ही छायाग्रस्त करने लगे उचित नहीं कहा जा सकता।

भवभूति के महावीरचरित नाटक वस्तु विधान शिल्प का उपर्युक्त प्रकार से किया गया नाट्यशास्त्रीय मूल्यांकन यह सूचित कर देने के लिये पर्याप्त है कि इस दिशा में हमें नाट्यशास्त्रीय यांत्रिकताओं को तोड़कर कुछ खुली और व्यापक दृष्टि से सोचना आवश्यक हो गया है। हमारे नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ निश्चित ही नाटकीय वस्तु शिल्प के बारे में बहुत से उपयोगी विचार प्रदान करते हैं परन्तु अनेक जगह उनमें भ्रान्तियां भी दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिये वस्तु-विधान का मूल्यांकन करते हुए अर्थ-प्रकृतियों, कार्य अवस्थाओं और सन्धियों का समान्तरण दशरूपककार की भ्रान्ति ही जान पड़ती है। हमारा उद्देश्य बलपूर्वक समानान्तरण बैठाना ही नहीं, वस्तु विधान की क्रमबद्धता और प्रभविष्णुता को समझने का होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति नाट्यशास्त्रीय दृष्टि के सतही सरलीकरण से भी नहीं मानी जा सकती है। इसके लिये एक सजग और सहृदय प्रेक्षक होकर नाटक के आमने-सामने होना जरूरी है। अत्यन्त सतही सरलीकरण से नाटककार की प्रशंसा और बचाव तो किये जा सकते हैं किन्तु सही मूल्यांकन सम्भव नहीं हैं। उदाहरण के लिये भवभूति की नाटक रचनाओं के नाट्यशास्त्रीय वस्तुशिल्प को लेकर एक अध्येता की इस टिप्पणी को देखा जा सकता है--

----

१- विमला गेरा, माइंड एण्ड आर्ट आफ भवभूति, पृ० ५१

भवभूति के तीनों नाटकों में पांचों अर्थप्रकृतियों, पांचों कार्य अवस्थाओं तथा पांचों सन्धियों का प्रयोग किया मिलता है।[१]

हम समझते हैं भवभूति के वस्तु-विधान शिल्प के नाट्यशास्त्रीय संघटन को लेकर इस तरह का सरलीकरण अधिक कारगर नहीं कहा जासकता है, और न ही नाट्यशास्त्रीय अर्थ-प्रकृतियों, कार्य-अवस्थाओं और सन्धियों की पूरी-पूरी पटरी ही आसानी से समझी जा सकती है। इस सबकी सही-सही समीक्षा करने के लिये कुछ अधिक खुले ढंग से विचार किया जाना जरूरी है।

भवभूति के महावीरचरित नाटक के वस्तु-विधान शिल्प के बारे में एक बात तो अवश्य कही जा सकती है कि कतिपय दुर्बलताओं और भटकावों के होते हुए भी नाटककार वस्तु-योजना के नाट्यशास्त्रीय शिल्प के बारे में सजग अवश्य रहा है। अपनी इस सजगता को वह किसी न किसी पात्र के मुंह से यथास्थान अभिव्यक्ति भी देता रहा है। महावीरचरित के माल्यवान की एक उक्ति इसका बहुत अच्छा उदाहरण है--

बीज यस्य विदेहराजतनयायान्त्रांकुरो पि स्वसु-
यांत्रा तां परिवञ्चितुं किसलयं मारीचमायाविधि:
शाखाजालमयोनिजापहरणं तस्य स्फुटं कोरका: ।
कीशाधीशवधो नुजस्य गमनं सख्यं तयोस्तैन च ।।[२]

रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य

नाटक की रंगमंचीय समीक्षा करने के लिये सुशृंखलित गतिशील कथानक सक्रिय पात्र छोटे, बड़े प्रभावी संवाद एवं मंच विधान के साथ कथावस्तु का सम्यक सम्बन्ध

१- विमला गेरा, माइंड एण्ड आर्ट आफ भवभूति, पृ० ८६

२- महावीरचरित, ६.१

और उसकी अभिव्यक्ति के लिये चतुर्विध अभिनय प्रकारों का मानदण्ड अपनाकर चलना होता है । भवभूति के महावीरचरित की रंगमंचीय समीक्षा हम इन्हीं स्वीकृत मानदण्डों को ध्यान में रखकर कर रहे हैं ।

घटना अंकन

महावीरचरित में राम के 'महावीरचरित' की कथा विन्यस्त है । सिद्धाश्रम में राम, लक्ष्मण का प्रवेश, सीता एवं उर्मिला की आसक्ति, रावण का प्रस्ताव, राम द्वारा ताटका वध, धनुर्भंग, परशुराम कोप, चारों भाईयों का विवाह, माल्यवान की चिन्ता, शूर्पणखा द्वारा दशरथ का कार्य लेख, राम वन गमन, दशरथ की मूर्छा, अयोध्या पुरवासियों का आक्रोश, राम का पंचवटी निवास, खर, दूषण, त्रिशिरा वध, सीता हरण, जटायु का अवरोध एवं मरण, सीता की खोज, सुग्रीव से भेंट, दुन्दुभि अस्थिकूट का राम द्वारा ढहाना, बाली-वध, सीता शोध, समुद्र संतरण, लंका दहन, सेतु बंधन, अंगद का दौत्य कर्म, रथारूढ़ इन्द्र का राम, रावण युद्ध का दर्शन, लक्ष्मण मूर्च्छा, संजीवनी आनयन, रावण वध, राम द्वारा अयोध्या प्रस्थान, पुष्पकयान में आरूढ़, लक्ष्मण द्वारा विभिन्न स्थानों की सूचना, हनुमान का अयोध्या प्रस्थान, राम, भरत मिलन, राज्याभिषेक आदि प्रमुख घटनाएं हैं जिन्हें कहीं दृश्य तो कहीं सूच्य रूप में दिखाया गया है ।

भवभूति की कथाविषयक दृष्टि एवं रंगमंचीय सामर्थ्य को देखकर यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि उनकी रंगमंचीय परिकल्पना अत्यन्त व्यापक है । भवभूति को यह भली प्रकार विदित था कि मंच में असंभावित दृश्यों कार्यों एवं घटनाओं को दिखाकर अपेक्षित रस की निष्पत्ति सम्भव नहीं है । इसीलिये उन्होंने इस प्रकार के दृश्यों को सूच्य रूप में पात्रों के वार्तालाप से ही वर्णित किया है, क्योंकि मंचन के समय यह व्यावहारिक कठिनाई उत्पन्न होती कि इसे वास्तविक रूप में किस प्रकार दिखाया जाये । घटनाओं की अनुकृति, व्याख्या एवं पुनर्प्रत्यक्षी

करण में यदि कहीं कोई त्रुटि हो गई तो वह हास्य उत्पन्न कर रसाभाव की सीमा में जा पहुंचता है। इस दोष के परिमार्जन हेतु कहीं कुशध्वज की उपस्थिति में तो कहीं माल्यवान की चिन्ता में तो कहीं परशुराम के निर्देशन में अथवा मन्थरा, शूर्पणखा की भेंट में घटनाओं को कार्य रूप में अथवा सूच्य रूप में वर्णित कर दिखाया गया है। निश्चय ही भवभूति ने राम कथा को नाट्यरूप में उपस्थित करने के लिये मंच की सीमा का ध्यान रखा है।

महावीरचरित की कथा व्यापक परिवेश लिये हुए है। यह समूचे भारत की भौगोलिक, संस्कृतिक नृतत्वीय कथा है। इसमें राजा, ब्राह्मण, मंत्री, आर्य, अनार्य, पशु-पक्षी, विभिन्न प्रान्तों के ऋषि मुनि आदि विभिन्न वर्गीय पात्र मिलते हैं। भवभूति ने रंगमंच पर पात्रों की अनावश्यक भीड़ कहीं नहीं लगाई है, यद्यपि नाटक योजना में पात्रों की बहुलता है। भवभूति ने दो या तीन पात्रों के संवादों से और कहीं मुख्य पात्रों के क्रियाकलाप या वार्तालाप से आगे की घटनाओं का विकास दिखाया है। रंगमंचीय दृष्टि से मुख्य विचारणीय बिन्दुओं की स्थिति इस रूप में सामने आती है--

पात्र सृष्टि

नट तथा सूत्रधार के पश्चात् राजा, सूत, विश्वामित्र, लक्ष्मण, राम, सीता, उर्मिला प्रथम अंक के प्रमुख पात्र हैं। द्वितीय अंक के मिश्र विष्कम्भक में प्रतिहारी तदुपरान्त राम, सीता, परशुराम, शतानन्द, जनक, कंचुकी, सुमन्त्र हैं। तृतीय अंक में वसिष्ठ, विश्वामित्र, जामदग्न्य, शतानन्द, जनक, दशरथ तथा चतुर्थ अंक में वसिष्ठ, विश्वामित्र, दशरथ, राम, जमदाग्न्य, लक्ष्मण, जनक, भरत, युधाजित् हैं। पंचम अंक में सम्पाति, जटायु तथा शुद्ध विष्कम्भक के पश्चात् राम लक्ष्मण, श्रमणा, बाली, सुग्रीव, विभीषण, षष्ठांक के विष्कम्भक में चेटी, प्रतिहारी, सूत, वासव, चित्ररथ एवं अन्तिम अंक में विभीषण, राम, सुग्रीव, सीता, लक्ष्मण, किन्नर, हनुमान, भरत, अरुन्धती, कैकेयी, विश्वामित्र आदि

प्रमुख पात्र हैं ।

प्रत्येक अंक की दृश्य योजना में नाटककार ने यह ध्यान रखा है कि पात्रों का अनावश्यक जमघट कहीं न होने पाये ।

संवाद योजना

संवाद योजना की दृष्टि से महावीरचरित् एक सशक्त रचना है । इसमें छोटे, बड़े, स्वगत प्रकाशित, जनान्तिक, अपवार्थ सभी प्रकार के श्राव्य, अश्राव्य या नियतश्राव्य सभी प्रकार के संवाद प्रयुक्त हैं । संवादों में कहीं जिज्ञासा कौतूहल पात्र के क्रियाकलाप की मनोवैज्ञानिक व्याख्या मिलती है । इसमें प्राप्त संवादों के विविध रूप निम्न प्रकार से देखे जा सकते हैं--

स्वगत संवाद

वसिष्ठ - (स्वगतम्)
कामं गुणैर्महानेष प्रकृत्या पुनरासुर: ।
उत्कर्षात्सिर्वतोवृत्ते: सर्वाकारं हि दृश्यति ।।[१]

- - -

प्रहस्त - (स्वगतम्) कथमद्याप्यनभिज्ञ एव देव: । भवतु । कार्यमात्रं विज्ञापयामि ।[२]

स्वगत कथन पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करता है । महावीरचरित में भवभूति ने स्वगत संवादों का खुलकर प्रयोग किया है, महावीरचरित में २५ स्थानों में स्वगत संवाद हैं ।

जनान्तिक संवाद

प्रेक्षागृह में बैठे सामाजिकों को कथा और पात्र के चरित्र विकास को दृष्टि

१- महावीरचरितम् ३.१२

२- वही षष्ठांक, पृ० २६३

में रखकर इस प्रकार के संवाद रखे जाते हैं, जिसे मंचस्थ अन्य पात्र नहीं सुन पाते । अंगुली की त्रिपाताका से जनान्तिक संवाद बोले जाते हैं । महावीरचरित के जनान्तिक संवाद का एक नमूना यह है--

सुग्रीवविभीषणौ : (जनान्तिकम्) आर्यं श्रमणौ ! कथममृतहदादिवास्माकं रामदेवादेष दैवविपाकः ।[१]

अपवार्य - अपवार्य ऐसे संवाद होते हैं, जिन्हें मंचस्थ पात्र को ही सुनाना होता है । सामाजिक ऐसे पात्रों को नहीं सुन पाते हैं । जैसे-

वसिष्ठविश्वामित्रौ : (अपवार्य) एतद्धि शिक्षितं वत्सेन ।[२]

आत्मगतम्

आत्मगत संवादों में पात्र के मनोभावों का वर्णन है, जिसे सामाजिक के सुनने पर भी किसी विशेष रस की अनुभूति इसलिए नहीं करना, क्योंकि ऐसे संवाद पात्र की आत्मभूति है जो कथा प्रवाह में यत्किंचित व्यवधान उत्पन्न करते हैं । जैसे प्रथम अंक में राक्षस का आत्मगत कथन दृष्टव्य है--

राक्षस : (आत्मगतम्) दिवौकसो पि राजविरुद्धमनुतिष्ठन्ति ।

भवभूति ने महावीरचरित को पूर्ण अभिनेय बनाने के लिये ऐसे संवाद जो कौतूहल और जिज्ञासा के साथ ही पात्र के मनोद्वन्द्व को बड़े कौशल से निरूपित किया है । छोटे चुस्त प्रभावी संवाद अनेक स्थानों पर मिलते हैं :

चित्ररथ - जयति जयति देवराजः ।

१- महावीरचरितम्, पंचम अंक, पृ० २३८

२- वही चतुर्थ अंक, पृ० १७०

वासव - गन्धर्वराज ! समरदिदृक्षानिर्भरं किंचेत: ?

चित्ररथ - तदप्यन्यदपि ।

वासव - किमन्यत् ?

चित्ररथ - अलकेश्वरनिदेश: ।

वासव - कीदृश: ?[१]

यत्र-तत्र लम्बे संवाद पात्र के भावावेग को व्यंजित करते हैं । इस प्रकार के संवादों में कवि की काव्यात्मकता, चमत्कार तथा पाण्डित्य प्रदर्शन करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है । दीर्घ संवाद महावीरचरित में कई स्थानों पर मिलते हैं । दीर्घ संवाद का एक उदाहरण देखिए--

चित्ररथ - देवराज ! पश्य पश्य -

मक्तिप्रह्वं कथमपि यवीयासमुत्सृज्य चापा-
रोपव्यग्रांगलिकिसलयं मेघनादक्षयाय ।
लक्षीकृत्य प्रधनकुशलं सानुजं राक्षसेन्द्रं
जीवां भूयो रघुपतिवृषा स्पर्शत: संस्करोति ।।

कथमेतदतिदुष्करमिव मन्ये । तथा हि -

आक्रम्यैकैकमेते रजनिचरभरा: कोटश: शस्त्रवर्षै
मास्वद्वंशप्ररोहं पिदधति परित: योधने यौगपद्मा: ।
अथवा किं नाम दुष्करम् ।
एतावप्युत्प्रभावावकलितमहिमप्राभवौ युद्धभूमा-
विन्याते शत्रुशस्त्रप्रविदलनफलस्पष्टवाणाभियोगौ ।।

१- महावीरचरितम, षष्ठांक, पृ० २७

(समन्ततो वलोक्य) अहो ! कथमेते वनौकसो पि महति सपन्त्रसगरे स्वाभिधानयोगमेव ख्यापयन्त: पन्चषा: केवल रामभद्रपादमूलमासेवन्ते तथा हि-

सुग्रीव: स्यन्दनस्याग्रे सो गद: पृष्ठत: पुन: ।
पन्चषा जाम्बवान्भावो लंकाधोशो पि पार्श्वयो: ।।
(विचिन्त्य) हनुमान्पुन: कनीयांसं काकुत्स्थम् । (सविमर्शम्) वटमेल
स्वाभियथा रामभद्रपादपद्मोपसेविन: । यतस्तावेदतेषाम् ।
स्वामिभक्तिश्च धैर्यं च व्याख्याते गात्रमदातम् ।
स्वाभियोगस्त्वन्येषां दृश्यते दैन्यमप्यलम् ।।[१]

गीत योजना

नाटक को काव्यमय बनाने के लिये छन्दबद्ध गीतों का प्रयोग किया जाता है । यहां हम महावीरचरित के अंकानुसार गीतों की संख्या इस प्रकार है--

भवभूति महावीरचरित को एक विशेष काव्यात्मक भूमि में अवतरित करना चाहते थे, इसलिए इसमें गीतों का बाहुल्य है ।

१- प्रथम अंक - ६२ | २- द्वितीय अंक - ५०
३- तृतीय अंक - ४८ | ४- चतुर्थ अंक - ६०
५- पंचम अंक - ६३ | ६- षष्ठ अंक - ६३
७- सप्तम अंक - ४२

यह संख्या अभिनय में कुछ बाधा उत्पन्न करती है । अत: कुशल निर्देशक इन्हें संक्षिप्त कर नाटक के मूल कथ्य को बनाये रख सकता है ।

दृश्य विधान

पहले कहा जा चुका है कि राम कथा विस्तृत फलक एवं बहुआयामी है, उसका मूल स्वरूप महाकाव्योपयोगी है, किन्तु कुशल साहित्यकार मूलकथा को लेकर

नानाविध काव्य रूपों में इसकी अभिव्यंजना करता है ।

महावीरचरित की अंकानुसार एवं आधिकारिक रूप से कथावस्तु का विस्तृत विश्लेषण किया जा चुका है । यहां उस कथा के मंचन योग्य परिस्थितियों, घटनाओं के चयनगत वैशिष्ट्य का निरूपण करना अभीष्ट है जिससे भवभूति की नाट्यविषयक दृष्टिकोण का सम्यक् परिचय मिल सके । महावीरचरित में सात अंक हैं । प्रथम अंक में दो दृश्य क्रमश: कालप्रियनाथ के यात्रा महोत्सव का नाट्य मण्डप और दूसरा विश्वामित्र का सिद्धाश्रम है । दोनों स्थानों में घटित घटनाओं का मंचन बड़ी आसानी से हो सकता है । द्वितीय अंक में विष्कम्भक के पश्चात् दो दृश्य हैं, प्रथम दृश्य लंकेश्वर रावण का प्रासाद और द्वितीय दृश्य मिथिला के राजा सीरध्वज का राजभवन है । घटनाओं में स्थानगत ऐक्य नहीं है, दोनों के मध्य बहुत दूरी है । साथ ही जिन पाठकों को राम कथा भली-भांति विदित है, उन्हें कथाव्यापार में व्याघात् सा उत्पन्न होगा । इसके विपरीत नाटककार ने जिस दृष्टि से इस प्रकार की घटनाओं की उपस्थापन किया है वह आज की पूर्व दीप्ति शैली का आधुनिक संस्करण है, जिसमें कोई पात्र अन्य पात्र से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करता है, नाटककार ने शूर्पणखा द्वारा ऐसा ही कार्य सम्पन्न कराया है । भवभूति ने बड़ी कुशलता से पाठकों को राम विवाह की घटनाओं का उल्लेख कर मूल रस से जोड़ने का प्रयास किया है । उक्त दोनों दृष्ट एक ही राज-प्रासाद के रंग संकेत पर अभिनीत किये जा सकते हैं । तृतीय अंक में परशुराम के क्रोध का समन है । चतुर्थ अंक में चार दृश्य हैं, जो क्रमश: मिथिला के राजभवन और उसके आस-पास के प्रदेश से सम्बन्धित हैं । नाटककार ने नाटकीय व्यापार में आरोहावरोह लाने के लिये मन्थरा शूर्पणखा और कैकेयी के प्रसंग को चित्रित किया है, तदुपरान्त राम वन गमन । भरत की चित्रकूट यात्रा आदि ऐसी घटनाएं हैं, जिन्हें एक ही दृश्य में अंकित कर समय और कार्य का सामानुपातिक सामंजस्य स्थापित करना कठिन प्रतीत होता है । पंचम अंक में विष्कम्भक के पश्चात दो दृश्य हैं जो क्रमश: कावेरी नदी से परिवेष्टित मदयाचल एवं पंचवटी से सम्बन्धित हैं । इसमें सीताहरण,

जटायुवध, सीता शोध, विभीषण के आत्मसमर्पण की सूचना, बाली सुग्रीव युद्ध एवं बाली वध की घटनाओं को एक ही मंच और एक ही पर्दे पर प्रदर्शित किया जा सकता है। षष्ठ अंक में तीन दृश्य हैं, जो लंका के आमात्य माल्यवान, लंकेश्वर का सर्वतोभद्र प्रासाद और तृतीय दृश्य अंतरिक्ष का है। सूच्य रूप में हनुमान द्वारा लंकाविध्वंस, सीता प्रबोध, अंगद का दौत्यकर्म एवं चित्ररथ द्वारा राम रावण युद्ध की घटनाओं का वर्णन है। प्रथम दो दृश्यों को एक ही पर्दे या मंच पर दिखाया जा सकता है, किन्तु तीसरे में कठिनाई अवश्य होगी। सप्तम् अंक में तीन दृश्य हैं, प्रथम दो दृश्य लंका से सम्बन्धित, तृतीय दृश्य पुष्पकयानारूढ़ राम द्वारा उन स्थलों के दिखाने से सम्बन्धित है जिनमें रहकर सीता शोध का संचालन किया था।

नाटककार ने बड़े कुशलता से नाट्यशास्त्र में वर्णित घटनाओं का सूच्य रूप में वर्णन किया है।

निष्कर्ष यह है कि समय, कार्य-व्यापार और स्थान की दृष्टि से महावीरचरित सफल नाटक नहीं कहा जा सकता, यद्यपि नाटककार ने राम कथा को नाटकीय रूप देने का प्रयास नाट्यशास्त्र की सीमा में रहकर ही किया है। बात यह है कि राम की कथा के अनेक अंश नाट्यशास्त्र की सामर्थ्य से परे हैं। कुशल नाटककार इन्हें दृश्य रूप में न दिखाकर सूच्य रूप में दिखाकर अपना काम चलाता है। भवभूति ने यह एक साहसिक प्रयास किया है कि सम्पूर्ण राम कथा को एक विशाल सम्पूर्ण नाटक के रूप में प्रथम बार ग्रन्थन किया है। राम कथा के फुटकर या बीच-बीच के अंशों को लेकर अनेक नाटकों की सफल रचना नाटककारों द्वारा हुई हैं किन्तु सम्पूर्ण राम कथा प्रथम बार इसी नाटक में प्रस्तुत हुई है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कुछ अपवाद स्थलों को छोड़ दिया जाये तो भवभूति ने विस्तृत फलक कथा को रंगमंच की सीमा में बांधने का अद्भुत प्रयास किया है।

अध्याय - 5

उत्तर रामचरितम् वस्तुविधान

1. नाट्यशास्त्रीय दृष्टि

2. रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य

५

उत्तररामचरितम् : वस्तुविधान

नाटककार भवभूति की तीनों नाटक-रचनाओं में उत्तररामचरित् को सर्वोत्तम नाटक माना जाता है । भवभूति के अनेक पाठकों को उत्तररामचरित जीवन के आदर्श मूल्यों की दृष्टि से उत्कृष्ट लगता है, अनेक पाठकों के लिये इसमें प्रेम और कर्तव्य, जीवन के इन दोनों पदार्थों का असाधारण आदर्श प्रिय लगता है, कुछ के लिये उत्तर-रामचरित का करुण-रस अभिभूत किये रहता है । हम समझते हैं । इन सभी दृष्टियों से भवभूति के इस नाटक में निश्चित ही ऐसा बहुत कुछ है जिसके कारण उत्तररामचरित का भवभूति एक अतिविशिष्ट नाटककार के रूप में मान्य होता रहा है ।

उत्तररामचरित का कोई भी सहृदय पाठक इस सच्चाई को नहीं नकार सकता है कि यदि यह नाटक सफलता के साथ रंगमंच पर उतार दिया जाये तो यह अपने कलात्मक प्रभावों से प्रेक्षकगण को सराबोर किये बिना नहीं रह सकता । इसमें प्रेम तथा करुणा के मनोवेगों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है । इसके दृश्य और वातावरण मन का वशीकरण कर लेने वाले हैं । इसका कथानक एक आदर्श नायक का जीवनवृत्त होते हुए भी मानवीय भावनाओं के सहज धरातल पर टिकाहुआ है । भवभूति के इस नाटक में जीवन का छिछलापन और सतहीपन छूकर भी नहीं गया है । यह एक ऐसा अद्भुत नाटक है जो न केवल सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि से ही अद्वितीय है बल्कि नाटक के कलात्मक विन्यास की दृष्टि से भी अद्वितीय है ।

भवभूति के उत्तररामचरित के कलात्मक विन्यास का विचार जब इस नाटक के पाठक और प्रेक्षक के मन में उठता है तो स्वाभाविक रूप से उसका ध्यान इस नाटक के वस्तु-विधान कौशल की ओर ही खिंचता है । ऐसा होना बहुत स्वाभाविक है । इस बात को नहीं नकारा जा सकता है कि उत्तररामचरित ही क्या, किसी भी नाटक का सबसे महत्वपूर्ण तथा मूलरूप तो उसका वस्तु-विधान ही होता है । वस्तु-विधान के इस महत्व को दृष्टिगत करते हुए ही हमारे नाट्यशास्त्रियों ने भरत से

आरंभ करके आगे की कई शताब्दियों तक नाटकीय वस्तु-विधान के गंभीर से गंभीर और सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन किये हैं। सारे नाट्यशास्त्रीय विवेचनों का सार तत्व यही निकलता है कि नाटक का वस्तु-विधान एक सुसंबद्ध अवयवी के रूप में होना चाहिए। उसके कथानक की कड़ियों में कहीं कोई क्रम-भंग दोष और अननुरूपता नहीं होनी चाहिए। हमारे नाट्यशास्त्र में इसी दृष्टि से नाटकीय कथावस्तु के विन्यास को लेकर अर्थ-प्रकृतियों, कार्य-अवस्थाओं और सन्धियों आदि का गम्भीरता से विचार किया गया है। वह सारा विवेचन अनेक अर्थों में बहुत कुछ जटिल और यांत्रिक सा अवश्य लगता है परन्तु उसमें बहुत कुछ ऐसा है जिसे मुक्त दृष्टि से ग्रहण करके आज की नाट्यकला के लिये भी उपयोगी बनाया जा सकता है।

भवभूति के उत्तररामचरित के वस्तु-विधान शिल्प का नाट्यशास्त्रीय दृष्टि और रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य से मूल्यांकन करते हुए हमारा प्रयत्न नाट्यशास्त्रीय तत्वों के सहारे खुले ढंग से सोचने की दिशा में ही रहेगा। इस बारे में हमारी दृष्टि उत्तररामचरित के एक सजग पाठक और प्रेक्षक जैसी रहना ही उचित समझती है। इस दृष्टि से उत्तररामचरित के वस्तु-विधान का मूल्यांकन करते हुए यदि कहीं कोई कलात्मक दुर्बलता भी कहीं प्रतीत होती है तो उसे अवश्य रेखांकित किया जायेगा। अब हम अपने निर्धारित दृष्टि-बिन्दुओं के अन्तर्गत उत्तररामचरित के वस्तु-शिल्प पर विचार करते हैं।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि

इतिहास मूलक आख्यान

संस्कृत नाट्यशास्त्रियों ने नाटक की कथावस्तु का तीन दृष्टियों से वर्गीकरण किया है--

१- इतिहास मूलक कथावस्तु

२- कवि कल्पना प्रसूत कथावस्तु

३- इतिहास-कल्पना मिश्रित कथावस्तु

उपर्युक्त तीनों प्रकार की कथावस्तु को ध्यान में रखकर जब हम भवभूति के उत्तररामचरित पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि नाटककार भवभूति ने अपने इस सर्वश्रेष्ठ नाटक के लिये कथावस्तु का चयन इतिहास और पुराण के अत्यंत गौरवपूर्ण पृष्ठों से ग्रहण किया है। हमारे इतिहास के वे गौरवपूर्ण पृष्ठ रघुवंशी नायक राम की गाथा के स्वर्णिम पन्ने हैं। आदि कवि वाल्मीकि के द्वारा इतिहास काव्य रामायण में उपनिबद्ध राम का आख्यान हमारी वह राष्ट्रीय विरासत है जिसने न केवल प्राचीन संस्कृत भाषा के साहित्य को नाना प्रकार की साहित्य-रचनाओं को आधारभूत सामग्री प्रदान करके समृद्ध किया है बल्कि पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा उनसे विकसित हुई सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रेरणादायी सामग्री प्रदान कर समृद्ध किया है। जिस प्रकार से संस्कृत के सर्वमहान कवि कालिदास को 'सूर्यप्रभ व रघुवंश का इतिहास आख्यान' उदात्त एवं आदर्श साहित्य-मूल्यों के अनुरूप प्रतीत हुआ था उसी प्रकार कालिदास के समकक्ष महान नाटककार भवभूति को भी रामायण के राम का इतिहास-आख्यान अपनी नाट्यकृतियों के आदर्श और उदात्त-मूल्यों के सर्वाधिक अनुरूप प्रतीत हुआ। हमारे इस महान नाटककार ने, जैसाकि हम पूर्व अध्याय में जान चुके हैं, महावीरचरित नाटक की रचना करने के लिये रामायण इतिहास काव्य के नायक राम के शौर्यपूर्ण जीवन वृतान्तों को लेकर एक वीर रस का उत्कृष्ट नाटक साहित्य-जगत को भेंट किया। ठीक उसी तरह उसी महान नायक के जीवन-वृत्त को अपनाकर उसने एक अत्यन्त असाधारण और अद्वितीय करुण रस-प्रधान नाटक उत्तररामचरित के रूप में साहित्य-जगत को दिया है। उसके महावीर-चरित नाटक में उसने राम के विवाह से लेकर लंका विजय और अयोध्या राज्याभिषेक तक फैले राम के वैविध्यपूर्ण जीवन-वृत्त को नाट्य कथावस्तु का आधार बनाया है। इसके विपरीत अपने करुण रस प्रधान उत्तररामचरित में उसने लंका-विजय तथा अयोध्या राज्याभिषेक के उत्तर काल में फैले राम के जीवनवृत्त को नाटक की

कथावस्तु का आधार बनाया है। वाल्मीकि रामायण में राम का उत्तरकालीन जीवनवृत्त उत्तरकाण्ड में वर्णित किया गया है। राम के इस उत्तरकालीन जीवन की सर्वप्रमुख दो घटनाएं हैं - प्रथम घटना रावण की बन्दिनी के रूप में प्रवास का लंबा जीवन बिताने वाली राम की प्राणप्रिया सीता के निर्वासन की दारूण घटना है। पराये घर में विवशतापूर्ण निवास से उत्पन्न लोकापवाद इस दारूण घटना का कारण था। दूसरी महत्वपूर्ण घटना राम के द्वारा राज-कर्त्तव्य का निर्वाह करते हुए अश्वमेध-यज्ञ किया जाना है। इस अश्वमेध के दौर में ही अश्वमेध के अश्व की रक्षा करने वाले भरत के पुत्र पुष्कल तथा राम के पुत्र लव और कुश का संग्राम होता है। राम के जीवन के इस दारूण उत्तरार्ध का सबसे मर्मान्तिक पक्ष यह है कि उसकी जीवन सहचरी सीता उसे नहीं मिल पाती है। भवभूति ने उत्तररामचरित नाटक में राम के जीवन की इस करूण गाथा को ही कथावस्तु के रूप में अपनाया है।

राम के जीवन का उपर्युक्त उत्तर भाग वाल्मीकि रामायण की पद्धति के अनुसार ही पद्म-पुराण के पाताल खण्ड में भी प्राप्त होता है। पद्म पुराण की रामकथा में राम के सीता त्याग, अश्वमेध-यज्ञ, वाल्मीकि आश्रम में कुश, लव द्वारा अश्व को पकड़ना, वाल्मीकि द्वारा राम को कुश-लव का परिचय देना तथा सीता-राम के मिलन का वर्णन है। भवभूति ने वाल्मीकि रामायण तथा पद्म-पुराण में वर्णित राम की उत्तरगाथा को ग्रहण तो उसी रूप में कर लिया है किन्तु अपने नाटकीय उद्देश्यों को ध्यान में रखकर मूल कथानक में भारी हेरफेर किया है। रामायण की मूलकथा को अभिनेय बनाने की दृष्टि से भवभूति ने जो मुख्य परिवर्तन किये हैं, वे निम्नवत् हैं--

१- वाल्मीकि रामायण के अनुसार लोकापवाद से उद्विग्न राम जब सीता को बनवास का दण्डविधान करते हैं तो राजपरिवार के समस्त गुरूजन, वसिष्ठ, अरून्धती और राजमाताएं अयोध्या में ही होते हैं। इसके विपरीत भवभूति के उत्तररामचरितम् में परिवार के सभी गुरूजन और वृद्धजन महाराज दशरथ के दामाद

ऋष्यशृंग के द्वादशवार्षिक यज्ञ में गये हुए सूचित होते हैं। इतना ही नहीं ऋष्यशृंग का यज्ञ समाप्त हो जाने पर भी वे लोग अयोध्या नहीं लौटते हैं। सीता के निवासन से अत्यंत दु:खी गुरुजन अरुन्धती की इस प्रतिज्ञा के साथ कि 'हम वधू सीता से शून्य अयोध्या में प्रवेश नहीं करेंगे, वाल्मीकि आश्रम चले जाते हैं।[१]

२- शम्बूक-वध के बहाने पुन: दण्डकारण्य पहुँचे राम और वासन्ती का मिलन रामायण कथा में नहीं है। यह भी नाटककार भवभूति की कलात्मक कल्पना है। 'तमसा' और 'मुरला' का वृतान्त तथा छाया सीता द्वारा विरह-दग्ध राम की मूर्छा दूर किया जाना भी भवभूति की नाट्यकला की कल्पना है। रामायण कथा में ऐसा नहीं है।[२]

३- रामायण में लव और चन्द्रकेतु का युद्ध वर्णित नहीं है। यह युद्ध भी नाटककार द्वारा नाटकीय उद्देश्य के लिये नियोजित किया गया है।[३]

४- भवभूति ने राम की करुणा-कथा का अंत सीता मिलन के रूप में दिखाया है। रामायण की राम-कथा में मिलन नहीं है।[४]

५- शम्बूक-वध और लवणासुर-वध यद्यपि रामायण के ही कथाप्रसंग हैं किन्तु जिस प्रसंग में, भवभूति ने इन्हें नाटक में उपयोज्य बनाया है, उस प्रसंग में नहीं।

नाटककार ने जिस प्रकार नाटकीय उद्देश्यों के लिये रामायण कथा में परिवर्तन किये हैं उसी प्रकार उसमें पद्म-पुराण से प्राप्त रामकथा में भी बहुत से परिवर्तन मिलते हैं, वे परिवर्तन निम्नवत हैं--

----

१- विमला गेरा, माईंड एण्ड आर्ट आफ भवभूति पृ० 63

२- वही पृ० 64, 65

३- डा० गंगासागर राय, महाकवि भवभूति पृ० 95

४- वही पृ० 95, 96

(१) पद्म-पुराण में अश्वमेध के अश्व का रक्षक भरत का पुत्र पुष्कल है, परन्तु उत्तररामचरितम् में लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु है ।

(२) पद्म-पुराण के अनुसार कुश और लव को अस्त्र विद्या की शिक्षा वाल्मीकि द्वारा दी जाती है जबकि उत्तररामचरित के कुश-लव को ये विद्याएं स्वत: स्फुरित होती हैं ।

(३) पद्म-पुराण के अनुसार अश्व पकड़ने के अपराध में लव बन्दी बना लिया जाता है जिसे बाद में सारी सेना को जीतकर कुश मुक्त करता है । उत्तररामचरित में ऐसा नहीं है । यहां लव बन्दी नहीं होता बल्कि स्वयं सारी सेना को 'जृम्भकास्त्र' से सुला देता है और चन्द्रकेतु को भी आश्चर्य में डाल देता है ।

(४) पद्म-पुराण के अनुसार वाल्मीकि यज्ञभूमि में राम को कुश और लव का परिचय देते हैं । उत्तररामचरित में ऐसा नहीं है । यहां कुश, लव और सीता बड़े ही नाटकीय ढंग से प्राप्त कराये जाते हैं ।

(५) पद्म-पुराण के अनुसार सीता अयोध्या बुलाई जाती है और वाल्मीकि की आज्ञा से राम सीता को ग्रहण करते हैं । उत्तररामचरित में सीता और उसके पुत्र गंगा, पृथिवी और वाल्मीकि द्वारा लोकाभिनन्दन के साथ राम को प्राप्त होते हैं ।

जब हम नाटककार भवभूति द्वारा रामायण के इतिवृत्त में तथा पद्मपुराण के इतिवृत्त में किये गये परिवर्तनों पर ध्यान देते हैं तो हमें यह समझने में कोई बहुत अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ता कि नाटककार ने ये सारे परिवर्तन किन उद्देश्यों के लिये किये हैं । नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से हम अच्छी तरह जानते हैं कि नाटक के अपने कुछ विशिष्ट विधागत आग्रह होते हैं । नाटककार को उन आग्रहों की पूर्ति का बराबर ध्यान रखना होता है । नाटक रामायण जैसे इतिहास काव्य अथवा पद्म जैसे पुराण काव्य की तरह वर्णनात्मक रचना नहीं है । वर्णनाप्रधान काव्यों

में कवि स्वयं एक वक्ता के रूप में वर्णन करता चला जाता है, नाटककार के लिये ऐसा करना सम्भव नहीं है। नाट्य-रचना में तो जो घटनाचक्र चलता है वह सब अलग-अलग दृश्य-विधानों के अन्तर्गत अलग-अलग पात्रों की अभिनय क्रियाओं और संवादों के माध्यम से ही चल पाता है। नाटक के इस विधागत आग्रह को ध्यान में रखकर नाटककार को तरह-तरह की कटौतियां करनी पड़ती हैं। इतिहास कथा से सम्बन्धित पात्रों को अलग-अलग ढंग से नाटकीय भूमिकाओं में उतारना पड़ता है। केवल इतना ही नहीं नाटककार यह अच्छी तरह जानता है कि उसका नाटक एक दृश्य के रूप में सुबुद्ध प्रेक्षकों के सामने जा रहा है। उसके घटना विधान और दृश्यविधान में ही अन्विति काफी नहीं है बल्कि नाटक के पूरे-पूरे दृश्य विधान में एक तर्कसंगति जरूरी है। शतरंज के कुशल खिलाड़ी की तरह नाटककार घटनाओं, पात्रों और दृश्यों की सारी गोटियां अपनी योजनानुसार बिछा लेता है, जब और जैसे वह चाहता है, उन्हें कभी आगे बढ़ा देता है और कभी पीछे हटा लेता है। नाटककार इस बात के लिये विशेष रूप से सजग रहता है कि उसके नाटक के मंच पर उतरते ही नाटकीय घटना-क्रम न केवल देश और काल की अन्विति और तर्क संगति रखने वाला हो बल्कि वह प्रत्येक प्रकार के उन मनोवैज्ञानिक प्रश्नों का जवाब करने वाला भी हो जो किसी भी क्षण प्रेक्षक के मन को कुरेद सकते हैं। नाटक की दृष्टि से इसी प्रकार के विधागत उद्देश्य नाट्यकला के आग्रह कहे जाते हैं।

भवभूति ने उत्तररामचरित के वस्तु विधान में रामायण और पुराण से प्राप्त इतिवृत्त में जो भी परिवर्तन किये हैं, वे सब नाटकीय ताने-बाने को ध्यान में रखकर किये हैं और प्रेक्षकगण की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किये हैं। इस दृष्टि से यदि हम उसके द्वारा किये गये एक-एक परिवर्तन पर विचार करें तो वास्तविकता समझ आ सकती है।

लोकापवाद के कारण कोई भी युवा राजा अपनी एकमात्र राजमहिषी और वह भी आपन्नसत्वा गर्भिणी राजमहिषी को दण्डविधान करते हुए वन में

एकाकिनी छोड़ने का निर्णय ले डाले और उस क्षण वसिष्ठ जैसे लोक और शास्त्र के तत्वदर्शी गुरु, विधवा राजमाताएं जिन्हें कुल के हर नये अंकुर में आशा की एक नई किरण दिखती हो, नारी-अस्मिता की परम पवित्र प्रतीक और जगदवंद्या वसिष्ठ पत्नि अरुन्धती यह सब दारुण काण्ड असहाय होकर देखते रहें, संभव ही नहीं है। भारतीय मर्यादाओं का मर्मज्ञ भवभूति अपने प्रेक्षकों की इस मानसिकता को भली-भांति जानता है। अतएव उसने वे सारे प्रतिबन्धक लगे हाथ अयोध्या के उस मंच से दूर पहुंचा दिये जिस मंच से नाटक में गर्भिणी राज-महिषी के लिये देश-निकाले का दण्ड विधान किया जाता है।

उत्तररामचरित का भवभूति एक अत्यन्त सहृदय और प्रौढ़ नाटककार है, वह नाटकीय न्याय का सिद्धान्त अच्छी तरह जानता है। नाटकीय न्याय का तकाज़ा है कि जिस राजपद से राम ने लोकापवाद के भय से एक गर्भिणी राज-महिषी को किसी अनन्त अन्धकार में फेंक दिया है, वह भी अपने कठोर कृत्य के लिये लोक की प्रताड़नाएं झेले। उत्तररामचरितम् में राम और वासन्ती का समागम भवभूति की नाटकीय न्याय-दृष्टि को प्रगट करता है। उत्तररामचरित की वासन्ती का एक-एक शब्द राम की घोर प्रतारणा करने वाला है। राम ने जिस सीता-निष्कासन को अपने राजपद का कठोर कर्तव्य और सुकृत्य मानकर किया था, वह नारी-समुदाय की प्रतिनिधि वासन्ती की दृष्टि से कितना क्रूर, कितना अमानवीय है, यह वासन्ती के कथन से ही जाना जा सकता है।

> त्वं जीवितं, त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
> त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।
> इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
> तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ?[1]

1- उत्तर०, ३.२६

जहाँ तक शम्बूक-वध की घटना और शत्रुघ्न द्वारा लवण-वध की घटना के प्रसंगान्तर कर देने का प्रश्न है वह भी नाटककार की असाधारण वस्तु-विधान चातुरी को ही सूचित करता है। नाटककार की दृष्टि से ये घटनाएं इतिहास नहीं हैं, कला के औज़ार भर हैं। शम्बूक-वध जैसी घटना को उसने किसी सामाजिक मूल्य-दृष्टि से नहीं अपनाया है बल्कि नाटक के वस्तु-विधान में उपयोगी उपकरण के रूप में अपनाया है। जिस तरह से हम बहुत सी फिल्मों में देखते हैं शाप, अभिशाप और दैवी वरदान जैसी घटनाएं फिल्म कथा का अवरोध दूर करके उसे आगे बढ़ा देती हैं, ठीक उसी प्रकार शम्बूक-वध की घटना का हाल है। कालिदास के शाकुन्तल में दुर्वासा के शाप का प्रयोग तथा भवभूति के उत्तररामचरित में शम्बूक-वध का प्रयोग वस्तु-विधान के उपकरण के रूप में ही किया गया है। शम्बूक-वध की घटना के माध्यम से भवभूति अपनी वस्तु-योजना के अनुरूप अनजाने ही सही, नायक और नायिका को एक दृश्य स्थल पर लाने में सफल हो गया। यदि यह नहीं हो पाता तो उत्तररामचरित की नाट्यकथा अभिमत दिशा ही नहीं पकड़ सकती थी।

इसी प्रकार, शत्रुघ्न द्वारा लवण-वध का वृतान्त भी प्रसंगान्तरित करके नाटकीय उद्देश्य का उपकरण बनाया गया है। नाटक की दृष्टि से भवभूति ने इस कथांश का विनियोग दो उद्देश्यों को पूरा करने के लिये किया है, पहली बात तो सीता-परित्याग के कठोर कृत्य से टूट चुके राम का लवण उपद्रव की सूचना से भाव-परिवर्तन हो जाता है। राम के राजपद की गरिमा के अनुकूल राक्षस-वध का क्षात्रिय भाव जाग उठता है। फलतः उसके उन्मीलन के लिये वे शत्रुघ्न को भेज देते हैं। इसके अतिरिक्त लवण-वृतान्त के बहाने शत्रुघ्न भी अयोध्या के पटल से हटा दिया जाता है।

उत्तररामचरित नाटक में जहाँ तक सीता-मिलन का प्रश्न है वह भारत की उस सनातन नाट्य दृष्टि की देन है जहाँ जीवन का दृश्य-विधान करने वाली नाट्य-रचना को एक त्रासद अंत के साथ कभी नहीं छोड़ा जाता। यही कारण है

कि भवभूति ने रामायण कथा के अनुसार सीता का पाताल गमन पसन्द नहीं किया ।

भवभूति के नाटककार को पद्म-पुराण की तरह वाल्मीकि के ऋषि प्रभाव से राम द्वारा सीता का पुन: स्वीकार किया जाना भी न्यायसंगत प्रतीत नहीं हुआ । सच बात तो यह है कि भवभूति का नाटककार राम और सीता की इस करुण कहानी को दो उच्चतम कलामूल्यों की दृष्टि से अभिनीत करना चाहता था । उसकी दृष्टि से पहला उच्चतम मूल्य राजसत्ता के ऊपर लोकसत्ता की सम्प्रभुता का आदर्श प्रस्तुत करना था । उत्तररामचरित का प्रत्येक सहृदय पाठक और प्रेक्षक भली-भांति जानता है कि राम द्वारा गर्भिणी राजमहिषी का निर्मम परित्याग लोकानुरंजन का कुलव्रत पालन करने की दृष्टि से किया गया था । दूसरे शब्दों में कहें तो यह लोकमत के सम्मान में राजसत्ता का फैसला था । भवभूति का राम अपने इस राज कर्त्तव्य के पालन में किस सीमा तक बंधा हुआ है यह सच्चाई नाटक के नायक के अपने शब्दों से ही जानी जा सकती है--

> स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि
> आराधनाय लोकस्य मुन्चतो नास्ति मे व्यथा ।[1]

बहुत स्वाभाविक सी बात है कि जब सीता का परित्याग ही लोकमत का सम्मान करने के लिये किया गया है तो फिर राजसत्ता की ओर से उसकी वापसी का कोई भी आदेश किसी एक व्यक्ति, वह चाहे वाल्मीकि ऋषि हो या कोई अन्य के प्रभाव से कैसे सम्भव हो सकता है ? इस बारे में भवभूति के नाटककार की दृष्टि बहुत साफ रही है । यही कारण है कि उसने अपने नाटक की सीता को कौसलदेश के पौर और जानपद की खुली अदालत में अरुन्धती की इस घोषणा के साथ प्रस्तुत किया है--

----

१- उत्तर० १.१२

भो: भो: पौर जानपदा ! इयमधुना वसुन्धरा जाह्नवी च्यामेवं प्रशस्यमाना मया चारुन्धत्या समर्पिता पूर्वं भगवत वैश्वानरेण निर्णीत पुण्यचारित्रा सब्रह्मकैश्च देवै: स्तुता सावित्रकुलवधूर्देवयजनसंभवा जानकी परिगृह्यताम् । कथमिह भवन्तो मन्यन्ते ?[१]

कहने की आवश्यकता नहीं कि यहां सीता के पुण्य-चारित्र्य के विषय में लोकमत जानने के आह्वान ही अरुन्धती द्वारा किया जा रहा है । जब सारा लोकमत सीता के पवित्र चरित्र के सम्मान में अपना सिर झुका देता है तब कहीं जाकर अरुन्धती राम के लिये यह आदेश करती है--

जगत्पते राम भद्र !
नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम् ।
हिरण्मय्या: प्रतिकृते: पुण्यां प्रकृतिमध्वरे ।।[२]

जहां तक राम की आदर्शवादी राजसत्ता का प्रश्न है वह लोकमत के सम्मुख पूर्णरूप से आनत बनी रहती है । वह गंगा और पृथिवी जैसी देवियों से सीता के चरित्र की प्रशस्तियां सुनकर भी असहाय और मूक अनुभव करती है । वह अच्छी तरह जानती है कि इस मामले में कोई भी निर्णय लेने का अधिकार एकमात्र लोकसत्ता का है । भवभूति की वस्तु-योजना के अनुसार यह दृश्य अवलोकनीय है--

देव्यौ -
जगन्मंगलमात्मानं कथं त्वमवमन्यसे ।
आवयोरपि यत्संगात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते ।।[३]

१- उत्तर० अंक ७
२- वही ७.२०
३- वही ७.८

लक्ष्मण - आर्य ! श्रूयताम्

राम - लोक: शृणोतु ।

भवभूति के उत्तररामचरित की वस्तु-योजना का यह लोकवादी स्वर आदि से अन्त तक नाटक में पिरोया हुआ है । आदि से अन्त तक नाटक में लोकसत्ता के आगे राजसत्ता अपना मुँह सिये रहती है । दण्डकारण्य में सीता के साथ जिये हुए परिदृश्यों में धाड़-धाड़ रोता हुआ राम, सीता परित्याग के विषय में खुलकर कोई पश्चाताप भी नहीं कर पाता है । वह केवल इतना ही कह पाता है--

है ! है ! भगवन्त: पौरजानपदा: !

न किल भवती देव्या: स्थानं गृहे भिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता ।
चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति मा-
मिदमशरणैरद्यास्माभि: प्रसीदत रुद्यते ।।[1]

भवभूति के उत्तररामचरित की इस लोकवादी वस्तुयोजना पर टिप्पणी करते हुए नाटक का एक सहृदय समीक्षक लिखता है--

यह कोई आकस्मिक संयोग नहीं है अपितु नाटककार भवभूति की सुविचारित योजना है कि उसने इस आदर्श को लोकचेतना की गहराइयों में अंकित करने के संकल्प से अपने नाटक का नायक भारतीय राष्ट्र में सबसे अधिक लोकप्रिय रामायणी कथा के नायक को बनाया है । ..... भवभूति के नाटक का पूरा घटनाचक्र राम के शासकीय व्यक्तित्व और निजी व्यक्तित्व के अन्तर्द्वन्द्व की एक मर्मान्तिक कहानी है । इस कहानी में शासक की लोकनिष्ठा के यज्ञ में उसका अपना सर्वस्व होम हो जाता है ।

१- उत्तर० ३.३२

राजसत्ता के ऊपर लोक की सम्प्रभुता का एक दूसरा पक्ष भी भवभूति के इस नाटक में उभरकर आता है। निर्दोष सीता को राजसत्ता की लोकनिष्ठा के यज्ञ में आहुति बनना पड़ा है, यह बात राष्ट्र के सचेता बुद्धिजीवी नहीं पचा पाता है। उसकी सारी सहानुभूतियां उत्पीड़ित सीता के साथ जुड़ जाती हैं, किन्तु सत्य के पक्ष में लोकमत जुटाये बिना बुद्धिजीवी वर्ग भी कुछ नहीं कर सकता है। धीरे-धीरे घटनाक्रम परिवर्तन लेता है और जिस चातुरी के साथ नाटककार ने सारी परिस्थितियों को संजोया है उससे लगता है जैसे, न केवल कोसल राष्ट्र अपितु उत्तर से दक्षिण तक फैले भारत के पूरे लोकमानस में सीता की पक्षधरता सक्रिय हो गई है। नाटकीय घटना के निर्णायक क्षणों में ऐसा लगता है जैसे बलिदान की मूर्ति सीता पूरे अर्थों में 'सीता भारत है, और भारत सीता है' के लोकमत की सजीव प्रतीक बन गई है। लोकनिर्णय के ऐसे अद्भुत क्षणों में भी राजसत्ता केवल इतनी ही विनम्र प्रतिक्रिया कर पाती है कि, 'लोक ही सर्वोपरि निर्णायक है--

लोक: शृणोतु'।[१]

उत्तररामचरित की वस्तु-योजना जिस तरह सीता-मिलन की स्थितियां प्रस्तुत करती है उससे एक और महान आदर्श नाटककार का अभिमत जान पड़ता है। भवभूति का वह महान आदर्श नाट्यकला के अमिट सामाजिक प्रभाव के उत्कर्ष को अंकित करता है। उत्तररामचरित की वस्तु-योजना के अनुसार यह प्रचेता वाल्मीकि द्वारा प्रणीत काव्य के नाट्याभिनय का ही प्रभाव है जिससे अभिभूत होकर राजसत्ता और लोकसत्ता - दोनों एक साथ एक पवित्र नारी की गरिमा के आगे सिर झुका देती हैं।

उपर्युक्त कला मूल्यों की दृष्टि से देखें तो यह कह पाना बड़ा कठिन है कि उत्तररामचरित नाटक जैसी कोई अन्य श्रेष्ठ नाटक रचना अभी तक विश्व के किसी

१- व्योमशेखर, राजसत्ता का अनुशासन, पृ० ६१-६३

नाटककार की लेखनी ने पैदा की है अथवा नहीं ।

भवभूति के उत्तररामचरित की इतिहास पुराणमूलक कथावस्तु का रूप और नाटककार द्वारा उसमें किये गये परिवर्तनों के पीछे निहित नाटकीय उद्देश्यों को जान लेने के बाद अब हमें यह देख और जान लेना भी प्रासंगिक हो गया है कि नाटककार ने अपनी सम्पूर्ण कथावस्तु को एक सुसंबद्ध अवयवी वस्तु योजना के रूप में कैसे-कैसे ढाला है ।

सुसंबद्ध अवयवी के रूप में वस्तु-विधान

संस्कृत नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटकीय वस्तु-विधान को एक सुसंबद्ध अवयवी के रूप में वांछित माना गया है । नाटक ही क्या साहित्य की किसी भी विधा की रचना स्वयं में एक अवयवी ही होती है । रचना फिर चाहे नाटक हो, कविता हो, कहानी या उपन्यास, एक नाटक रचना की वस्तु योजना के सुसंबद्ध अवयवी रूप देने की दृष्टि से हमारे नाट्य-शास्त्रों में नाटकीय वस्तु-योजना का पंचसन्धि समन्वित होना आवश्यक बताया गया है । उसके सोपान दर सोपान विकास को क्रमबद्ध करने वाली पांच कार्य-अवस्थाओं का दिग्दर्शन किया गया है । मुख्य कथा और सह कथा तथा फुटकर कथांशों का संयोजन करने के लिये बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नाम की पांच अर्थ प्रकृतियों का विवेचन किया गया है । इन सभी नाट्यशास्त्रीय मानकों को ध्यान में रखकर जब हम उत्तररामचरितम् की ओर देखते हैं तो विदित होता है कि नाटककार ने वस्तु-योजना को एक श्रेष्ठ कलात्मक रूप देने के लिये नाट्यशास्त्र के मानकों का पर्याप्त सफलता के साथ प्रयोग किया है । उत्तररामचरित में इन मानकों काप्रयोग कहां और किस रूप में हुआ है, यह बात आगे किये जा रहे विवेचन से स्पष्ट हो सकती है ।

कार्य अवस्थाओं का उचित सन्निवेश

आरम्भ

नाट्यदर्पण के अनुसार फल की प्राप्ति के लिये औत्सुक्य 'आरम्भ' अवस्था कहलाती है। उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक में कंचुकी द्वारा राम को सूचना दी जाती है कि अष्टावक्र ऋष्यशृंग के आश्रम से आये हैं। राम उत्सुकता के साथ उन्हें प्रवेश करने के लिये कहते हैं। इस प्रकार द्वितीय अंक में दुर्मुख राम से सीता के लोकापवाद की सूचना कहना चाहता है। यहीं से कथा का आरम्भ होता है। इस प्रकार उपाय-विषयक औत्सुक्य और औत्सुक्य के अनुरूप व्यापार दोनों आरम्भावस्था हैं -
हा कथमिदानीं देवीमन्तरेणादृश्यचिन्तनीयं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि।[1]

प्रयत्न

फल प्राप्ति के अनुकूल साधनों को जुटाना तथा तदनुकूल विशेष प्रकार की चेष्टाएं करना प्रयत्न कहलाता है। 'उत्तररामचरितम्' के तृतीय अंक में सीता ने दो बालकों को जन्म दिया है, इसी प्रकार सीता का राम के प्रति अगाध प्रेम प्रस्फुटित हो रहा है। पंचवटी इत्यादि स्थानों में नायक और नायिका की उभयपक्षीय चाह प्रयत्न अवस्था के दर्शन कराती है।

तमसा - तत्सर्वं श्रूयताम्। पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात्परित्यज्य निवृत्ते सति लक्ष्मणे सीतादेवी प्राप्तप्रसववेदनमतिदुःखसंवेगादात्मानं गंगाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं च प्रसूता भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्यामभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात्परेण दारकद्वयं च तस्य प्राचेतसस्य महर्षेर्गंगादेव्या समर्पितं स्वयम्।[2]

१- उत्तर० अंक प्रथम

२- वही तृतीय अंक

नाटकीय दृष्टि से तृतीय अंक का यह सन्दर्भ कार्य की प्रयत्नावस्था का फैलाव करता है ।

प्राप्त्याशा

उपाय होने पर भी विघ्न की शंका होने के कारण जब फल प्राप्ति का एकान्तत: निश्चय नहीं होता, वही अवस्था प्राप्त्याशा कहलाती है । 'उत्तर-रामचरितम्' के तृतीय अंक में सीता के वियोग में अधीर बने राम, सीता का नाम लेकर करुणालाप करते हुए मूर्छित हो जाते हैं । तब छाया रूप में विद्यमान अदृश्य सीता उन्हें अपने स्पर्श से संज्ञायुक्त करती हैं । सीता के स्पर्श से अद्भुत आनन्द के अनुभव से अचानक उनका हाथ छूट जाता है । इस अदृश्य मिलन के पश्चात् राम पुन: सीता प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं जिसकी परिणति सप्तम अंक में रामायण नाटक द्वारा सीता की कथा को प्राप्त्याशा की दशा तक पहुँचाया गया है । मूर्छित राम को सीता स्पर्श से पुन: चैतन्यावस्था प्राप्त होती है, यही प्राप्त्याशा नामक अवस्था का सूचक है ।

नियताप्ति

प्रधान फल के निश्चय में नियताप्ति होती है । जनापवाद से निर्वासित सीता का राम से संयोग नाटककार का काम्य है जिसकी नियताप्ति सप्तम अंक में होती है । अप्सराओं द्वारा अभिनीत लव-कुश जन्म एवं सीता का पृथ्वी प्रवेश की घटनाएं देखकर राम के साथ सभी अयोध्या के नर नारी सामाजिक रूप में ऐसे करुणावसान अवस्था का रसास्वादन करते ही स्तब्ध एवं आश्चर्यचकित रह जाते हैं । तभी अरुन्धती सीता के पातिव्रत की प्रशंसा कर जनता से पूछती हैं कि राम के सीता ग्रहण में उनका क्या मनतव्य है, अरुन्धती से निर्भत्सित समागत पुरवासी जनपदवासी पूज्या सीता को नमस्कार करते हैं । इस प्रकार की स्वीकृति में नियताप्ति अवस्था देखी जा सकती है ।[१]

१- उत्तररामचरित, सप्तम् अंक,

फलागम

फलागम नाटक प्रबन्ध का मुख्य साध्य है जो केवल नायक को ही प्राप्त होता है। उत्तररामचरित में सीता की पुन: प्राप्ति ही नाटककार का अपेक्षित फल है। सप्तर्षि, लोकपाल, जनपदवासी से पूजित एवं स्वीकृत राम-सीता के मिलन में फलागम माना जा सकता है। कुश और लव को लेकर अभिनीत नाटक के रंगमंच पर वाल्मीकि प्रवेश करते हैं और दोनों बच्चों को उनके माता-पिता को समर्पित कर देते हैं--

(तत: प्रविशति वाल्मीकि: कुशलवौ च।)

वाल्मीकि - वत्सौ ! एष वां रघुपति: पिता। एष लक्ष्मण: कनिष्ठतात:। एषा सीता जननी। एष राजर्षिर्जनको मातामह:।

सीता - (सहर्षकरुणाद्भुतं विलोक्य।) कथं तात: ? कथं जातौ ?

वत्सौ - हा तात ! हा अम्ब ! हा मातामह !

रामलक्ष्मणौ - (सहर्षमालिंगय।) ननु वत्सौ ! युवां प्राप्तौ स्थ:।

सीता - एहि जात कुश ! एहि जात लव ! चिरस्य मां परिष्वजेथां लोकान्तरादागतां जननीम्।[1]

उत्तररामचरित का इतिवृत्त प्रस्तुत करते हुए कहा जा चुका है कि इसकी मूलकथा रामायण के उत्तरकाण्ड से ली गई है। राम के द्वारा किये गये प्रजा के अनुरंजनार्थ एवं आदर्श स्थापनार्थ सीता निर्वासन, प्रजापालन, वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, अश्वमेध यज्ञ, सीता की पुन: परीक्षा, पृथ्वी का विदीर्ण होना और सीता का उसमें समाविष्ट हो जाना, यत्र-तत्र कथा को सुखान्त बनाने के लिये कवि ने अनेक परिवर्तन सम्बन्धी घटनाओं का विन्यास किया है। इस प्रकार

१- उत्तररामचरित, सप्तम् अंक,

नाटककार ने अपनी आवश्यकता और इच्छा के अनुसार फल की अभिव्यक्ति हेतु अनेक उपायों का वर्णन किया है। मुख उपाय ही बीज कहलाता है। सीता निर्वासन से लेकर लवकुश और राम मिलन की कथा अनेक अर्थप्रकृतियों से उपनिबद्ध है जिसका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है--

वस्तु-योजना में अर्थप्रकृतियों का विनिवेश

बीज प्रकृति

नाट्यदर्पणकार ने लिखा है कि आरम्भ में सूक्ष्म रूप से कहा गया और अन्त में फलरूप में पर्यवसित होने वाला हेतु विस्तृत हो जाने से बीज कहलाता है।[१]

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में दुर्मुख द्वारा राम के समीप आकर लोक में विद्यमान सीता अपवाद सम्बन्धी जो सूचना दी गई है वही बीज है जिसका धान्य-बीज की तरह उत्तरवर्ती घटनाओं में अंकुरण और पल्लवन हुआ है। बीज का प्रारम्भ नट के इस प्रकार के कथन से हुआ है--

नट - अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

देव्या अपि हि वैदेह्याः सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः।।

सूत्रधार -

यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात्।[१]

पताका प्रकृति

पताका का मूल अर्थ ध्वजा है। नायक के कार्य की सिद्धि में सहायता देने वाले किसी चेतन व्यक्ति या घटना के लिये यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसमें मुख्य

१- उत्तररामचरित, प्रथम अंक,

कथा के साथ प्रासंगिक घटनाओं का विन्यास साहित्यकार इस प्रकार करता है कि दूसरी कथा आधिकारिक कथा की सहायिका बनकर प्रस्तुत होती है। उत्तरराम-चरित के चतुर्थ अंक में अश्वमेधीय अश्व के कारण चन्द्रकेतु एवं लव के युद्ध का प्रासंगिक कथानक प्रारम्भ होता है जो षष्ठ अंक में दण्डकारण्य से लौटते हुए युद्ध का दृश्य देखकर राम के द्वारा लव से भेंट करने पर शान्त होता है।

बिन्दु प्रकृति

नाट्यदर्पण में लिखा है कि नायक या उसके सहायक अमात्य अथवा प्रति-नायक आदि के अन्य आवश्यक कार्यों में व्याप्त हो जाने से कुछ समय के लिये मुख्य बीज रूप उपाय की विस्मृति या विच्छेद हो जाने के बाद उसकी जो पुन: स्मृति होती है उसको बिन्दु कहते हैं।[1] उत्तररामचरित के द्वितीयांक में आत्रेयी और वनदेवता के वार्तालाप प्रसंग से और शम्बूक के वध किये जाने की घटना से एवं तृतीय अंक में विष्कम्भक की घटना से मुख्य घटना का विच्छेद सा हो जाता है। किन्तु जब राम दण्डकारण्य में भ्रमण करने लगते हैं और पंचवटी के समीप जाते हैं तो उन्हें पुन: सीता का स्मरण हो आता है। वे पंचवटी देखने का निश्चय करते हैं किन्तु महर्षि अगस्त्य का सन्देश मिलने पर वे उनके समीप पहुंच जाते हैं। इसके बाद तृतीय अंक में वे पंचवटी के समीप दृष्टिगोचर होते हैं। पंचवटी के दर्शन से उनको सीता का स्मरण आ रहा है। यहां मुख्य कथा आकर पुन: जुड़ जाती है। इस सन्दर्भ को हम बिन्दु नामक अर्थप्रकृति कह सकते हैं।

प्रकरी प्रकृति

प्रकरी के अन्तर्गत नाटककार संक्षिप्त एकदेशीय कथा का चयन करता है।[2] उत्तररामचरित के सप्तम अंक में रामायण नाटक का अभिनय किया जा रहा है। वाल्मीकि प्रणीत रामायण के अभिनय सन्दर्भ में अप्सराएं अभिनीत करेंगी, ऐसा देखकर राम पुन: सीता का स्मरण करते हैं। उनकी दशा शोचनीय होने लगती है।

१- नाट्यदर्पण, पृ०७७
२- वही १.३३

इसी समय सीता को लेकर पृथ्वी एवं गंगा उपस्थित होती हैं। रामायण नाटक की घटना को ही हम 'प्रकरी' कह सकते हैं।[१] प्रकरी अर्थप्रकृति के अन्तर्गत विष्कंभक आदि में वर्णित प्रकीर्ण अवस्था वाले सभी कथांश ग्रहण किये जा सकते हैं। सभी प्रकरी कथांश आधिकारिक कथा को गतिशील करते हैं।

कार्य प्रकृति

प्रारम्भावस्था के रूप में आरोपित बीज अन्त में कार्य के रूप में परिणत होता है। सीता द्वारा अपने प्रति किये गये अपमान को न सह कर पृथ्वी में समाहित होने की बात कहती है। किन्तु पृथ्वी उन्हें बच्चों के दूध पीने तक प्रतीक्षा करने को कहती है। अन्त में लव कुश के साथ राम और सीता का स्थाई मिलन होता है। यहीं नाटक की कार्य अर्थप्रकृति के दर्शन होते हैं। उत्तररामचरित की 'कार्य' प्रकृति को सूचित करने वाले कुछ संवादों के अंश इस प्रकार हैं--

रामलक्ष्मणौ : (सहर्षमालिंग्य।) ननु वत्सौ!
युवां प्राप्तौ स्थः।
सीता : एहि जात कुश! एहि जात लव!
चिरस्य मां परिष्वजेथां लोकान्तरादागतां जननीम्।
कुशलवौ : (तथा कृत्वा।) धन्यौ स्वः।
सीता : भगवन्! एषाहं प्रणमामि।
वाल्मीकि : वत्से! एवमेव चिरं भूयाः।[२]

वस्तु योजना में पंच-सन्धि समन्वय

सन्धियां नाटकीय कथावस्तु के मोड़ के रूप में देखी जा सकती हैं। नाट्य

१- उत्तररामचरित, सप्तम् अंक

२- -वही-

सन्धियों को हम एक कार्य अवस्था के बाद दूसरी कार्य अवस्था के मोड़ बिन्दु के रूप में पहचान सकते हैं । उत्तररामचरित की वस्तु-योजना में नाट्य-सन्धियां सरलता से पहचानी जा सकती हैं ।

मुखसन्धि

दशरूपक के अनुसार जहां बीजों की उत्पत्ति होती है और जो अनेक प्रकार के प्रयोजन तथा रस की निष्पत्ति का निमित्त होती है, वह मुख सन्धि कहलाती है ।

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।
अंगानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।।[१]

इस प्रकार बीज की उत्पत्ति अर्थात् मुख्य उपाय के आरम्भ का और शृंगारादि रसों का आश्रय अर्थात् अवतरण जिसमें होता है वह मुखसन्धि कहलाता है । अर्थात् जहां नाटक के प्रारम्भ का उपयोगी जितना अर्थराशि और परम्परित रूप से विचित्र रसों का जितना सन्निवेश प्रारम्भ के लिये उपयोगी है वह सब मुख-सन्धि के अन्तर्गत आता है ।[२]

उत्तररामचरितम् नाटक के प्रथम अंक में अष्टावक्र के द्वारा वसिष्ठ का सन्देश तथा राम का सीता के प्रति अनुराग-उदय होता है, नाट्यवस्तु में 'मुखसन्धि' के निदर्शन हैं ।[३]

प्रतिमुख सन्धि

मुख सन्धि में निर्दिष्ट बीज का कुछ लक्ष्य रूप में और कुछ अलक्ष्य में उद्भेद

१- दशरूपक, १.२४

२- नाट्यदर्पण, गद्य, पृ० ६५

३- उत्तररामचरितम्, प्रथम अंक

अर्थात् प्रकट होना ही प्रतिमुख सन्धि कहलाता है । जैसा कि नाट्यदर्पणकार ने लिखा है--

प्रतिमुखं कियल्लक्ष्यबीजोद्घाटसमन्वित: ।।

उत्तररामचरितम् के द्वितीय, तृतीय अंक में प्रतिमुख सन्धि कही जा सकती है । वासन्ती, आत्रेयी की वार्ता जो कि सीता की करुणामयी गाथा को आपस में कह रही हैं । पंचवटी के प्रवेश का छाया नामक तृतीय अंक घटनाएं प्रतिमुख सन्धि का रूप हैं--

वासन्ती - (सभयम् । स्वगतम् ।) कथं नामशेषेत्याह ?

(प्रकाशम् ।) किमत्याहितं सीतादेव्या: ?

आत्रेयी - न केवलमत्याहितम् सापवादमपि । (कर्णे ।) एवमिति ।[१]

गर्भ सन्धि

मुख्य लक्ष्य का विघ्नों के साथ प्रकट होना फिर नष्ट होना तथा बार-बार अन्वेषण किया जाना ही गर्भ सन्धि है । नियमानुसार इसमें पताका अवश्य होती है । उत्तररामचरित के चतुर्थ अंक और पंचम अंक में राम का अश्व वाल्मीकि आश्रम में पहुंच जाता है, जहां जनक चन्द्रकेतु दास रथियों के विषय में कौतूहल युक्त प्रश्न करते हैं । लव और कुश उन्हें राम जन्म की कथा सुनाते हैं । पंचम अंक में लव के साथ राम के सैनिकों का युद्ध होता है । षष्ठ अंक में राम लवकुश की भेंट, लव-कुश का प्रायश्चित्त और सप्तम अंक में अप्सराओं द्वारा प्रणीत रामायण नाटक में सीता के पृथ्वी प्रवेश की घटना देखकर राम मूर्छित हो जाते हैं । इस प्रकार भवभूति ने घटना के आरोहावरोह एवं घात प्रतिघात से उत्पन्न मुख्य लक्ष्य में बारंबार विघ्न का अन्वेषण किया है । इस प्रकार चतुर्थ से सप्तम् अंक तक गर्भ सन्धि माना जा सकती है ।

१- उत्तर०,   द्वितीय अंक

विमर्श सन्धि

जहां मानसिक चित्त विकार क्रोध या शाप आदि के कारण नायक फल प्राप्ति के विषय में विमर्श करने लगता है एवं विघ्नों के हट जाने से फल प्राप्ति की आशा बंध जाती है, वहां विमर्श सन्धि मानी जाती है। उत्तररामचरित के सप्तम् अंक में अप्सराओं द्वारा अभिनीत रामायण नाटक को राम सामाजिक की स्थिति से देखते हैं और उन्हें अपनी प्रिया सीता पर आई विभिन्न आपत्तियों का ज्ञान होता है तब वो मूर्छित हो जाते हैं। भगवती अरुन्धती सीता को साथ लेकर पाणि स्पर्श द्वारा मूर्छित पड़े हुए राम को संजीवित करने का आदेश देती है। सीता के सहृदय स्पर्श से राम की चेतना लौट आती है वे भाव विह्वल हो जाते हैं। नेपथ्य से भागीरथी राम को उस वचन का स्मरण दिलाती है जिसमें उन्होंने गंगा से प्रिया जानकी के प्रति कृपालु होने की प्रार्थना की थी। इस प्रकार विघ्न आने पर राम के मन में सीता प्राप्ति का सन्देह रहता है, यह पर्यालोचन ही विमर्श सन्धि है।[१]

निर्वहण सन्धि

दशरूपककार ने लिखा है कि जहां बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि में अपने-अपने स्थान पर बिखरे हुए अर्थों का एक प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है वह निर्वहण सन्धि कहलाती है।[२]

उत्तररामचरित का मुख्य प्रतिपाद्य कवि ने बड़े नाटकीय ढंग से उपन्यस्त किया है। दीर्घ और गाढ़े विरह के बाद प्रेयसी पत्नी की प्राप्ति रसाप्लावित कर देती है। इसके सप्तम अंक में पृथ्वी द्वारा सीता के देखभाल का आश्वासन

१- उत्तररामचरितम्, सप्तम अंक

२- दशरूपक, १.४८

देना, अरुन्धती का सभी जनपदवासियों की भर्त्सना करना, कुशलव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश एवं लवकुश सहित सीता से राम की भेंट का वर्णन अत्यन्त नाटकीयता से हुआ है, जिसमें जनपदवासियों सहित लोकपाल एवं सप्तर्षियों की सहर्ष स्वीकृति है। यहाँ निर्भ्रान्त रूप से निर्वहण सन्धि का समापन हुआ है--

लक्ष्मणः - सानुषंगाणि कल्याणानि ।

रामः - सर्वमिदमनुभवन्नपि न प्रत्येमि । यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम् ।[१]

आधिकारिक एवं प्रासंगिक घटनाओं का संतुलन

धनंजय के अनुसार फल के साथ स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध फल का स्वामी होना अधिकारी कहलाता है और फल का स्वामी अधिकारी । उस अधिकार या अधिकारी के द्वारा किया गया, फल-प्राप्ति तक पहुँचने वाला जो वृत्त या कथा है वही आधिकारिक वस्तु है । अत्यधिक विस्तार से बचने के लिये हम इतना लिख सकते हैं कि दुर्मुख द्वारा सीता के लोकापवाद की सूचना दी जाती है तथा चित्र दर्शन के पश्चात् सीता के वनपंक्तियों में विहार तथा गंगा में स्नान करने की दोहद इच्छा होती है । प्रच्छन्न राजदंड के अन्तर्गत लक्ष्मण द्वारा सीता को वन छोड़ने के पश्चात् घटना व्यापार कुछ इस दिशा में बढ़ता है कि विवासिता सीता दो पुत्रों को जन्म देती है, पुत्र वाल्मीकि को दे दिये जाते हैं तथा अन्त में राम और सीता का मिलन इस नाटक की आधिकारिक कथा है ।

घटना में कौतूहलता, सुशृंखलता, प्रगाढ़ता, सघनता है । कथा सीधी सादी रूप में प्रवाहित हुई है । गंगा के अनुग्रह से सीता अदृश्य रूप में आई है, यह आकस्मिक संयोग ही नहीं उत्पन्न करती बल्कि सामाजिक को उसके कौतूहल को जागृत भी करती है और कथा में तारतम्यता बनी रहती है ।

१- उत्तररामचरित, सप्तम् अंक,

देना, अरुन्धती का सभी जनपदवासियों की भर्त्सना करना, कुशलव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश एवं लवकुश सहित सीता से राम की भेंट का वर्णन अत्यन्त नाटकीयता से हुआ है, जिसमें जनपदवासियों सहित लोकपाल एवं सप्तर्षियों की सहर्ष स्वीकृति है । यहां निर्भ्रान्त रूप से निर्वहण सन्धि का समापन हुआ है--

लक्ष्मण:- सानुषंगाणि कल्याणानि ।

राम : - सर्वमिदमनुभवन्नपिन प्रत्येमि । यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम् ।[१]

आधिकारिक एवं प्रासंगिक घटनाओं का संतुलन

धनंजय के अनुसार फल के साथ स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध फल का स्वामी होना अधिकारी कहलाता है और फल का स्वामी अधिकारी । उस अधिकार या अधिकारी के द्वारा किया गया, फल-प्राप्ति तक पहुंचने वाला जो वृत्त या कथा है वही आधिकारिक वस्तु है । अत्यधिक विस्तार से बचने के लिये हम इतना लिख सकते हैं कि दुर्मुख द्वारा सीता के लोकापवाद की सूचना दी जाती है तथा चित्र दर्शन के पश्चात् सीता के वनपंक्तियों में विहार तथा गंगा में स्नान करने की दोहद इच्छा होती है । प्रच्छन्न राजदंड के अन्तर्गत लक्ष्मण द्वारा सीता को वन छोड़ने के पश्चात् घटना व्यापार कुछ इस दिशा में बढ़ता है कि विवासिता सीता दो पुत्रों को जन्म देती है, पुत्र वाल्मीकि को दे दिये जाते हैं तथा अन्त में राम और सीता का मिलन इस नाटक की आधिकारिक कथा है ।

घटना में कौतूहलता, सुशृंखलता, प्रगाढ़ता, सघनता है । कथा सीधी सादी रूप में प्रवाहित हुई है । गंगा के अनुग्रह से सीता अदृश्य रूप में आई है, यह आकस्मिक संयोग ही नहीं उत्पन्न करती बल्कि सामाजिक को उसके कौतूहल को जागृत भी करती है और कथा में तारतम्यता बनी रहती है ।

१- उत्तररामचरित, सप्तम् अंक,

मुख्य पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्रों से सम्बन्धित घटनाएं प्रासंगिक घटनाएं कहलाती हैं जिन्हें नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में पताका और प्रकरी कथाओं के रूप में विभक्त किया गया है। जो इतिवृत्त दूसरे आधिकारिक कथा के प्रयोजन की सिद्धि के लिये होता है किन्तु प्रसंग से उसके अपने प्रयोजन की भी सिद्धि हो जाती है, वह प्रासंगिक इतिवृत्त कहलाता है, क्योंकि प्रसंग से सिद्धि होती है। उत्तररामचरित में लव और चन्द्रकेतु की प्रासंगिक घटना कुछ स्थलों पर अधिक स्थान घेरती है। सम्भवतः नाटककार मूल आधिकारिक पात्र राम और सीता के बीच आकस्मिक संयोगजन्य दूरी दिखाने के लिये लव की घटना का विन्यास किया गया है। आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथा को सुशृंखलताबद्ध करने के लिये भवभूति ने अनेक नाट्य रूढ़ियों का प्रयोग किया है।

भारतीय नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से विभक्त कथावस्तु को दृष्टिगत कर जब हम भवभूति के उत्तररामचरित के वस्तुविधान पर दृष्टि निक्षेप करते हैं। जिसमें आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का संयोग समानुपातिक रूप में हुआ है।

भवभूति ने उत्तररामचरित में आधिकारिक तथा प्रासंगिक घटनाओं का संतुलन कैसे प्राप्त किया है और किस प्रकार वह इस नाटक के वस्तुविधा को एक सुसंबद्ध अवयवी का रूप दे सका है, यह जानने के लिये नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से मुख्य बिंदुओं का विचार किया जा रहा है।

अभी तक उत्तररामचरित की सामान्य कथा एवं भारतीय नाट्यशास्त्रोक्त संविधान का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए यह देखा गया है कि भवभूति ने इन नियमों का पूर्णतया परिपालन किया है। प्रश्न यह है कि परम्परा के पालन या पुनर्चर्वण के अतिरिक्त वस्तुगठन में उनका क्या वैशिष्ट्य है। बात यह है कि उस युग में कार्यावस्थाएं, अर्थप्रकृतियों और सन्धियों का पालन रूढ़ हो गया था। सभी नाटककार वस्तु की आवश्यकता दृष्टिगोचर कर तदनुसार इनका परिपालन

करते थे। यहां हम उत्तररामचरित की कथावस्तु का एक नये दृष्टिकोण से मूल्यांकन करेंगे। यह आधार इस प्रकार बनाया जा सकता है।

१- क्या उसमें घटनाएं प्रभावोत्पादक मर्मस्पर्शी तथा अभिनेय हैं ?

२- घटनाओं के विन्यास में क्या इस बात का ध्यान रखा गया है कि दर्शक उन्हें संभाव्य विश्वसनीय एवं बौद्धिक दृष्टि से स्वीकार करते हैं ?

३- कथावस्तु की घटनाओं के तारतम्य में आकस्मिक संयोग का कितना हाथ है ?

उत्तररामचरित की कथा का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है फिर भी कवि ने नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा मूलसमस्या को इस रूप में प्रस्तुत किया है जिससे वह दर्शकों के गले के नीचे उतर सके। रामकथा से सम्बन्धित भवभूति की दो नाट्यरचनाएं प्राप्त हैं-- महावीरचरित, उत्तररामचरित।

महावीरचरित में सम्पूर्ण राम कथा सुशृंखला रूप में व्यवस्थित है। सम्भवत: भवभूति उत्तररामचरित के पूर्वार्द्ध के रूप में इस नाटक की रचना चाहते थे। महावीर-चरित ही उत्तररामचरित की पृष्ठभूमि है। कवि का उद्देश्य राम कथा की स्थूल घटनाओं का चित्रण करना अभीष्ट नहीं है। वह तो राम के मनोजगत का सूक्ष्म विवेचन करना चाहता है, जहां वे द्राक्षारस के पुटपाक की तरह द्रवित और गलित होते रहते हैं। यद्यपि कार्यव्यापार सम्बन्धी कुछ आक्षेप उत्तररामचरित में लगाये जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में डा० सुरेन्द्र देव शास्त्री का कथन है--

मालतीमाधव और महावीरचरित की अपेक्षा उत्तररामचरित की कथावस्तु कलात्मक तथा चरित्रचित्रण आदि सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है। उसमें वे त्रुटियां एवं वे अभाव उपलब्ध नहीं होते हैं कि जिनकी उपलब्धि हमें उक्त दोनों नाटकों में मिलती है। इतना होने पर भी यह कहना कठिन है कि उत्तररामचरित की कथावस्तु सर्वथा निर्दोष है, क्योंकि उसमें नाटकीय व्यापार की कमी है। इसका मुख्य कारण

कवि की भावुकता है । परन्तु सीता के परित्यागजन्य जिस समस्या को नाटक में उठाया है, वह समस्या वाल्मीकि के काल से भवभूति के समय तक निरन्तर चली आ रही थी उसका कोई भी समाधान नहीं निकाला जा सकता था । महाकवि ने उत्तररामचरित में उस समस्या का समाधान कर दिया है । साथ ही कर्त्तव्य तथा प्रेम के द्वन्द्व की सनातन समस्या को उन्होंने सुलझा दिया है ।[१]

यहां हम उक्त आधारों पर इस समस्या का निराकरण करेंगे कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपनी प्रियसी सीता को जितने आकस्मिक संयोग से निर्वासित कर देते हैं, क्या इससे सहृदय सामाजिक को धक्का नहीं लगता ? क्या वह नहीं सोचता कि राम जैसे महान चारित्र सम्पन्न सीता के प्रति अनन्य निष्ठा रखने वाले के द्वारा एक तुच्छ लोकापवाद के कारण जो निर्वासन किया गया है वह क्या न्यायोचित है ? ऐसा न्याय या दण्ड क्या असंगत, कठोर और अमानवीय नहीं है ?

भवभूति के मनोविज्ञान और नाटककार की स्थिति से यदि उत्तररामचरित का अवलोकन करें तो लगता है कि सीता निर्वासन के पूर्व ऐसी पृष्ठभूमि नाटककार ने उपस्थित कर दी है कि यह दण्ड स्वाभाविक और सहज लग सकता है । प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही इस प्रकार के बीज सम्पुष्ट रूप से आरोपित हैं जिनका परिणाम सीता निर्वासन की प्रक्रिया को स्वाभाविक बना देता है ।

रंगमंचीय परिप्रेक्ष्य

उत्तररामचरित करुण रस प्रधान सात अंकों में निबद्ध नाटक है । इसका उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है । नाटककार ने बड़ी कुशलता से दुखान्त कथा को सुखान्त बनाकर द्राक्षारस की तरह गलित एवं पुटपाक के सदृश करुण रस का व्यावर्तन बड़ी कुशलता से किया है । इसका कथानक राम के राज्याभिषेक के

१- डा० सुरेन्द्र देव शास्त्री : कालिदास और भवभूति के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ११४

के उपरान्त जनापवाद, पितृ दुःख से खेदग्रस्त सीता के मनोविनोद हेतु राम चरित्र ज्ञापक चित्रशाला का अवलोकन सीता के दोहदपूर्ति हेतु वनगमन, शोकाविभूत राम की मूर्छा, शम्बूक वध एवं पंचवटी के पुनर्दर्शन से सीता की स्मृति, प्रसव वेदना से आक्रान्त सीता का गंगा में कूदना, पुत्रोत्पत्ति, वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश के प्रारम्भिक संस्कार, रामाश्वमेध की तैयारी, अश्व पकड़ने के कारण लव-कुश से राम सेना का युद्ध, अप्सराओं द्वारा रामायण नाटक का अभिनय एवं जनता सहित राम द्वारा सीता की स्वीकृति पुनर्मिलन की आधिकारिक कथा नातिदीर्घ है। यदि तृतीय अंक में वर्णित तमसा मुरला प्रकरण राम की मूर्छा अदृश्य सीता द्वारा उपचार। चतुर्थ अंक संक्षिप्त कर दिया जाये तो एक ओर कथानक सीमित हो जायेगा, एवं दूसरी ओर नाटक लगभग तीन घण्टे में अभिनीत भी हो सकता है। घटनाओं के विन्यास एवं मंचन में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होगा।

नट और सूत्रधार के पश्चात् राम सीता, कंचुकी, अष्टावक्र, लक्ष्मण प्रथम अंक के प्रमुख पात्र हैं। द्वितीय अंक में वनदेवता, तापसी, आत्रेयी, वासन्ती एवं शुद्ध विष्कम्भक के बाद राम शम्बूक, तृतीय अंक में मुरला, तमसा शुद्ध विष्कम्भक के बाद सीता, तमसा, राम, वासन्ती, चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में सौधातकि, दण्डायन मिश्र विष्कम्भक के बाद जनक, अरुन्धती, कौशिल्या, कंचुकी, लव, वटु, पंचम अंक में चन्द्रकेतु, सुमन्त्र, लव, षष्ठ अंक में विद्याधर, विद्याधरी विष्कम्भक के पश्चात् राम, चन्द्रकेतु, लव, कुश एवं अन्तिम सप्तम अंक में लक्ष्मण राम सूत्रधार प्रस्तावना के पश्चात् राम, लक्ष्मण, सीता, पृथ्वी, भागीरथी, गंगा, अरुन्धती प्रमुख पात्र हैं।

निष्कर्ष यह है कि कथा के व्यापक चित्रफलक के अनुरूप अनेक पात्रों की अवतारणा हुई है किन्तु रंगमंच में पात्रों की भीड़ नहीं लग पाई। प्रवेश, प्रस्थान या विष्कंभक के द्वारा पात्रों को सक्रिय रखा गया है। चतुर्थ अंक में कुछ दृश्य बन्धों में पात्रों की अवश्य भीड़ दिखाई देती है। जहाँ कौशिल्या, अरुन्धती, जनक, लव ब्राह्मण कुमारगण मंच पर उपस्थित होते हैं और यह संवाद कभी कौशिल्या, जनक

के मध्य, कभी लव और जनक के मध्य कभी जनक और ब्राह्मण कुमार के मध्य तो कभी लव और ब्राह्मणकुमार के मध्य चलता है। शेष पात्र निष्क्रिय रहते हैं। ऐसे स्थलों को संक्षिप्त कर पात्रों को गतिशील बनाया जा सकता है।

भवभूति ने उत्तररामचरित को पूर्णतः अभिनेय बनाने के लिये ऐसे संवादों की योजना की है जो कौतूहल और जिज्ञासा तो उत्पन्न करते ही हैं साथ ही पात्र के मनोद्वन्द्व को बड़े कौशल से निरूपित कर देते हैं। इसमें छोटे और चुस्त संवाद अत्यंत प्रभावी रूप में मिलते हैं--

वासन्ती - अहह धिक्। परिणीतमपि ?

आत्रेयी - शान्तम्। नहि नहि।

वासन्ती - कातर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी ?

आत्रेयी - हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिर्गृहिणीकृता।

वासन्ती - हन्त भोः।[1]

यत्र-तत्र लम्बे संवाद पात्र के भावावेग को व्यंजित करते हैं। इस प्रकार के लम्बे संवाद सामाजिकों में नीरसता उत्पन्न करते हैं। अतिदीर्घ संवादों से उत्पन्न नीरसता उत्तररामचरित में नहीं दिखाई देती है। इस प्रकार के संवादों में कवि को काव्यात्मक चमत्कार तथा पाण्डित्य प्रदर्शन करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। दीर्घ संवाद का एक उदाहरण देखिए--

मुरला - सुष्ठु चिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या। 'राजनीतिस्थितस्यास्य खलु तैश्च तैश्च जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापृतस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः। अव्यग्रस्य पुनरस्य शोकमात्रद्वितीयस्य पञ्चवटीप्रवेशो महाननर्थ' इति। कथं सीतया रामभद्रो यथाश्वासनीयः स्यात्?[2]

१- उत्तररामचरित, द्वितीय अंक

२- वही तृतीय अंक

भारतीय नाट्यशास्त्र में संवादों के अनेक प्रकार उल्लिखित हैं। भवभूति ने स्वगत अपवार्य और आत्मगत संवादों का प्रयोग किया है। आत्मगत संवाद में पात्र के मनोभाव का वर्णन है जिसे सामाजिक के सुनने पर भी किसी विशेष रस की अनुभूति इसलिए नहीं करता क्योंकि ऐसे संवाद पात्र की आत्मानुभूति होते हैं। अंक में सीता का आत्मकथन दृष्टव्य है--

> सीता - (सास्रमात्मगतम्।) अहो, दिनकरकुलानन्दन स्वमपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्।[१]

स्वगत कथन से पात्र की आन्तरिक मनोभावों का ज्ञापन तो होता है, यत्र-तत्र कथा सूत्र भी दाणि तन्तु के रूप में विकसित होते रहते हैं। उत्तररामचरित में २० से अधिक स्थानों में स्वगत कथन हैं। बात यह है कि कथा का चयन मनोद्वन्द्व प्रधान घटना बाहुल्य है। अत: अधिक स्वगत कथन अत्यन्त स्वाभाविक है।

गीत योजना एवं नाटकीयता

गीत हृदय की अनुभूतियों का प्रकट विज्ञापन है, संवादों में नाटकीयता तो होती है काव्यात्मकता नहीं। अत: नाटक को काव्यमय बनाने के लिये छन्दबद्ध गीतों का प्रयोग किया जाता है। भवभूति उत्तररामचरित को एक विशेष काव्यात्मक भूमि में अवतरित करना चाहते थे इसीलिये इसमें गीतों का बाहुल्य है। अंकानुसार गीतों की संख्या इस प्रकार है--

प्रथम अंक - ५१, द्वितीय अंक - ३०, तृतीय अंक - ४८, चतुर्थ अंक - २६

पंचम अंक - ३५, षष्ठम अंक - ४२, सप्तम अंक - २१

यह संख्या अभिनय में कुछ बाधा उत्पन्न करती है किन्तु एक कुशल निर्देशक इन्हें संक्षिप्त करके नाटक के मूल कथ्य को बनाये रख सकता है।

दृश्य विधान एवं अभिनेयता

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में पांच दृश्यों का विधान किया गया है जिसमें सीता निर्वासन की भूमिका प्रस्तुत की गई है। सभी दृश्य राजभवन के सन्निकट के हैं। अंकों का परिसर सीमित होने के कारण एक ही पर्दे से काम चलाया जा सकता है। द्वितीय अंक में दो दृश्य हैं जिनमें दण्डकारण्य स्थित घटनाओं का विन्यास किया गया है। राम का शम्बूकवध, अश्वमेध-यज्ञ की घटनाएं वन परिसर से सम्बन्धित हैं। यहां यह कहना असमीचीन न होगा कि क्रिया व्यापार में जो प्रवाह प्रथम अंक में परिलक्षित होता है, यहां आते-आते यह प्रवाह मन्द हो गया है। अयोध्या एवं दण्डकारण्य की दूरी भी पर्याप्त है। तृतीयांक चार दृश्यों में उपनिबद्ध है जिसमें लव-कुश का जन्म पाले गये कलभ की क्रीड़ाएं, राम की विरह वेदना वर्णित है। कार्यव्यापार की दृष्टि से यह स्थल अत्यन्त क्षीण कथा प्रधान है। कथा के तंतु अत्यन्त विरल हो गये हैं। पंचवटी, दण्डकारण्य और गोदावरी तीन स्थलों की घटनाएं एक पर्दे में दिखाई जा सकती हैं। ऐसा लगता है कि भवभूति करुण रस की अभिव्यक्ति में आकण्ठ निमग्न हो गये थे जिसके कारण कार्य-व्यापार के समय का अनुमान सहज रूप में नहीं होता है। यहां ये स्मरणीय है कि प्रथम से लेकर तृतीय अंक की कथा लगभग १० वर्षों के अन्तराल में बिखरी हुई हो सकती है। नाटककार ने विभिन्न पात्रों के संवादों से अथवा स्मृति अंकन के आधार पर द्राक्षारस की भांति विगलित राम के आंतरिक मनोभावों की मार्मिक व्यंजना की है। अदृश्य सीता के क्रिया व्यापार को रंगमंच पर तब तक नहीं दिखाया जा सकता, जब तक सीता स्पर्श करके तुरन्त पर्दे के पीछे न जा छिपे। यद्यपि आज के सिनेमा या कैमरे की चालाकी के माध्यम से इसकी वास्तविक अनुभूति कराई जा सकती है। कहना नहीं होगा कि ऐसे दृश्यों के नाट्य प्रस्तुतीकरण में निर्देशक की मौलिक कल्पना के साथ-साथ पात्र की क्षिप्रता अत्यन्त आवश्यक है। अदृश्य होने के लिये नेपथ्य पर्याप्त सहायक होता है। चतुर्थ अंक की कथा तीन दृश्यों में फैलाई गई है। तीनों दृश्य वाल्मीकि आश्रम से सम्बन्धित हैं। इस घटना में

ऋष्यशृंग के द्वादश वार्षिक यज्ञ के सत्रावसान की सूचना देकर नाटककार ने बड़ी कुशलता से जनक, कौशल्या आदि को राम की प्रतिच्छाया रूप लव-कुश से भेंट कराकर यह बताने का प्रयास किया है कि अब बालक लगभग १२ वर्ष के वय प्राप्त हैं। पंचम अंक में लव के साथ राम की सेनाओं का युद्ध वर्णन है। कार्यव्यापार में घात-प्रतिघात कौतूहल और आरोहावरोह पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि युद्ध के सजीव दृश्यों के प्रस्तुतीकरण में पात्रों की दिप्रता एवं विस्तृत रंगमंच की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए भरत इत्यादि आचार्यों ने युद्ध वर्णन को निषिद्ध घोषित कर रखा है। षष्ठांक में दो दृश्य हैं। जिसमें राम से लव की भेंट एक ही स्थल पर निरूपित किया गया है। सप्तम अंक में तीन दृश्य हैं, प्रथम दृश्य में नाटक का अन्तर्भाव किया गया है। यहां उल्लेख कर देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि कथावस्तु को नाटकीय कौतूहल से युक्त करने के लिये नाटक के अन्तर्गत नाटक की उत्पत्ति की गई है। सचमुच भवभूति के कथा-विधान का यह चमत्कारिक अंश कहा जायेगा। इस प्रकार की कल्पना आधुनिक नाटककारों में फिल्म के प्रभाव से दिखाई देती है किन्तु भवभूति की तत्वाभि-निवेशिनी प्रतिभा ने इस प्रकार के क्रिया व्यापार का उपयोग कर प्रमाता के हृदय को झकझोरा है क्योंकि इसमें अप्सराओं द्वारा सीता निर्वासन से लवकुश जन्म तक की कथा अभिनीत हुई है। वस्तुत: भवभूति इस समस्या से अत्यन्त उत्तेजित थे कि क्या सीता निर्वासन की घटना राम जैसे न्यायप्रिय राजा के लिये अत्यन्त आवश्यक थी। नाटक के अन्तर्गत नाटक का प्रादुर्भाव इसलिए भी किया गया है, कि उसके दर्शक अयोध्या के सामान्य नागरिक भी हैं जिनके समक्ष सीता की विरह व्यथा, राम की करुणा और प्रिया-प्रेम दर्शकों के मन को उद्वेलित कर यह सोचने के लिये बाध्य करें कि सीता सर्वथा निष्कलंक है और राम को पत्नी रूप में उसे अंगीकार करना ही उसका प्रायश्चित स्वरूप परिमार्जन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति के उत्तररामचरित के मंचन में कुछ अपवाद स्वरूप स्थलों को छोड़कर कार्य व्यापार अंकों में समानुपातिक रूप से वर्णित है, जहां कहीं कथातन्तु विरल

हुए हैं, नाटककार ने बड़ी कुशलता से आन्तरिक मनोभावों को मनोवैज्ञानिक भित्ति पर चित्रित कर उस रिक्तता को भरने का प्रयास किया है। अतः रंगमंचीय दृष्टि कतिपय अतिप्राकृतिक घटना तत्वों को छोड़ कर भवभूति का उत्तररामचरित सभी नाट्यशास्त्रीय और रंगमंचीय दृष्टिकोणों से एक अद्वितीय नाटकरचना है।

उपसंहार

संस्कृत नाटककारों की परम्परा में महाकवि भवभूति अपनी नाट्यकला के उत्कर्ष के बल पर बिना किसी हिचक के नाटककार कालिदास के समकक्ष कहे जा सकते हैं। यदि नाट्य प्रवृत्तियों की विविधता, रसों की विविधता तथा नाटकीय वस्तु-विधान शिल्प की कलात्मकता की दृष्टि से तुलना की जाये तो भवभूति का नाटककार कालिदास की सीमाओं को लांघकर बहुत-बहुत आगे बढ़ जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कालिदास ने भी तीन श्रेष्ठ नाटक-रचनाएं साहित्य-जगत को प्रदान की हैं। उनके शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम् तीनों ही नाटक न केवल संस्कृत नाटक-साहित्य में बल्कि विश्व-साहित्य में बड़े सम्मान से देखे जाते हैं। किन्तु कालिदास के विषय में यह बात अवश्य है कि वे अपनी नाटक-रचनाओं में प्रेम-कथाओं के घेरे से बढ़कर नहीं जा सके हैं। उनके तीनों नाटक शृंगार-रस के ही श्रेष्ठ नाटक कहे जा सकते हैं। साथ ही यह बात भी है कि कालिदास और काफी सीमा तक भास भी अपनी नाटक-रचनाओं का कथावस्तु चयन इतिहास और पुराणों के घेरे से बाहर जाकर नहीं कर सकते हैं।

जहां तक भवभूति का प्रश्न है, हमारा यह नाटककार वास्तव में एक रूढ़ि-तोड़ नाटककार रहा है। उसने नाट्य-रचनाओं के वस्तुविधान करने में इतिहास और पुराण-परम्परा से ग्रहण भी बहुत कुछ किया है किन्तु अपने कलात्मक उद्देश्यों को सिद्ध करने की दिशा में बढ़ते हुए उसने इतिहास और पुराण के आलेखों को धता भी बता दी है। महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् के रामायण कथानक को ग्रहण करते हुए भी उसने निर्बन्ध रूप से कथा की देश, काल परिस्थितियों में मनमाना परिवर्तन कर दिखाया है। इस तरह का प्रयोगधर्मी दुस्साहस भवभूति को छोड़कर संस्कृत के किसी अन्य नाटककार ने नहीं किया है।

केवल कथावस्तु के चयन में ही नहीं नाट्य-वस्तु का उत्पादन करने में भी भवभूति कालिदास और भास जैसे नाटककारों से बहुत आगे बढ़ गया है । राम कथा मूलक नाटकों का वस्तुशिल्प करते हुए तो उसने कलात्मक कल्पनाशीलता का परिचय दिया ही है किन्तु मालती माधव प्रकरण का श्रेष्ठ प्रकार का कल्पनाप्रसूत वस्तु-विधान करके उसने संस्कृत नाटककारों के आगे एक चुनौती ही फेंक दी । उसके वस्तु-विधान शिल्प ने नाटककारों को यह दिखा दिया कि पहले से तैयार किसी कथा या कहानी का धागा बिना पकड़े एक कल्पनाप्रसूत नाट्यकथा नाटकीय कार्य व्यापार के साथ-साथ कैसे उघड़ती चली जाती है । मालतीमाधव का वस्तुशिल्प इस दृष्टि से आजकल की आधुनिकतम पटकथाओं को मात देने वाला लगता है । भवभूति का एक रूढ़ि तोड़ प्रयोगधर्मी नाटककार इस रूप में भी चुनौती बनकर आया कि उसने नाटक-रचना के लिये शृंगार-रस और वीर रस की रूढ़ियों को तिरस्कृत करके दिखा दिया ।

उसने उत्तररामचरित के रूप में करुण रस की एक ऐसी अद्वितीय नाटक-रचना पैदा कर दी जिसकी उत्कृष्टता आज तक कोई करुण नाटक रचना प्रति-स्पर्धा नहीं कर सकी है । सबसे बड़ी बात उस नाट्य-रचना में भी वस्तु-विधान कौशल की ही कही जा सकती है । उत्तररामचरित का वस्तु-विधान शिल्प इतना अद्भुत है कि उसमें यह भेद कर पाना ही प्रेक्षक के लिये कठिन हो जाता है कि वह कोई विरह की त्रासदी देख रहा है या मिलन की मांगलिकी । भवभूति के अद्भुत वस्तु-शिल्प को देखकर निश्चित ही एक सहृदय प्रेक्षक के मुंह से पदे-पदे, अहो ! संविधानकं, अहो संविधानकं, गूंजता रहता है ।

अपने इस अध्ययन के द्वारा हमने नाट्यशास्त्रीय और रंगमंचीय दोनों परिप्रेक्ष्यों से भवभूति के वस्तु-शिल्प का अध्ययन करने के उपरांत यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि काश, हमारा यह महान नाटककार अपनी नाट्य-रचनाओं के वस्तु-विधान में नाटककार ही बना रहता, कवि होकर कहीं-कहीं न बहक जाता तो उसकी नाट्यकृतियों का वस्तु-शिल्प आधुनिक नाटककारों के लिये भी अनुकरणीय

केवल कथावस्तु के चयन में ही नहीं नाट्य-वस्तु का उत्पादन करने में भी भवभूति कालिदास और भास जैसे नाटककारों से बहुत आगे बढ़ गया है । राम कथा मूलक नाटकों का वस्तुशिल्प करते हुए तो उसने कलात्मक कल्पनाशीलता का परिचय दिया ही है किन्तु मालती माधव प्रकरण का श्रेष्ठ प्रकार का कल्पनाप्रसूत वस्तु-विधान करके उसने संस्कृत नाटककारों के आगे एक चुनौती ही फेंक दी । उसके वस्तु-विधान शिल्प ने नाटककारों को यह दिखा दिया कि पहले से तैयार किसी कथा या कहानी का धागा बिना पकड़े एक कल्पनाप्रसूत नाट्यकथा नाटकीय कार्य व्यापार के साथ-साथ कैसे उघड़ती चली जाती है । मालतीमाधव का वस्तुशिल्प इस दृष्टि से आजकल की आधुनिकतम पटकथाओं को मात देने वाला लगता है । भवभूति का एक रूढ़ि तोड़ प्रयोगधर्मी नाटककार इस रूप में भी चुनौती बनकर आया कि उसने नाटक-रचना के लिये शृंगार-रस और वीर रस की रूढ़ियों को तिरस्कृत करके दिखा दिया ।

उसने उत्तररामचरित के रूप में करुण रस की एक ऐसी अद्वितीय नाटक-रचना पैदा कर दी जिसकी उत्कृष्टता आज तक कोई करुण नाटक रचना प्रति-स्पर्धा नहीं कर सकी है । सबसे बड़ी बात उस नाट्य-रचना में भी वस्तु-विधान कौशल की ही कही जा सकती है । उत्तररामचरित का वस्तु-विधान शिल्प इतना अद्भुत है कि उसमें यह भेद कर पाना ही प्रेक्षक के लिये कठिन हो जाता है कि वह कोई विरह की त्रासदी देख रहा है या मिलन की मांगलिकी । भवभूति के अद्भुत वस्तु-शिल्प को देखकर निश्चित ही एक सहृदय प्रेक्षक के मुंह से पदे-पदे, अहो ! संविधानकं, अहो संविधानकं, गूंजता रहता है ।

अपने इस अध्ययन के द्वारा हमने नाट्यशास्त्रीय और रंगमंचीय दोनों परिप्रेक्ष्यों से भवभूति के वस्तु-शिल्प का अध्ययन करने के उपरांत यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि काश, हमारा यह महान नाटककार अपनी नाट्य-रचनाओं के वस्तु-विधान में नाटककार ही बना रहता, कवि होकर कहीं-कहीं न बहक जाता तो उसकी नाट्यकृतियों का वस्तु-शिल्प आधुनिक नाटककारों के लिये भी अनुकरणीय

प्रतिमान ही प्रतीत होता ।

भवभूति की तीनों नाटक रचनाओं का अपना अलग-अलग प्रकार का विशिष्ट व्यक्तित्व है । उसका 'मालतीमाधव' जहां एक ओर कवि की वस्तुयोजना में कल्पना की असाधारण सृजनशीलता सूचित करता है, वहीं वह उसके नाट्यशास्त्रीय और रंग-मंचीय कौशल को भी सूचित करता है । इस प्रकरण नाटक की कथावस्तु स्वयं आगे और आगे अपनी कड़ियां खोलती जाती है । सबसे बड़ी बात रंगमंचीय दृष्टि से दृश्यविधान की है । मालतीमाधव के दृश्य विविधतापूर्ण और आकर्षक हैं । यहां नगरोद्यानों के प्रेममिलन, बिगड़ैलसिंह से युद्ध, पुलिस से मारधाड़, श्मशान का वीभत्स रूप, नदियों के सुरम्य संगम दृश्य पर्वतों के एकांत में सिद्धपीठ आदि नये से नये दृश्य-विधान हैं । नाट्य-व्यापार की अन्विति में भी कोई टूटन कहीं नहीं है । कुछ आकाश उड़ान जैसे अतिप्राकृतिक कार्य अवश्य हैं जहां कृत्रिम अभिनय ही किया जा सकता है ।

रंगमंचीय दृष्टि से महावीरचरित का दृश्यविधान भी विविधता भरा है । सिद्धवन का ताटकादि वध, मिथिला में प्रचंड परशुराम का दृश्य, गोदावरी का संपाती और जटायु आवास, ऋष्यमूक अंचल में वानर नायक बाली का दृश्य विशेष रूप से प्रेक्षकगण के लिये आकर्षण पैदा करते हैं और नाटक के मंचन को सफल बनाने वाले तत्व कहे जा सकते हैं ।

उत्तररामचरित ने तो हमारे नाटककार को अतिविशिष्ट बनाया ही है । इस नाटक की वस्तुयोजना में दृश्यों की विविधता और भावनाओं के आरोह अवरोह बेजोड़ हैं । इस नाटक के सबसे प्रभावी दृश्य गोदावरी से निकलती विरहव्यथा सी सीता, सीता का पालित गजशावक और वाल्मीकि आश्रम में अश्वमेध के अश्व का निग्रह तथा सप्तम अंक के दृश्यविधान हैं । रंगमंचीय दृष्टि से यह अत्यंत प्रभावी नाटक है ।

पाश्चात्य नाटककार जिस अन्विति-त्रय की पक्षधरता नाटक के वस्तु-विधान में करते रहे हैं। हमारे इस महान नाटककार की रचनाओं में नाटकीय कार्यव्यापार की अन्विति में स्वतः आ जाता है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उसके नाटकों का कार्यव्यापार इतना अन्वित है कि उसमें देश और काल की सीमाओं का कोई प्रतिबंधक विचार प्रेक्षकों के मन में उठ ही नहीं सकता।

हम समझते हैं कि नाट्यशास्त्रीय और रंगमंचीय दृष्टि से हमारा महान नाटककार भवभूति आज भी नाट्यकला का अच्छा मार्गदर्शन कर सकता है।

पाश्चात्य नाटककार जिस अन्विति-त्रय की पक्षधरता नाटक के वस्तु-विधान में करते रहे हैं। हमारे इस महान नाटककार की रचनाओं में के नाटकीय कार्यव्यापार की अन्विति में स्वत: आ जाता है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उसके नाटकों का कार्यव्यापार इतना अन्वित है कि उसमें देश और काल की सीमाओं का कोई प्रतिबंधक विचार प्रेक्षकों के मन में उठ ही नहीं सकता।

हम समझते हैं कि नाट्यशास्त्रीय और रंगमंचीय दृष्टि से हमारा महान नाटककार भवभूति आज भी नाट्यकला का अच्छा मार्गदर्शन कर सकता है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

भवभूति के नाटक :

उत्तर राम चरित	सं० पी० वी० काणे	दिल्ली	1962
उत्तर राम चरित	सं० शेषराज शर्मा	वाराणसी	1962
उत्तर राम चरित	सं० शारदारंजन रे	कलकत्ता	1966
उत्तर राम चरित	सं० नारायण राम आचार्य	बम्बई	1949
महावीर चरित	सं० टोडर मल	ऑक्सफोर्ड	1928
महावीर चरित	सं० आचार्य रामचन्द्र मिश्र	वाराणसी	1955
मालती माधव	सं० एम० आर० काले	दिल्ली	1967
मालती माधव	सं० शेषराज शर्मा	वाराणसी	1954
मालती माधव	सं० आर० डी० करमारकर	पूना	1935

सन्दर्भ ग्रन्थ :

वाल्मीकि रामायण	गीता प्रेस गोरखपुर		
महाभारत	गीता प्रेस गोरखपुर		
पद्म पुराण	गीता प्रेस गोरखपुर		
कालिदास ग्रन्थावली	सं० सीताराम चतुर्वेदी	वाराणसी	
भवभूति ग्रन्थावली	राम प्रताप त्रिपाठी	इलाहाबाद	1973

नाट्य शास्त्रीय/काव्यशास्त्रीय ग्रंथ :

औचित्यविचार चर्चा	क्षेमेन्द्र		
काव्य प्रकाश	मम्मट		
दशरूपक	धनंजय	मेरठ	1976
नाट्य दर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र	दिल्ली	1961
नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	वाराणसी	1978
रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ		
साहित्य दर्पण	विश्वनाथ	वाराणसी	1957

नाट्य समीक्षा ग्रन्थ :

दीपदान भूमिका	रामकुमार वर्मा		
भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त	राजवंश सहाय हीरा		
नाट्य समीक्षा	दशरथ ओझा		
रंग दर्शन	नेमि चन्द जैन		
रंगमंच और नाटक की भूमिका	लक्ष्मीनारायण लाल		
रंगमंच	शेल्डान चेनी अनु० श्रीकृष्णदास		
राजसत्ता का अनुशासन	डा० विशन लाल गौड़ (व्योमशेखर)		
संस्कृत नाटक	ए० बी० कीथ	वाराणसी	1965
साहित्य लोचन	श्यामसुन्दर दास		
संस्कृत पॉयटिक्स	कृष्ण चैतन्य	बम्बई	1965
पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा	नगेन्द्र तथा सिन्हा	दिल्ली	1966
हिन्दी नाटक व रंगमंच	रामकुमार वर्मा		
हिस्ट्री आफ संस्कृत पॉयटिक्स	एस० के० डे	कलकत्ता	1960
ए क्रिटिकल स्टडी आफ भवभूतिज मालती माधव	जे० एम० अरहर	वाराणसी	
भवभूति एण्ड हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर	ए० बरूआ	गोहाटी	1971
ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर	ए० एन० दास गुप्त	कलकत्ता	1945
संस्कृत साहित्य का इतिहास	मंगलदेव शास्त्री	दिल्ली	1960
संस्कृत ड्रामा एण्ड ड्रामेटिक्स	के० पी० कुलकर्णी		1927

स्टडीज इन इंडोलोजी	वी0 वी0 मिराशी		1962
कालिदास और भवभूति	दिजेन्द्र लाल राय	बम्बई	1956
महाकवि भवभूति	गंगासागर राय	वाराणसी	1963
महाकवि भवभूति और उनका उत्तर रामचरित	कृष्णकान्त त्रिपाठी	कानपुर	1963
संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	वाराणसी	1958
संस्कृत सुकवि समीक्षा	बलदेव उपाध्याय		
भारतीय साहित्य शास्त्र			
महाकवि भवभूति के नाटको म ध्वनि तत्व	शिव बालक द्विवेदी	कानुपर	1990

शोध पत्र पत्रिकाएँ एवं कोश ग्रन्थ :

एनल्स आफ द भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट		वाल्यूम-38	
इीन्डयन हिस्टोरिकल क्वारटर्ली		वाल्यूम-11	
जरनल आफ द गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीटयूट		वाल्यूम-8	
संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी	मोनियर विलियम्स	दिल्ली	1984
संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	दिल्ली	1988
भारतीय साहित्य शास्त्र कोश	राजवंश सहाय हीरा		

= = = = = = = = = =